

यह है हमारा स्वदेश
हमारा स्वदेश हमारे लोगों का है।
भूमि के स्वामित्व विधिक पदवी से,
इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी,
और तब इसे चुनौती नहीं दी गई,
कि यह है हमारा स्वदेश।
तब स्वीकार कर लिया गया।

बोधन की एक कविता से उद्धृत। बोधन केरल और तमिल नाडु में जनजाति भूमि अधिकारों पर काम करनेवाले एक सक्रियतावादी है। वे ग्राम तूवईपथी, जिला कोयम्बतूर, तमिल नाडु राज्य के निवासी हैं।



Equations

इक्वेशन्स, 415, 2 सी क्रॉस रोड, 4th फ्लोर, ओ एम बी आर लेआउट, बानसवाड़ी, बंगलोर।

फोन: +91-80-25457607 / 25457659

info@equitabletourism.org, www.equitabletourism.org

यह हमारा स्वदेश है भारत में आदिवासी अधिकारों के विश्वासघात पर एक निबंधावली।

इक्वेशन्स - 2007

इस निबंधावली का शीर्षक बोधन द्वारा लिखी एक कविता से अनुप्राणित है। बोधन केरल और तमिल नाडु में जनजाती भूमि अधिकारों पर काम करनेवाले एक सक्रियतावादी हैं।

सम्पादन एवं शोध दल : **अदिति चनचानी, कविता कानन, ममता दास, रोजमेरी विश्वनाथ, सिन्धुजा अनन्तकृष्णन और विद्या रंगन।**

अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद : **शान्ति रंजन**

छायांकन : **बी. आर. विश्वनाथ**

इस पुस्तक में प्रयुक्त रूपांकन हजारीबाग, उशाकोटि तथा सिंघनपुर के शैलचित्रों से लिये गये हैं।

आवरण तथा सज्जा : बेन्ट और नेशनल प्रिंटिंग प्रेस

पद्य भाग- साभार : **अखिल भारतीय आदिवासी समन्वय मंच/ इन्डीजीनस पीपुल, वॉयसेस ऑफ दी आदिवासीज/इन्डीजीनस पीपुल ऑफ इंडिया, अदर मीडिया कम्यूनिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली 2001**

हम हिबोस भारत क्षेत्रीय कार्यालय के सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक में प्रयुक्त जानकारी का उपयोग आप अभिस्वीकृति के साथ कर सकते हैं। प्रकाशन की प्रतियों के लिये हमें इस पते पर लिखें info@equitabletourism.org

यह हमारा स्वदेश है

भारत में आदिवासी अधिकारों से विश्वासघात पर एक निबंधावली।

इक्वेशन्स, 2007

चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ

भाग 1. एक भूला इतिहास, एक अनिश्चित भविष्य

- 17 भारत के आदिवासी - भेदभाव, मतभेद और प्रतिरोध का इतिहास
 सी. आर. बिजोय
- 35 पर्यटकों का स्वागत, आदिवासियों का निष्कासन
 इक्वेशन्स
- 66 अतीत, जिसे हम भूल गए
 इक्वेशन्स

भाग 2. राज्य का विश्वासघात

- 83 हल से राज - झारखण्ड में पारिस्थितिकी के विरुद्ध 150 वर्षों का अपराध
 संजय बासू मलिक
- 96 उड़िसा - उड़िसा में प्रजातंत्र का उपहास
 देबरंजन सारंगी
- 105 राज्यपद ने आदिवासियों को क्या दिया? आदिवासी अधिकार और आकांक्षाओं
 के संदर्भ में झारखण्ड और छत्तीसगढ़ का व्यक्ति अध्ययन
 इक्वेशन्स

भाग 3. निजी कार्यकर्ता

- 121 जड़ से उखड़े - विशाखपट्टनम्, आंध्र प्रदेश में खनन के विरुद्ध आदिवासी संघर्ष
 इक्वेशन्स
- 128 उड़िसा - महत्वाकांक्षी योजनाएँ और उनसे होनेवाली क्षति
 इक्वेशन्स
- 141 औद्योगीकरण बनाम् विकास
 सरोज मोहन्ती

भाग 4. भूदृश्य का विधान और आदिवासी अधिकार

- 159 एक बंजारा जो चोर कहलाया
डॉ. जी.एन. देवी
- 166 प्रायिक संदिग्ध? गुजरात तथा राजस्थान की घुमक्कड़ तथा अनुसूचित जनजातियाँ
इक्वेशन्स्
- 188 वन और आदिवासी - प्रदीप प्रभु के साथ एक वार्ता
इक्वेशन्स् और ग्रास रूट मीडिया
- 198 कर्नाटक के जंगलों में विस्थापन एवं पुनर्वास
इक्वेशन्स्
- 206 टोड्स अग्नि की राह पर
इक्वेशन्स्
- 211 पेसा अधिनियम, 1996 का प्रावधान - छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में उल्लंघन
रमेशचन्द्र शर्मा
- 224 पेसा तथा आदिवासी स्वशासन का भ्रम
प्रदीप प्रभु
- 239 पेसा - विसंगतियाँ और दुविधाएँ
रत्नाकर भेंग्रा
- 248 एकता में संघर्ष जारी रहे।

अनुबंध: सि. डि पर सूची - जनजातियों के अधिकारों पर राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कानूनों और नीतियों का संदर्भ।



चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ

भारतीय अपनी अनोखी जीवन शैली, तौर-तरीकों, पारम्परिक धरती पर उनके अधिकार क्षेत्र और संसाधन के लिए पहचाने जाते हैं। फिर भी पूरा इतिहास इसका साक्षी है कि उनके अधिकारों का दमन हुआ - संयुक्त राष्ट्र स्वदेशी मुद्दों पर स्थाई मंच-अक्टूबर 2006।

साठ वर्षों में एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में भारत आर्थिक वृद्धि, सांस्कृतिक, समांगता और भूमण्डलीय राजनीतिक अभिरुचि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों के साथ विश्व समुदाय में मील का पत्थर बन चुका है। तत्कालीन सकल घरेलू उत्पाद की 9.2 प्रतिशत वृद्धि के साथ भारत विश्व की दूसरी सबसे द्रुतगामी अर्थव्यवस्था है। भारत करीब 2000 से ज्यादा जातियों और चार मुख्य भाषा परिवार के साथ अपनी समृद्धि विविधता चित्रित करता है। परन्तु जहाँ तक गरीबी, निष्कासन हिंसा और जनसंख्या तालिका का सवाल है, यह बढ़ता आर्थिक स्तर और आर्थिक नीति राष्ट्र की चुनौतियों को कम करने में असफल रही हैं, और सम्भवतः ये सभी सहायक कारण तत्व हैं। यद्यपि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विषमता और निष्कासन; विभाजनद्ध आदि अनेक विधापिका और संवैधानिक प्रबंध है, लेकिन अधिकांशतः प्रयास जमीनी स्तर पर अनुदित और प्रभावी ढंग से कार्यान्वित नहीं हुए। जबकि देश स्वाधीनता संग्राम की 150 वीं वर्षगाँठ मना रहा है, यह मान्यता देने में असफल रहा है कि अब भी लाखों आदिवासियों और घुमक्कड़ लोगों में स्वाधीनता और जीने के अधिकार का संघर्ष जारी है।

यह संग्रह विभिन्न अनुभवों और संघर्षों के प्रामाणिक दस्तावेजों को एक साथ बुनने का प्रयास है, जिसमें अनेक लोग एवं कई संगठन सम्मिलित हैं, जो कि भारत की देशी और जनजातीय समुदायों की परिस्थितियों की अनुक्रिया हैं। जबकि यह संकलन कई मुद्दों जैसे चुनौतियों और सम्भावनाओं को सम्मिलित करता है। यह क्षेत्र व्यापक और संगठित है। आदिवासी समुदाय के इतिहास और भविष्य पर वाद-विवाद; बहस, राज्य की भूमिका, औद्योगिक विकास, निजी लाभ की भूमिका और आदिवासी अधिकार सम्बन्धित भूदृश्य का विधान आदि हैं। जबकि ये जलरूद्ध विभाग नहीं हैं, प्रत्येक के पास अपनी एक कहानी है, एक यथार्थ चित्रण भी है कि अन्यथा किस तरह से समृद्ध देशी और जनजातीय समुदाय का, समाजिक और सांस्कृतिक अस्तित्व की दौड़ के लिए विकास और प्राकृतिक संसाधनों की वृद्धि दर संरक्षण के नाम पर क्रमबद्ध तरीके से अनास्तित्व में सीमित कर दिया है। छत्तीसगढ़, उड़िसा, झारखण्ड, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र के जनजातीय जिले करोड़ों डालर के प्रतिज्ञाबद्ध निवेश की मंजिल हैं। मुख्य रूप से लौह इस्पात संयंत्र प्लांट और खनिज परियोजनाओं के निवेश के लिए जमीन और जंगल के बहुत बड़े क्षेत्र की आवश्यकता है जो कि खनिज संसाधनों से परिपूर्ण हो। भारत का 80 प्रतिशत खनिज पदार्थ और 70 प्रतिशत जंगल जनजाति क्षेत्र में हैं जो कि जनजातिय लोगों के जीवन यापन के लिए निर्णायक है। आदिवासी स्वदेश क्षेत्र बड़े औद्योगिक इकाईयों के पालक बन गए हैं, जिन्होंने सैकड़ों, हजारों आदिवासीयों को विस्थापित कर दिया है। शेष अन्यो को असंगठित और अकुशल मजदूरी क्षेत्र में निर्वासित कर दिया गया है।

भूमि अधिग्रहण धारा अधिनियम 1894, ब्रिटिश उपनिवेशिक सत्ता का मुख्य लेख पत्र, कानूनी तौर पर 'राष्ट्रीय विकास और राष्ट्र हित' के नाम पर आज भी आदिवासियों की जमीन ले रहे हैं। भारतीय जंगल अधिनियम 1927 जो कि आदिवासियों को उनके जंगल अधिकारों से वंचित करने का मुख्य कानूनी लेख पत्र है, मुख्य भारतीय जंगल कानून के रूप में कार्य कर रहा है। पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972 की घोषणा भी की गई। यह कानून आदिवासी अधिकारों को कड़ाई से रोकता है। वन्य जीवन आश्रय स्थलों से और राष्ट्रीय उद्यानों से पूरे अधिकार समाप्त कर दिये। जैविक विकास परियोजनाओं की वृद्धि के प्रयास, जैविक-पर्यटन विकास के लिए बहुराष्ट्रीय संस्थाओं की आर्थिक मदद के साथ, जैसे वर्ल्ड बैंक, ने संक्रमण बढ़ा दिया है, जिसमें

आदिवासियों को आगे भी प्रतिबंधित करना है अथवा उन्हें जंगलों से जीवन यापन की गतिविधियों से वंचित करना है।

जहाँ पर लाभकारी विधायक शक्ति जैसे पेसा; पंचायत अनुसूचित क्षेत्रों का विस्तार 1996 आये है, या तो उनकी उपेक्षा की गई है या बड़ी मात्रा में अकारगर; भूमि विहिन्द कर दिया गया है। अनुसूचित जनजाति और दूसरे पारम्परिक जंगल निवासी अधिनियम 2006 के पारित होने और नियमों की प्रक्रिया व्यवस्था से आशा की जा रही थी कि भारतीय राज्य ऐतिहासिक अन्यायों को सुधारेंगे, परन्तु अब भी अनदेखा ही रह गया है। जब हम प्रेस में जाते हैं तो सामाचार मिलते हैं कि संसद के आगामी सत्र में नयी खनिज नीति बनाई जायेगी। जिसके तहत नयी खाने खोजी एवं विकसित की जायेंगी। इन क्षेत्र में प्रत्यक्ष वैदेशिक विनिवेश किया जाएगा।

इस प्रकार आदिवासियों का स्वायत्तता के लिए, उनके अपने क्षेत्रों पर नियंत्रण कायम रखने के लिए और उनके अपने पारम्परिक अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए संघर्ष जारी है। आदिवासी अधिकारों और संघर्ष को लेकर केन्द्र और राज्य सरकारों की प्रतिक्रिया बहुत क्रूर रही है। राज्यों ने जो अन्तिम उपाय अपनाये हैं, वे हैं, गैर कानूनी हत्या, विशेष उपायों के तहत क्षेत्रा स्थापन, संसदीय सुरक्षा दल एवं पुलिस की बटालियन भेजना आदि, जिन्होंने आतंकवादी साम्राज्य को खुला छोड़ रखा है, ताकि, लोग राज्य के नियन्त्रण में रहे।

जंगल निवासियों और घुमक्कड़ जनजाति के संघर्ष के दस्तावेज परियोजना के अंग के रूप में जो कि एक फिल्म 'महुआ का इतिहास' बनाते हुए हो गया, यह निबंध संग्रह, घटना और आलेख और एक प्रदर्शनी संस्थापन विषय "अदृश्य" के रूप में हस्तगत हुआ। हम विनोद राजा और अशोक मारीदास और उनकी "ग्रासरूट मीडिया" के सभी टीम के सदस्यों का आभार व्यक्त करते हैं। वह फिल्म निर्माता जिसका आवेगपूर्ण मुद्दों के साथ वचनबद्ध स्पष्ट दृष्टव्य है, उसने हमें भी नेटवर्किंग और उस शोध दल का एक हिस्सा बनने और मदद करने का अवसर प्रदान किया। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये, अधिक से अधिक सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। हम भारतीय हाईवोस भारत के क्षेत्रीय कार्यालय का उनके सहायोग और अपेक्षानुकूल मदद का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। मुख्य रूप से बिश्वदीप और राजेन्द्रन नाथन जिसके सहयोग, प्रोत्साहन, सुझाव और समझदारी ने हमारी अनेक चुनौतियों और कठिनाईयों में मदद की।

हम उन सभी के शुक्रगुजार और आभारी हैं जिन्होंने हमारे अभियान में किसी भी प्रकार का अंशदान किया है। यह अंशदान उनके अवदान का, उन सभी के व्यक्तित्व और एक समुदाय के रूप में जिससे वे संबंधित हैं, आंदोलन, नेटवर्क और संघर्षशील संगठनों आदि का विस्तृत वृत्तांत प्रस्तुत करता है। यह एक गर्व और सम्मान का अवसर है कि उन्होंने इस संग्रह के लिए लिखा। जबकि आदिवासी कभी-कभी अत्यंत कठिन एवं मनहूस परिस्थितियों का सामना करते हैं, हम उनके अदम्य शक्ति और प्रतिबद्धता से मूल्यों और सिद्धान्तों के लिए लड़ने के हेतु प्रेरित होते हैं जो उनके लाभ से कहीं आगे चला जाता है। बल्कि, वह हम सभी मानव जाति के लिए, लोकतंत्र के लिए, समुदाय के लिए, प्रकृति और जीवन के सम्मान के लिए, जीवन धारणा, सत्य निष्ठा से जीने के लिए लाभकारी है। यह संसार, जिसमें स्वार्थ और भौतिकवाद लगातार बढ़ रहा है, ये वस्तुतः दुर्लभ है।

सम्पादन दल

जुलाई, 2007

अंशदाताओं का संक्षिप्त परिचय

सी.आर. बिजोय - कोयम्बतूर; तमिलनाडु निवासी एक आन्दोलनकारी कार्यकर्ता। राष्ट्रीय जनजातीय स्वशासन मोर्चा और अखिल भारतीय आदिवासी मंच की समन्वयक समिति के सदस्य।

देबरंजन सारंगी - उड़िसा निवासी लेखक कार्यकर्ता और राज्य विस्थापन विरोधी संघर्ष में पूर्ण संलिप्त।

डॉ. जी. एन. देवी - तेजागढ़, गुजरात में जनजाति अकादमी के श्रृष्टा और निदेशक, जनजाति भाषा साहित्य एवं मौखिक परम्परा तथा साहित्य अकादमी परियोजना के निदेशक। वे आदिवासी मुद्दों, यायावर एवं सूचित समुदाय जो अनुसूचित जनजाति अधिकार कार्यकारिणी समूह की वकालत एवं अभियान में सक्रिय रूप से लिप्त रहे हैं।

प्रदीप प्रभु - गरिमापूर्ण जीवनयापन अभियान के राष्ट्रीय समन्वयक; संयोजक। वे भारतीय जन आन्दोलन और जनजातीय स्वशासन के राष्ट्रीय अभियान के सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं। थाने, महाराष्ट्र के भूमिहीन जनजाति कृषक मजदूर; श्रमिक और स्थानान्तरित श्रमिकों द्वारा गठित लोक संगठन "कास्तकारी संगठन" के महासचिव।

रमेश शर्मा - एकता परिषद के सक्रिय कार्यकर्ता। वे पेसा हिंसा मुद्दा एवं छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़िसा और मध्यप्रदेश में भू अधिकार संबंधी मुद्दों पर कार्य करते हैं।

रत्नाकर भेंग्रा - राँची उच्च न्यायालय के अधिवक्ता। वे विभिन्न गैर सरकारी संगठनों, आदिवासी मुद्दों से संबंधित आन्दोलन, भूमि एवं विस्थापन मुद्दों, पारम्परिक स्वशासन और देशी जनअधिकारों संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय विधिक विकास आदि से सक्रिय रूप से जुड़े हैं।

संजय बासू मलिक - झारखण्ड जंगल बचाओ आन्दोलन के समन्वयक तथा वन जनजाति एवं वन श्रमिक राष्ट्रीय मंच से सक्रिय रूप से जुड़े हैं।

सरोज मोहन्ती - सम्बलपुर, उड़िसा से प्रकाशित 'अनेस्वा' उड़िसा पत्रिका के सम्पादक। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं और विस्थापन, पर्यावरण संरक्षण, जनजातीय जीविका और नागरिक स्वायत्तता पर कार्य करते हैं। वे उड़िसा के जानेमाने कवि हैं और राज्य के कई जनजातीय आन्दोलनों से जुड़े हैं।

संक्षेपण

ए. डी. बी	: ऐशियन विकास बैंक
ए.पी.एल.टी.आर.	: आँध्र प्रदेश भू हस्तांतरण विनियम अधिनियम,
ए.पी.एम.डी.सी.	: आँध्र प्रदेश खनिज विकास निगम
बी.पी.एल.	: गरीबी रेखा के नीचे
सी.ई.सी.	: केन्द्रीय सशक्तिकरण समिति
सी.एफ.जी.	: सामुदायिक वन शासन
सी.पी.आई.	: भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी
सी.पी.आई.एम	: मार्क्सवादी भारतीय कम्युनिष्ट
सी.पी.आर.	: सामूहिक सम्पत्ति संसाधन
सी.आर.पी.एफ	: रिजर्व पुलिस बल
सी.एस.डी.	: जीवनयापन और अस्मिता अभियान
डी.एफ.आई.डी.	: अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग
डी.एन.टी.	: अनुसूचित खानाबदोश जनजाति
ई.आई.ए.	: परिवेश प्रभावी मूल्यांकन
एफ.डी.आई.	: वैदेशिक प्रत्यक्ष विनिवेश
एफ.आई.एम.आई.	: भारतीय खनिज उद्योग संघ
जी.ओ.आई.	: भारत सरकार
हा	: हेक्टेयर
एच.पी.सी.एल.	: भारतीय खनिजतेल निगम लिमिटेड

आई.जी.एम.	: वन महानिरिक्षक
आई.एम.एफ.	: अन्तर्राष्ट्रीय वित्त कोश
आई.पी.सी.	: भारतीय दण्ड संहिता
आई.टी.डी.ए.	: समाकलित जनजाति विकास एजेंसी
जे.एम.एफ.	: संयुक्त वन प्रबंध
जे.एम.एम.	: झारखण्ड मुक्ति मोर्चा
जे.एस.पी.एल.	: जिन्दल लौह इस्पात और उर्जा लिमिटेड
के.एन.पी.	: कुद्रेमुख नेशनल पार्क
एम.एम. (आर.डी.)	: खान एवं खनिज (विकास एवं विनियम) अधिनियम-1957
एम.एन.सीज.	: बहुराष्ट्रीय कम्पनी
एम.ओ.ई.एफ.	: वन एवं पर्यावरण मंत्रालय
एम.ओ.आर.डी.	: ग्राम विकास मंत्रालय
एम.ओ.टी.	: पर्यटन मंत्रालय
एम.ओ.यू.	: बोध स्मारक पत्र
एम.पी.	: संसद सदस्य
नालको	: राष्ट्रीय अल्यूमीनियम कम्पनी लिमिटेड
एम.बी.आर.	: नीलगिरी जैविक उद्यान
एन.डी.ए.	: राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन
एन.एच.आर.सी.	: राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
एन.एस.एस.	: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण
एन.एस.टी.	: नागरिक सेवा ट्रस्ट
ओ.बी.सी.	: अन्य पिछड़ा वर्ग
पी.सी.सी.एफ.	: प्रधान मुख्य वन संरक्षक
पेसा	: पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996
पी.एफ.	: संरक्षित वन

पी.पी.एफज्	:	निजी संरक्षित वन
पी.आर.आईज्	:	पंचायती राज संस्थान
एस.सी.	:	अनुसूचित जाति
एस.आई.यू.	:	स्पाँज इस्पात इकाई
एस.टी.	:	अनुसूचित जनजाति
टी.ए.सी.	:	जनजाति सलाहकार समिति
यू.ए.आई.एल.	:	उत्कल अन्तर्राष्ट्रीय एल्यूमीना लिमिटेड

हम अपने देश का स्वप्न देखते हैं,
वह सभी कुछ जिसे हम देखते हैं,
जिस पर चलते हैं,
जिसे अपने शरीर से महसूस करते हैं,
हमारी धरती का है,
हम चाहते हैं कि हमारी धरती
सोचे हमारे बारे में,
कि हम है कौन,
हमारे देश के बिना
हमारा कोई अस्तित्व नहीं
सरकार इसे समझे
इस पर कोई समझौता न हो
धरती का क्षतिपूरण नहीं हो सकता।

- ग्रेगोरी भल्ला, बोन्दाबहल, उडिसा





भाग 1

एक भूला इतिहास, एक अनिश्चित भविष्य

5600 वर्ष पुराना यह शैलशिल्प कर्मगढ़ सुरक्षित वनक्षेत्र छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिला में स्थित है। यहाँ से पास में ही सिंघनपुर के लोग अपनी पुरातन शैलशिल्प धरोहर को निकटवर्ती मोनेट स्टील प्लान्ट के प्रभाव से नष्ट होने से बचाये रखने के लिये संघर्षरत हैं। छपते समय इस प्लांट के विस्तार होने की सूचना प्राप्त हुई है।



भारत के आदिवासी

भेदभाव, मतभेद तथा प्रतिरोध का इतिहास

सी. आर. बिजोय

भारत में रह रहे 84.32 मिलियन (लगभग आठ करोड़ तैतालिस लाख बीस हजार) लोग जो अनुसूचित जनजाति वर्ग के हैं प्रायः आदिवासी माने जाते हैं। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ 'देशज लोग' अथवा 'मूलवासी' है जो अनुसूचित जनजाति का पूर्ण पर्यायवाची नहीं है। अनुसूचित जनजाति एक प्रशासनिक शब्द है जिसका प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से वंचित एवं पिछड़े समाज के संरक्षण, विशेष लाभ तथा विशिष्ट संवैधानिक विशेषाधिकारों की रक्षा के लिये प्रशासनिक उपाय के रूप में किया जाता है। परन्तु यह प्रशासनिक शब्दावली सभी आदिवासियों को इस वर्ग में सम्मिलित नहीं करती है।

भारत के 5653 विशिष्ट समुदायों में मात्र 635 को ही जनजातियों अथवा आदिवासी का दर्जा मिला है। तुलनात्मक रूप से इनमें से मात्र 250 से 593 समुदायों को ही अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त है। व्यावहारिक रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य बहुपक्षीय संस्थायें प्रायः अनुसूचित जनजातियों को ही 'देशज लोग' मानती हैं। भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति वर्ग के अन्तर्गत है और यह विश्व में सर्वाधिक देशज जनसंख्या वाला राष्ट्र है।

26 जनवरी 1950 से प्रभावी भारत का संविधान अपने नागरिकों के विशेषाधिकारों की रक्षा के लिये धर्म, नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15) करता है। हमारा संविधान नागरिकों को समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28), तथा संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29-30) सुनिश्चित करता है। अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण व विकास हेतु संविधान में 209 अनुच्छेद तथा 2 विशेष अनुसूचियां समाहित हैं जो उनके संरक्षण के साथ-साथ जीवनशैली को भी प्रभावित करते हैं। अनुच्छेद 341 तथा 342 के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों (अस्पृश्य, तथाकथित नीची जातियां) तथा अनुसूचित जनजातियों को वर्गीकृत किया गया है। अनुच्छेद 330, 332 व 334 के अन्तर्गत संसद तथा विधानसभाओं में उनकी सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया गया है। सरकार द्वारा अनुसूचित जनजातियों के विकास पर आधारित कार्यक्रमों का पैकेज अपनाया गया है जिसको आदिवासी बहुल विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में लागू किया गया है और इसके अन्तर्गत 69 प्रतिशत आदिवासियों को लक्षित किया गया है।

इन सबके बावजूद तथा विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के 50 से अधिक वर्ष पूरे होने के बाद भी आदिवासियों का संघर्ष अपनी उत्तरजीविता, अस्तित्व तथा आजीविका के लिये हाल के वर्षों में सघन हुआ है और इसका ऐतिहासिक विस्तार हुआ है। सदियों के दौरान आदिवासियों ने एक जटिल जीवनशैली विकसित की है जो कि मिलनसार होने के साथ-साथ संरक्षणात्मक भी है। आदिवासियों के लिये उनका स्थानीय परिवेश संसाधन मात्र नहीं है बल्कि इनके अस्तित्व, परम्पराओं, आत्माओं एवं पूर्वजों का निवास तथा उनके विज्ञान, तकनीक, धर्म व संस्कृति का वाहक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आदिवासी व्यवहार रूप में स्वशासित प्रथम राष्ट्र हैं। उपनिवेश काल में ये क्षेत्र संबंधित राज्यों के सीमांत क्षेत्र के रूप में जाने जाते थे जहां पर कि कोई बाहरी शासन लागू नहीं होता था। आदिवासी हमेशा शासक विशेष के प्रभाव से मुक्त स्वतंत्र स्वशासित इकाई रहे हैं।

ब्रिटिश राज में 1793 में स्थायी बन्दोबस्ती के साथ ही ज़मींदारी प्रथा लागू हुई। आदिवासियों में व्यक्तिगत संपत्ति की भावना सर्वथा अपरिचित थी परन्तु ज़मींदारी प्रथा के अन्तर्गत आदिवासी क्षेत्रों सहित विशाल भूक्षेत्र ब्रिटिश राज में राजस्व वसूली के लिये

सामंतों को दिये गये। इससे आदिवासियों तथा अन्य समुदायों के संबंधों में बहुत बड़ा अन्तर आया। शक्तिशाली समुदायों के प्रभाव विस्तार के साथ छुआछूत और भेदभाव पर आधारित कठोर एवं अनम्य धर्म का प्रसार हुआ। बाहरी जातियों के प्रणेताओं द्वारा वंशगत सांस्कृतिक परम्परा बनाई गई जिसके फलस्वरूप आदिवासियों के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। इसके साथ ही आदिवासी संस्कृति के प्रति नज़रिये में भी अन्तर आया और आदिवासी समुदाय समाज के हाशिये पर चला गया और बहुसंख्यक उच्चजातीय समाज की मुख्यधारा में भूमिका बढ़ी। तथाकथित सवर्ण जातियों ने अपने प्राचीन अभिलेखों में इसी अवधारणा को मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है।



भारतीय ग्रन्थ और आदिवासी

ऐशिया महाद्वीप में प्रवासी परम्परा पचास हजार वर्षों से प्रचलित है। विजित समुदायों को न तो समाप्त किया जाता था न ही आत्मसात बल्कि उन्हें हेय बनाकर शक्तिहीन किया जाता था। यूरोपियनों के आगमन एवं तदुपरान्त उपनिवेशवाद के प्रभाव से इस क्षेत्र में मुख्यधारा की जातियों एवं आदिवासियों के संबंधों में व्यापक परिवर्तन आया। पूंजीवाद, निजि संपत्ति तथा देशव्यापी बाजार के विस्तार के कारण उपयोगिता एवं वंशानुगत कारीगरों पर आधारित परम्परागत अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

आदिवासी समुदायों में काफी विभिन्नता है तथा उनकी उत्पत्ति विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित है। आदिवासी मुख्यतः चार भाषाई समूह के अन्तर्गत आते हैं और विभिन्न प्रजातियों और धार्मिक आस्थाओं से सम्बद्ध हैं। हजारों वर्षों से इन्होंने अपने आप को सामन्तवादी राज्यों और ब्राह्मणवादी प्रथा से दूर ही रखा है। रामायण, महाभारत आदि भारतीय महाकाव्यों तथा पुराणों में हिन्दुओं तथा वन्य एवं पहाड़ी जातियों के मध्य संबंधों और युद्ध के कई संदर्भ वर्णित हैं।

रामायण (अनुमानित समय 200 से 500 ईसा पूर्व) पर विस्तृत शोध करने वाले प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार राक्षस राजा रावण की राजधानी लंका तथा वानरों की मातृभूमि किष्किन्धा मध्य भारत में चित्रकूट पर्वत से दक्षिण तथा नर्मदा के उत्तर भूभाग में स्थित थी। तदनुसार रावण तथा उनके राक्षसगण भारत के आदिवासी थे और सम्भवतः गोंड समुदाय के थे एवं महाकाव्यों में वर्णित हनुमान तथा अन्य वानर सावर तथा कोड़कू जनजाति के थे जिनके वंशज आज भी मध्य भारत के वनक्षेत्र में निवास कर रहे हैं। आज भी गोंड समुदाय के लोग रामायण के खलनायक रावण को सर्वगुणसम्पन्न मुखिया के रूप में मानते हैं। काव्य के नायक राम जंगल में राक्षसों (दुष्टों) के संहार के लिये जाने जाते हैं।

महाभारत में जरथ नाम के भील के हाथों कृष्ण की मृत्यु की चर्चा है। प्राचीन कृतियों में जिसे कुलीन समुदाय पवित्र मानते हैं आदिवासियों को अमानुष सिद्ध करने के लिये कई प्रकार के शब्द प्रयोग किये गये हैं। रामायण, महाभारत, विभिन्न पुराणों, संहिताओं और अन्य तथाकथित पवित्र ग्रन्थों में आदिवासियों की चर्चा राक्षस (दुष्ट), वानर, जाम्बवन्त (रीछ), नाग (सांप), काकभुषण्डी (कौआ), गरुड़ (गिद्धराज) आदि के रूप में की गई है। मध्यकालीन भारत में भी उन्हें कोल, भील, किरात, निषाद आदि अनादरसूचक शब्दों से संबोधित किया गया है। जिन जनजातियों ने अधीनता स्वीकार कर ली उन्हें दास का नाम दिया गया तथा जिन्होंने दासता मानने से इन्कार किया उन्हें दस्यु (विरोधी लुटेरे) कहा गया।

महाभारत में एकलव्य नामक धनुर्धर इतना प्रतिभावान था कि आर्यनायक अर्जुन भी उसके सामने नहीं ठहर पाते थे। अतः उन्होंने उस पर हमला कर उसका अंगूठा काट कर लड़ने की क्षमता ही समाप्त कर दी और एकलव्य के गुरु द्रोण को गुरु मानने और गुरुदक्षिणा में अंगूठा काट कर देने की कहानी गढ़ दी।

विख्यात लेखिका महाश्वेता देवी के अनुसार आदिवासी हिन्दूत्व तथा आर्य संस्कृति के पूर्व थे। उनके मतानुसार शिव आर्यों के देवता नहीं थे और 8वीं सदी में आदिवासियों की वनदेवी अथवा फसल कटनी की देवी पार्वती को शिव ने पत्नी के रूप में स्वीकार तथा अंगीकार किया। शिकारियों की देवी काली भी आदिवासी मूल की ही हैं।



आदिवासियों का इतिहास

हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों के काल में आदिवासी तथा गैर आदिवासी समुदायों के अन्तर्सम्बन्धों के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। मध्यभारत में कुछ राजपूत राजाओं एवं आदिवासी सरदारों में बीच युद्ध तथा संधि की छिटपुट घटनाओं का उल्लेख है तथा उत्तरपूर्वी भारत में ब्रह्मपुत्र घाटी में आहाम राजाओं तथा पहाड़ी नागा जातियों के बीच भी इसी प्रकार के संबंधों की चर्चा है। आदिवासियों को अति मतद्र माना गया है अर्थात् अछूत जातियों से भी इतर। आज भी सवर्ण जातियों के लोग उन्हें 'जंगली' जैसे अपमानसूचक शब्द से संबोधित करते हैं और इसका शाब्दिक अर्थ है 'जंगली जानवरों के समान', असभ्य या उप-मानव।

आदिवासियों के भोजन में अधिक निषेध नहीं हैं। उनका सांस्कृतिक व्यवहार परिवर्तनशील है तथा व्यवसायिक दक्षतायें सीमित हैं वहीं मुख्यधारा के मैदानी लोगों में खाद्य संबंधित कई निषेध, कठोर सांस्कृतिक अनुशासन तथा जाति आधारित व्यवसायिक दक्षतायें हैं। हिन्दू वर्ण व्यवस्था में आदिवासियों के लिये कोई जगह नहीं है। तथाकथित मुख्यधारा हजारों छोटे सामाजिक समूहों का संघ है जिसमें इन छोटे समूहों का अस्तित्व बनाये रखने के लिये समूह के बाहर विवाह निषेधित है। अधीनस्थ समुदाय को झाड़ू लगाना, मल सफाई, मुर्दों को हटाना, चमड़े के काम आदि अस्वच्छ हेय कामों में लगाया गया तथा उन्हें अछूत समझा गया।

प्राचीन काल के कुछ छोटे समाज जो अपनी जीविका के लिये आखेट, संग्रह तथा परम्परागत खेती पर ही निर्भर थे, इस संकुलन की प्रक्रिया से बाहर रह गये। ये हैं आज के आदिवासी हैं। समाज की मुख्यधारा से निरपेक्ष अपने स्वायत्त अस्तित्व के कारण ये अपने सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं तथा सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में सक्षम हुए तथा इनमें से अधिकांश अपनी भाषा को भी जीवित रख पाये। सती दाह, दासत्व,

व्यावसायिक भेदभाव, श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था आदि प्रायः उनकी प्रथाओं में शामिल नहीं है। यद्यपि आदिवासियों का मुख्यधारा से व्यापार सतत रहा है तथापि उनके बीच सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों को उन्होंने हतोत्साहित ही किया है। जाति आधारित भारत की मुख्यधारा ने भी कभी भी आदिवासियों को जातीय धुरी में लाने का प्रयास नहीं किया किन्तु तेजी से बदलती आर्थिक, सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिक परिदृश्य में आदिवासियों ने सतही तौर पर अपनी जाति प्रथा बनाई है और गैरआदिवासीकरण की प्रक्रिया सतत चल रही है। हिन्दू समाज के कई समुदायों ने भी आदिवासियों की सांस्कृतिक प्रथाओं को अपनाया है। यद्यपि हिन्दूत्व सारे भारत को एकसूत्र में पिरोता है तथापि यह सर्वत्र समरस नहीं है। अपितु यह सदियों पुरानी परम्पराओं का समागम है जिसे संस्कृति पर आधारित कतिपय सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं ने विशिष्ट आकार दिया है और इसमें आदिवासी सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक मान्यतायें भी समाहित हैं।



समाज के सबसे निचले पायदान पर : आदिवासी

साधारणतः हिन्दू जातियाँ आदिवासियों को उतना मलिन नहीं मानती हैं जितना कि दलित परन्तु आदिवासी अभी भी निकृष्ट मानव समझे जाते हैं तथा सामाजिक रूप से विलग समाज की हिंसा का दंश झेल रहे हैं। सभी सामाजिक आर्थिक सूचकों के आधार पर ये विकास के अन्तिम पायदान पर हैं। आज प्रभावशाली हिंदू जातियाँ उन्हें आदिम जातियाँ मानती हैं और मानव के रूप में इनकी मान्यता समाप्त करने के लिये अथवा मुख्यधारा से जोड़ कर सबसे निकृष्ट पायदान पर लाने के लिये प्रयासरत हैं। हिन्दुत्ववादी फासिस्ट ताकतों के उदय के साथ यह प्रवृत्ति और भी बढ़ी है।

ब्रिटिश राज के विरुद्ध हुए किसी भी आदिवासी संघर्ष को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का दर्जा नहीं दिया गया है। सन् 1772 में मालपहाड़िया आन्दोलन से लेकर 1942 में उड़ीसा में लक्ष्मण नायक के विद्रोह तक आदिवासियों ने ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ़ उत्तर पूर्वी,

पूर्वी तथा मध्य भारत क्षेत्र में निरन्तर संघर्ष किया। कई विद्रोहों में आदिवासियों को नहीं दबाया जा सका और आन्दोलन ब्रिटिश राज द्वारा आदिवासियों तात्कालिक मांगों को स्वीकार करने पर ही ये आंदोलन समाप्त हुए। 1809 का भील विद्रोह तथा 1838 में गुजरात में नायक विद्रोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बिरसा मुण्डा, संथाल नेता सिद्धू कान्हू, खाजिया नायक, तान्त्या भील, लक्ष्मण नायक, कुवर वासव, रूपा नायक, थामल डोरा, अम्बुल रेड्डी, थलक्कल चान्दू तथा कई अन्य आदिवासी नेताओं को आज भी आदिवासी अपने गीतों और कथाओं में याद करते हैं परन्तु इन्हें सरकारी पाठ्य पुस्तकों में कोई स्थान नहीं दिया गया है।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को चार राजनैतिक व्यवस्थाओं में विभाजित किया गया था -

1. प्रेसिडेन्सी क्षेत्र - जहां शासन सत्ता सर्वोच्च थी,
2. रेजिडेन्सी क्षेत्र - जहां रेजिडेंट शासन सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे,
3. एजेन्सी-जनजाति क्षेत्र जहां शासन सत्ता का प्रतिनिधित्व एजेंट के द्वारा होता था परन्तु स्थानीय स्वशासन इकाईयों से उसका कोई सरोकार नहीं था और
4. बहिष्कृत (पूर्वोत्तर क्षेत्र) जहां शासन सत्ता के प्रतिनिधि प्रतीक चिन्ह मात्र थे।

सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात रेजिडेन्सी क्षेत्र के शासकों ने शासित की ओर से "राज्यरोहण के दस्तावेज" पर हस्ताक्षर किया तथा बदले में शाही भत्ता पाया। परन्तु स्वतंत्र आदिवासी राज्यों के साथ इस तरह का कोई भी करार नहीं किया गया। यह मान लिया गया कि आदिवासियों ने भारतीय संघ में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया है तथा आदिवासी स्वतंत्र राष्ट्रों के प्रति कड़ा रुख अपनाया और उनका समावेशन भारतीय संघ में किया गया। नागालिम तथा हैदराबाद के निज़ाम राज्यों में भी इसी तरह आदिवासियों के विद्रोह को राज्य ने हिंसा के बल पर दबाया। यद्यपि यह चेतना मध्य भारत में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत अधिकांश आदिवासियों में नहीं था वहीं पूर्वोत्तर राज्यों में ऐतिहासिक तथा पारिस्थितिक कारणों से स्थिति बिल्कुल ही भिन्न थी। ऐतिहासिक रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्र, भारत की मुख्य भूमि का अंग कभी नहीं थे। पूर्वोत्तर उपनिवेश क्षेत्रों का समावेशन भारतीय महाद्वीप के अन्य भागों की अपेक्षा बहुत बाद में हो पाया। जहां बंगाल में ब्रिटिश आधिपत्य 1765 ई. में लागू हो गया वहीं आहोम राजाओं द्वारा शासित असम 1826 में

जाकर इसके प्रभाव में आया। गारो पहाड़ियों में ब्रिटिश राज 1873 में, नागा पहाड़ियों में 1879 में तथा मिजोरम 1881 - 90 तक हुए चिनलुषाई अभियान के अन्तर्गत जुड़ गए। परिणामस्वरूप स्वशासन की लड़ाई मुक्ति से लेकर वृहत्तर स्वायत्ता के स्तर पर अनेक रूप में चलती रही।



उपांतिककरण की प्रक्रिया

वर्तमान आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल वनक्षेत्र 765210 वर्ग कि.मी. क्षेत्र है जिसमें से 71 प्रतिशत आदिवासी क्षेत्र हैं। इसमें से 416520 वर्ग कि.मी. तथा 223300 वर्ग कि.मी. क्षेत्र को क्रमशः सुरक्षित वन क्षेत्र तथा संरक्षित वन क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत किया गया है। 23 प्रतिशत अतिरिक्त वनक्षेत्र को वन्य अभयारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया है मात्र जिसके प्रभाव से ही 5 लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। वन अधिनियम 1864 तथा कालान्तर में भारतीय वन अधिनियम 1927 के वन उपनिवेशीकरण नीतियों के कारण आदिवासियों का वनों पर अधिकार राज्य प्रदत्त विशेषाधिकारों तक ही सीमित हो गया। ये अधिकार आदिवासियों की जीविका के लिये वनों पर आश्रितता को स्वीकारते हुए दिये गये तथा यह ब्रिटिश राज के खिलाफ आदिवासियों के शानदार संघर्ष की पृष्ठभूमि के लिये वर्तमान शासकों के लिये राजनैतिक बाध्यता भी थी।

सन् 1952 की वन नीति, 1972 के वन्यजीव संरक्षण अधिनियम तथा वन संरक्षण अधिनियम 1980 ने उपनिवेशोत्तर काल में इन लोक विशेषाधिकारों को राज्य प्रदत्त सुविधाओं के रूप में सीमित कर दिया। जैसा कि वन तथा प्राकृतिक परितंत्र संरक्षण अधिनियम के प्रारूप से आभास होता है भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासियों को वर्तमान संरक्षणात्मक सुविधाओं से भी वंचित करने का प्रयास चल रहा है। यह अधिनियम वन अधिनियम की जगह पर आएगा तथा इसके अन्तर्गत भूमि अधिग्रहण अधिनियम एवं संविधान की 5वीं अनुसूची में संशोधन भी प्रस्तावित हैं।

वर्ष 1991 में अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता का दर मात्र 23.03 प्रतिशत था जो कि सामान्य जनसंख्या के साक्षरता दर 42.83 प्रतिशत से काफी कम था। सरकार के 8वीं योजना दस्तावेज के अनुसार सामान्य जनसंख्या के 30 प्रतिशत के मुकाबले अनुसूचित जनजातियों के 52 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। केरल जैसे राज्य में जहां कि अधिक शिक्षित समाज है तथा जीवन स्तर विकसित देशों के समतुल्य है, किये गये एक अध्ययन के अनुसार 64.5 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं जबकि अनुसूचित जातियों में 47 प्रतिशत तथा अन्य जातियों में 41 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं।

प्रायः 95 प्रतिशत आदिवासी ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं तथा 10 प्रतिशत से भी कम घुमक्कड़ शिकारी-संग्रहकर्ता हैं, परन्तु कुल के आधे से अधिक अपनी जीविका के लिये वनोत्पादों पर आश्रित हैं। अतः पुलिस एवं वनरक्षी तथा अन्य अधिकारियों द्वारा आदिवासियों को धमकाना तथा धौंस जमाना आम बात हो गई है। छोटे-छोटे आरोपों में बड़ी संख्या में आदिवासियों को गिरफ्तार किया जाता है तथा जेल भेज दिया जाता है। मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में, उड़ीसा के कोरापुट, फूलबनी, मयूरभंज तथा अंडमान द्वीप के कुछ भाग सदृश कुछ क्षेत्र हैं जहां अत्यन्त सीमित आदिवासी जातियां जो कि वनों के मध्य निवास करती हैं, उन्हें वन क्षेत्र से विस्थापित नहीं किया गया है, और वे जंगलों में ही मुख्यधारा की विकासात्मक गतिविधियों से दूर जीवन बसर कर रहे हैं।

महाराष्ट्र के मेलघाट बाघ सुरक्षित क्षेत्र में आदिवासियों के जीवनरक्षक प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच नकार दिये जाने के परिणामस्वरूप 1990 के दशक में कोरकू जनजाति के 6 वर्ष से कम उम्र के हजारों बच्चे भूख एवं कुपोषण के कारण मर गये। उड़ीसा के कालाहांडी तथा बोलंगीर एवं दक्षिण बिहार के पलामू क्षेत्र के आदिवासियों में खाद्यसुरक्षा का अभाव सर्वविदित है। भारत सरकार के केन्द्रीय योजना समिति के अनुसार देश के 41 जिले जहां कि आदिवासी अधिक संख्या में रह रहे हैं, भूखजनित मौत से प्रभावित हैं जैसा कि इन क्षेत्रों से तत्संबंधित रिपोर्ट भी प्राप्त होता रहा है।



आदिवासी क्षेत्रों में घुसपैठ

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894, ने सर्वोच्च सत्ता की श्रेष्ठता को वैधानिक रूप देते हुए किसी भी क्षेत्र में जन हित के नाम पर किसी भी भूमि को अधिगृहित कर उपनिवेश विस्तार की छूट दे दी है। प्रायः समुदायों के दृष्टिकोण से ये विस्तार जनहित के लिये नहीं होते विशेषतः आदिवासियों के साथ ये परिस्थितियां अधिक लागू होती हैं। औपनिवेशिक न्याय के मूल सिद्धान्त रेस न्यूलियस "जो शासक द्वारा दूसरों को नहीं दिया गया हो - शासक का ही होता है" तथा टेरा न्यूलियस "भूमिखण्ड जो किसी का नहीं है" परम्परागत राजनैतिक तथा सामाजिक इकाईयों की मान्यताओं को ध्वस्त करते हैं और परम्परागत स्वशासन व्यवस्था को नष्ट करने की शुरुआत हैं।

अधिकांश आदिवासी क्षेत्रों में घुसपैठ की शुरुआत औपनिवेशिक काल में हुई जो कि उपनिवेशोत्तर काल में जाकर और भी तेज हो गई। अधिकांश आदिवासी क्षेत्रों पर सरकार ने अपना दावा पेश कर दिया। बांध, सड़क, उद्योग, खनन, सुरक्षित क्षेत्र आदि विकासात्मक परियोजनाओं के फलस्वरूप लगभग एक करोड़ आदिवासी विस्थापित हो गये। अधिकांश बांध (3000 से अधिक) आदिवासी क्षेत्रों में स्थित हैं परन्तु 1989-90 के आंकड़ों के अनुसार आदिवासियों के जमीन का मात्र 19.9 प्रतिशत ही सिंचित है जबकि सामान्य जनसंख्या के जमीन का 45.9 प्रतिशत भाग सिंचित है।

भारत कई खनिज पदार्थों का प्रमुख उत्पादक है जिसमें 52 मुख्य खनिज, 3 ईंधन खनिज, 11 धात्विक खनिज तथा अन्य लघु खनिज शामिल हैं। इन खनिज पदार्थों में से 45 खनिज (यथा कोयला, लौह अयस्क, मैग्नेटाईट, मैंगनीज, बॉक्साईट, ग्रेफाईट, चूना पत्थर, डोलोमाईट, यूरेनियम आदि) आदिवासी क्षेत्रों में ही पाये जाते हैं जिनसे राष्ट्र को खनिजों से प्राप्त कुल आय का लगभग 56 प्रतिशत प्राप्त होता है। भारतीय खान ब्यूरो के 1991-92 के प्रतिवेदन के अनुसार देश में कार्यशील 4175 खानों में से 3500 आदिवासी क्षेत्रों

में ही स्थित हैं। वनों से सरकार को आय 1869-70 में 56 लाख रुपये से बढ़कर 1970 में 1300 करोड़ रुपये हो गई। राष्ट्र के उत्पादक सम्पदा का मुख्य भाग आदिवासी क्षेत्रों में स्थित है परन्तु उन्हें राष्ट्र के विकास नाम पर अपने स्थान से विस्थापित एवं सम्मान से वंचित कर शक्तिहीन बना दिया है।

चरणबद्ध तथा सुनियोजित तरीके से आदिवासी क्षेत्रों में सामान्यतः विकास योजनाओं के द्वारा तथा विशेषकर आदिवासी विकास योजना के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है। झारखण्ड जैसे खनिज बहुल क्षेत्र में आदिवासियों की संख्या 60 प्रतिशत (1911 की जनगणना के अनुसार) से घटकर 1991 की जनगणना में 27.67 प्रतिशत मात्र रह गई है। विकास के नाम पर बड़ी संख्या में आदिवासियों को शहरी झुग्गी तथा बस्तियों को विस्थापित कर अपनी जीविका चलाने के लिये विवश कर दिया गया है। एक मोटे अनुमान के अनुसार सिर्फ दिल्ली में ही 40000 हजार से अधिक आदिवासी महिलायें घरेलू काम में लगी हुई हैं। कुछ क्षेत्रों में विकास के कारण आदिवासी दूसरे आदिवासी क्षेत्रों को पलायन कर गये जिसके कारण वहां पर द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो गई। असम में संथाल तथा बोड़ो जनजातियों का संघर्ष इसका प्रमाण है।



आन्तरिक उपनिवेशवाद

संवैधानिक विशेषाधिकारों तथा कल्याण कार्यक्रमों से आदिवासियों का एक छोटा तबका ही लाभान्वित हो पाता है। बहुसंख्य आदिवासी इन विशेषाधिकारों तथा कल्याण संबंधित कार्यक्रमों से वंचित हैं और इनका बंदरबांट जातिगत आधार पर अधिक शक्तिशाली समूहों में हो जाता है। महाराष्ट्र में 1971 के उपरान्त दो दशकों में आदिवासियों की संख्या में 148 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई परन्तु यह मुख्यतः पिछड़ी जातियों के आर्थिक रूप से सम्पन्न समूहों को राजनैतिक लाभ के कारण अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल करने के कारण था। आदिवासियों की जनसंख्या संबंधित भ्रामक धारणा उत्पन्न करने के अतिरिक्त

इसके गंभीर दुष्परिणाम भी हुए हैं। वास्तविक जनजातियों को हमेशा के लिये सुविधाओं तक पहुंच तथा हक प्राप्ति की सीढ़ी के अंतिम पायदान पर फेंक दिया गया है तथा शैक्षणिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास के अवसर तथा संसाधनों की सारी मलाई नवागन्तुक आदिवासी समूह चट कर रहे हैं।

बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976, लागू होने के बावजूद देश में बड़ी संख्या में बंधुआ मजदूर आदिवासी ही हैं। आदिवासियों के विकास के लिये सकारात्मक राजनैतिक, संस्थागत तथा आर्थिक प्रतिबद्धता के बावजूद आज भी बड़े पैमाने पर आदिवासियों का विस्थापन तथा जैविक ह्रास हो रहा है जो कि अनुवांशिक और सांस्कृतिक विविधता के लिये बढ़ता आघात है। इसके परिणामस्वरूप वनों में लगातार कमी तथा मत्स्य पालन के चौपट होने के अतिरिक्त बढ़ती बेरोजगारी, भूख तथा संघर्ष के आसार बढ़ते जा रहे हैं। देश के 90 प्रतिशत जैव-सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित करने में आदिवासियों का योगदान रहा है। इन्होंने बहुसंयोजक, जैवविविधता सहज उपनिवेश-पूर्व भारतीय पहचान की बाहरी जैव-सांस्कृतिक कीटाणुओं से रक्षा की है। शहरी बाजार में अतिशय एवं अव्यवस्थित मांग ने आदिवासियों को कच्चे माल का संग्रह अथवा जुगाड़ करने वाला बना दिया है।

यह एक क्रूर मजाक ही है कि आदिवासी जो कि भारत के कुछ सर्वोत्कृष्ट हस्तशिल्प का निर्माण करते हैं, हजारों पादप तथा प्राणी प्रजातियों को पहचान सकते हैं तथा वन, जमीन और नदियों के साथ रहकर बिना किसी बाजार से भोजन खरीदे स्थायी जीविका चला सकते हैं - उन्हें 'अकुशल श्रमिक' कहा जाता है। उतना ही नाजुक मुद्दा, कोयलकारो, बोधघाट, इंचमपल्ली, भोपालपट्टनम, राथोंग चू जैसे आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों का बड़े बांधों पर प्रतिरोध का है जहां पर कि प्रबुद्ध योजनाकारों द्वारा प्रस्तावित बड़े बांध की परियोजनाओं को जन आंदोलन के द्वारा रोका जा सका। इस तरह की स्थितियां मुख्यधारा समाज के आदिवासियों तथा आदिवासी क्षेत्रों के प्रति भेदमूलक तथा परभक्षी सोच के कारण ही उत्पन्न होती हैं। आदिवासी क्षेत्रों के आन्तरिक उपनिवेशीकरण एवं आदिवासियों को संविधान प्रदत्त संरक्षण की अवहेलना तथा उल्लंघन के मूल में वर्ण व्यवस्था आधारित सामाजिक धारणा तथा अधकचरी सांस्कृतिक चेतना है जो कि पूरे राजनैतिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्था पर हावी है। ऐसी मान्यतायें इतिहास में रची गईं तथा औपनिवेशिक एवं उपनिवेशोत्तर भारत में बलवती होती गईं।

'अपराधी जनजाति' पद ब्रिटिश शासकों द्वारा गढ़ा गया तथा अपराधी जनजातियां अधिनियम, 1871 के कारण जन शब्दावली में शामिल हो गया। इस अधिनियम में आदिवासियों सहित लगभग 150 जातियों की सूची बनाई गई जिन्हें जन्मजात अपराधी के रूप में दुष्प्रचारित किया गया। यद्यपि यह शर्मनाक कानून 1952 में वापस ले लिया गया तथापि सांसी, पारधि, कंजर, गुज्जर, बावरिया, बंजारा आदि जातियों को तथाकथित अपराधी जनजाति के राजदण्ड का दंश अभी भी झेलना पड़ता है। आज भी छोटे मोटे अपराध घटित होने पर उन्हें प्रथम संदिग्ध माना जाता है अन्तर इतना मात्र है कि ब्रिटिश कानून की जगह पर लागू आदतन अपराधी अधिनियम के अन्तर्गत घसीटा जाता है। बहुसंख्य जातियों के प्रति रुढ़िवाद के कारण प्रभावशाली मुख्यधारा में पूर्वप्रचालित व्यवस्थागत रूप में भेदभाव की धारणायें बलवती हुई हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व तथा उसके पश्चात पूरे कालखण्ड में आदिवासियों को विधिक अभिरक्षा के लिये विधिक श्रृंखला का सम्पूर्ण इतिहास रहा है। वर्ष 1879 में ही बम्बई प्रान्तीय भू-राजस्व संहिता के अन्तर्गत आदिवासियों से गैर आदिवासियों को अधिकारों की अनुमति के बिना जमीन अन्तरण पर रोक लगा दी गई थी। बिहार में छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908, संताल परगना काश्तकारी अधिनियम 1949, बिहार अनुसूचित क्षेत्र नियमन 1969, राजस्थान काश्तकारी अधिनियम 1955 (1956 में यथा संशोधित), मध्य प्रदेश में एम.पी.एल.पी. कोड 1959, आंध्र प्रदेश अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि अन्तरण नियमन 1959 (1970 में यथा संशोधित), असम भूमि एवं राजस्व अधिनियम 1970, केरल अनुसूचित जनजातियां (भूमि अन्तरण प्रतिबन्ध तथा अन्तरित भूमि का पुनःस्थापन), अधिनियम 1975 आदि विधान आदिवासियों के भूमि संबंधित अधिकारों की रक्षा के लिये राज्यों के द्वारा लागू किये।

उदाहरण के तौर पर आंध्र प्रदेश में भूमि अन्तरण के नियमों में उल्लंघन संबंधित 57,150 मामलों की जांच की गई जिससे 245,581 एकड़ जमीन प्रभावित थी परन्तु लगातार आतंकी संघर्ष के उपरान्त भी मात्र 28 प्रतिशत भूमि ही पुनःस्थापित की जा सकी। केरल में 9909.4522 हेक्टर जमीन अधिकार से संबंधित 8754 वाद स्थापित हुए जिसमें मात्र 5.5 प्रतिशत दावे ही पुनःस्थापित किये जा सके। इन अधिकारों के पक्ष में अनुकूल न्यायिक

आदेशों के बाद भी राज्य सरकारें टालमटोल का रवैया अपनाकर इन संरक्षणात्मक विधानों को स्वयं ही विखण्डित कर रही है।

आदिवासियों को संविधान प्रदत्त अधिकारों के प्रति मुख्यधारा समाज का कठोर तथा लापरवाह रवैया, राजनैतिक - प्रशासनिक तंत्र द्वारा जानबूझकर किये जा रहे विलोपन तथा कृत्यों के द्वारा आदिवासियों को संविधान से विमुख करने के प्रयास एवं इन सब पर न्यायिक उदारता समाज में आदिवासियों के विधिक अधिकारों के प्रति व्याप्त भेदभाव की गाथा स्वयं कहते हैं।



जाति, धर्म तथा भाषा

आदिवासियों में समांग सामाजिक सांस्कृतिक समूहों का विशुद्ध वर्गीकरण नहीं होने के कारण एवं गैर आदिवासियों के लचीले व्यवहार के कारण भारत में आदिवासियों का जातीय, भाषाई, सामाजिक तथा जीविका के आधार पर स्पष्ट मानवशास्त्रीय परिभाषा स्थापित करने में अनेक कठिनाईयां हैं। भारत में कुछ मुख्य धाराओं के प्रभाव के आधार पद आदिवासी समुदायों को कतिपय समूहों में रखा गया है। पहला समूह वेड्डियों का है जो कि आस्ट्रेलियाई मूलवासियों के समान हैं, दूसरा पूर्वोत्तर के पैलियो मंगोलियन आस्ट्रा एशियाटिक हैं, तीसरा समूह ग्रीको इंडियन्स का है जो कि गुजरात, राजस्थान एवं पाकिस्तान के क्षेत्रों में मध्य एशिया से आये हैं। चौथे समूह के अन्तर्गत अंडमान द्वीपों के नीग्रीटो समूह हैं जिनमें वृहत्तर अंडमानी, ओंगे, जारा तथा सेंटिनेलिज मुख्य हैं जो कि इन भागों में बीस हजार वर्षों तक पुष्पित, पल्लवित हुए परन्तु अब विलुप्त होने के कगार पर हैं। वृहत्तर अंडमानियों की संख्या मात्र 30 प्रतिशत तक सीमित हो गई है तथा ओंगे जनजाति की जनसंख्या 100 से भी कम हो गई है।

मध्य भारत में गोंड जनजाति जिनकी जनसंख्या लगभग पचास लाख है। गहरी चमड़ी वाले कोल तथा द्रविड़ जनजातियों के वंशज हैं तथा आस्ट्रिक भाषा की बोलियों का प्रयोग करते

हैं। इसी समूह के अन्तर्गत संताल भी आते हैं जिनकी संख्या लगभग चालीस लाख है। नेग्रिटो तथा आस्ट्रोलायड लोग मुडारी परिवार के मुंडा, संताल, हो हो, असुर, खड़िया, पानिया, शौरा आदि समूह से आते हैं। द्रविड़ समूह के अन्तर्गत गोंड, उराँव, खोंड, मालतो, भील, मीणा, गरासिया, प्रधान आदि शामिल हैं जो कि आस्ट्रिक अथवा द्रविड़ समूह की भाषा बोलते हैं। गुज्जर एवं बकरवा की उत्पत्ति ग्रीको इंडियन्स से हुई है और ये गुजरात के गुज्जर तथा पाकिस्तान में गुजरावाला के आसपास बसे आदिवासियों से संबंधित हैं।

पूर्वोत्तर में लगभग 200 देशज जातियां हैं। बोडो, खासी, जैंतिया, नगा, गारो, त्रिपिरी, मिकिर, अपातानी, कुकी, करबी इत्यादि मंगोल मूल के हैं और तिब्बत-बर्मा समूह तथा मोन खमेर की भाषायें बोलते हैं। अरुणाचल प्रदेश की आदि, अका, अपातानी, डफला, गलौंग, खेमटी, मोनपा, नोक्टे, शेर्दूक्पेन, सिंगपो, तंगसा, वांगचो जनजातियां तथा मेघालय की गारोजनजातियां तिब्बत-बर्मी मूल की हैं वहीं मेघालय के खासी मोन खमेर समूह के हैं। दक्षिणी भाग में मलयाली, इरुला, पनिया, आड़िया, शोलागा, कुरुम्बा आदि प्रोटो - आस्ट्रलॉयड समूह के हैं तथा द्रविड़ियन परिवार की विभिन्न भाषायें बोलते हैं।

भारत की जनगणना में 63 विभिन्न प्रजातियां को अन्य समूह में वर्गीकृत किया गया है जिसके अन्तर्गत 57 लाख से अधिक लोग आते हैं और इनमें से अधिसंख्य आदिवासी धर्म के हैं। यद्यपि संविधान उन्हें विशिष्ट सांस्कृतिक समूह के रूप में मान्यता देता है तथापि जो जातियां इसाई, मुस्लिम बौद्ध आदि के रूप में नहीं चिन्हित हो पाती हैं उन्हें हिंदू के रूप में पंजीकृत होने के लिये बाध्य किया जाता है। हिंदू तथा इसाई समूह के लोग आदिवासियों को सभ्य बनाने के लिये निरन्तर उनसे सम्पर्क में हैं जिसे क्रमशः संस्कृतीकरण तथा पाश्चात्त्यीकरण के रूप में अधिक परिभाषित किया गया है।

1981 की जनगणना के अनुसार मात्र 5 प्रतिशत आदिवासियों ने ही अपनी जाति का पंजीकरण अपनी जनजाति के नाम पर अथवा स्वयं द्वारा दिये गये नाम को ही करवाया यह संख्या 1991 में बढ़कर लगभग 10 प्रतिशत हो गई जो कि बढ़ती हुई चेतना तथा अपने अस्तित्व को बचाये रखने की जद्दोजहद को स्पष्ट करता है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 350 ए के अनुसार प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही देने की बात की गई है, व्यवहार रूप में ऐसा मात्र उन्हीं आदिवासी क्षेत्रों में हो पाया है जहां उन्होंने

इसपर स्पष्ट दावा किया। इतर क्षेत्रों में ऐसा नहीं हो पाया है। राष्ट्रीय विज्ञान तथा शैक्षणिक अनुसंधान परिषद् (एन.सी.इ.आर.टी.) जो कि राज्य का प्रमुख शिक्षण शोध संस्थान है ने इस ओर कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है। राज्य तथा शक्तिशाली सामाजिक व्यवस्था आदिवासी भाषाओं को हतोत्साहित कर सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से आदिवासियों को नपुंसक बनाना चाहती है ताकि वे सदा प्रबल संस्कृतियों के दास बने रहें। भारत के मानवशास्त्रतीय सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार लगभग दो तिहाई से अधिक बोलचाल की भाषायें विलुप्त हो गई हैं जिनमें से अधिकांश आदिवासी समूह की थीं।



विखंडन की प्रक्रिया

हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर तथा मिजोरम में कुछ आदिवासियों समुदाय ऐसे हैं जिनके सदृश्य सीमा के उस पार चीन (तिब्बत सहित), भूटान, म्यानमार तथा बांग्लादेश में रहते हैं। पूर्ववर्ती उपनिवेशवादी शासकों द्वारा खींची गई कृत्रिम सीमा के आर पार विभिन्न देशों में रह रहे इन आदिवासियों की राजनैतिक अकांक्षाओं को लगातार बढ़ते युयुत्सा के बावजूद नकारा जाता रहा है जिसके कारण विशेषतः पूर्वोत्तर भाग संघर्ष क्षेत्र के रूप में परिणत हो गया है।

आदिवासी क्षेत्रों का राज्यों में बंटवारा मुख्यधारा की जातियों की बोलचाल की भाषा के आधार पर किया गया तथा इसमें आदिवासियों के लिये इन्हीं सिद्धान्तों को लागू करने की आवश्यकता नहीं महसूस की गई। झारखण्ड का विभाजन बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा राज्यों में कर दिया गया यद्यपि आज बिहार राज्य के अन्तर्गत का यह क्षेत्र दशकों के संघर्ष के बाद अलग झारखण्ड राज्य के अस्तित्व में आया है। गोंड क्षेत्रों को उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में बांट दिया गया है। इसी प्रकार भील क्षेत्रों को भी महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान में बांट दिया गया है। पूर्वोत्तर भाग में नागा क्षेत्रों को नगालैण्ड, मणिपुर, असम तथा अरुणाचल प्रदेश में समाहित कर दिया

गया है। इसके अतिरिक्त जिला, तालुक तथा पंचायत स्तर पर इन प्रशासनिक इकाईयों को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि आदिवासियों की संख्या सशक्त न होने पाये और वे शारीरिक तथा राजनैतिक रूप से समाज में अशक्तिहीन बने रहें।

अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874, भारत सरकार अधिनियम 1919, तथा कालान्तर में भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत पहाड़ी क्षेत्रों को बहिष्कृत तथा आंशिक बहिष्कृत क्षेत्र के रूप में बांटा गया था जहां प्रान्तीय विधायिका का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। इन्हीं उपबन्धों के आधार पर अनुच्छेद 244 के अन्तर्गत दो अनुसूचियों क्रमशः अनुसूची 5 तथा अनुसूची 6 आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कुछ अंशों तक स्वशासन देने के लिये बनाई गईं। परन्तु व्यवहार में ये अब तक शुरु ही नहीं हो पाई हैं, यद्यपि वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था संबंधित विधिक प्रावधान पेसा (अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज का विस्तार अधिनियम) से स्वशासन में महत्वपूर्ण बदलाव की आशा बढ़ी है।

आदिवासियों के लिये उच्चकुल के प्रभावशाली तथा मुख्यधारा समाज के समान मानदण्ड नहीं अपनाकर, उनके परम्परागत स्वशासन पद्धति को उपयुक्त मान्यता नहीं देकर तथा स्वायत्तता देने के प्रश्न पर गंभीरता का प्रदर्शन नहीं कर भारतीय राज तथा समाज ने वर्गभेद आधारित साम्राज्यवादी मानसिकता का परिचय दिया है। सामाजिक रूप से समांग देश की अवधारणा तथा विशेषकर हिन्दी - हिन्दू प्रतिमान ने द्वारा आदिवासी भाषाओं, संस्कृति एवं सभ्यता के विनाश को बढ़ावा दिया है। एकस्वरूप पर केन्द्रिकृत राजव्यवस्था एवं औपचारिक शासन की प्रक्रिया के विस्तार ने आदिवासियों के स्वशासन इकाईयों एवं उनके आन्तरिक एकात्मकता को दुर्बल बना दिया है।



भविष्य के लिए संघर्ष

वर्तमान विश्व में आदिवासियों के स्थान को समझने के लिये प्रयुक्त धारणायें तथा शब्दकोश सामंती, उपनिवेशवादी तथा साम्राज्यवादी विचारधारा पर आधारित हैं जिसमें परम्परागत

तथा ऐतिहासिक रचनाओं के साथ साथ एकरेखीय वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति पर आधारित आधुनिक रचनाओं का समावेश है।

ऐतिहासिक रूप से आदिवासी, जैसा कि पहले कहा गया है, निकृष्ट मानव समझे गये हैं जिन्हें अकेला रखना अच्छा माना गया अथवा उन्हें सुदूर पिछड़े क्षेत्र में रहने वाला अपरिष्कृत मानव समझा गया जिसे सभ्य बनाना आवश्यक था। इनमें से किसी का भी युक्तिसंगत आधार नहीं है। परिणामस्वरूप आदिवासियों के संबंध में सरकारी तथा लोक प्रचलित धारणायें उनके लिये सामान्यतः प्रयुक्त पदों जैसे वनों में सीमित या वन्य आधारित, आदिवासी बोली, जीववाद, आदिम पेशे, मांसाहारी भोजन, नंगे तथा अधनंगे, घुमक्कड़ जनजातियां, सुरा तथा नृत्यप्रेमी आदि से स्पष्ट होती हैं। अब जरा इनकी तुलना आदिवासी समाज के प्रमुख गुणों जैसे इनका आत्मज्ञान, जातिविहीन तथा वर्गविहीन समतावादी समाज, समुदाय आधारित आर्थिक व्यवस्था, प्रकृति के साथ एकात्मकता और सहजीविता, समय आधारित लोकतांत्रिक प्रक्रिया, आत्मसात करने का इतिहास एवं लोकन्मुखी कला तथा साहित्य के साथ कर के तो देखें!

राजनैतिक भाषणों में लाभोन्मुखी आर्थिक व्यवस्था के बीच इनके स्थायी तथा जीविका आधारित अर्थव्यवस्था के महत्व की चर्चा नहीं होती बल्कि आदिवासियों की स्थायी तथा जीविका आधारित अर्थव्यवस्था के गलत मायने लगाये गये हैं जो कि इस गलत धारणा पर आधारित हैं कि अधिक उत्पादन की प्रक्रिया आदिवासियों की प्रकृति आधारित सामाजिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया से अधिक बेहतर है।

संघर्ष के स्रोत इन्हीं अनसुलझे विरोधाभासों से शुरू होते हैं। भूमंडलीकरण के दौर ने इस मान्यता को कमजोर किया है कि विकास के परिणामस्वरूप अधिकार हड़पे जाते हैं बल्कि इसने अधिकारों को हड़पे जाने को विकास की पूर्व निर्धारित शर्त के रूप में स्थापित कर दिया है। इसके प्रत्युत्तर में आदिवासियों का अपने हक के लिये संघर्ष अब राज्य की सीमाओं को पुनः परिभाषित करने, शासन, विकास तथा सत्ता के संघर्ष की ओर अग्रसर हो रहा है।



पर्यटकों का स्वागत; आदिवासियों का निष्कासन

रहस्योद्घाटन : भारतीय देशज समुदायों पर पर्यटन के प्रभावों पर चिन्तन

इक्वेशन्स

जोहर हम झारखंड के लोगों के लिए
हमारी भाषा के एक सिर्फ एक शब्द होने से बढ़कर है....
.... जोहर एक जज़्बात है, एक मनोवृत्ति, एक अहसास है
और स्वागत, आभार, प्रशंसा, एकता एवं
सलामी के भावों की अभिव्यक्ति है
....यह एक शब्द है जिसका हम सर्वप्रथम
प्रयोग तब करते हैं जब हम एक दूसरे से पहली बार मिलते हैं.....
..... हमने तुम्हें जोहर कहा
लेकिन हमारे गीत एवं नृत्य, हमारी भाषा और लोककथाएँ
मात्र पुस्तकालयों में सजे किताबों के पन्ने हैं
जिसपर आपके मानवशास्त्री विचार-विमर्श करते हैं।
इस तरह, आपने हमारे इतिहास को विकृत कर दिया।
आप हमारी संस्कृति की गलत व्याख्या करते हैं,
और इसे अपने विश्वविद्यालयों एवं सेमीनारों में बिकने की वस्तु बना दिया है
हमने आपको जोहर कहा....

(‘जोहर’ कविता से उद्धृत-मानव अधिकारों से संबंधित झारखंडी संस्थाओं का घोषणा-पत्र)

हवाई के निवासी' क्रेग चैटमैन कहते हैं, "देशज लोगों की अपनी कोई संस्कृति नहीं होती, ना ही वे पर्यटन को बढ़ावा देते हैं। बड़े यात्रा संस्थान अपना काम आकर करते हैं, फिर एक दिन देशज लोगों को अपने हाल पर छोड़ कर चल देते हैं। हम एक देशज चिड़ियाघर बन गए हैं, और मैं इसका कड़ा विरोध करता हूँ।"

बाली के 'तजोकोरडे राका केरथ्यासा' कहते हैं, "कुछ पर्यटक एवं भ्रमण पर आए लोग बिना हमारे रीति-रिवाजों को समझे हमारे सामाजिक एवं धार्मिक आयोजनों में फोटो खींचने के उद्देश्य से शरीक हो जाते हैं। वे ऐसा बर्ताव करते हैं मानो छुट्टी मनाने आए हों।"

आमेजन में टूरिस्ट गाईड्स पर्यटन पर निकले लोगों को भारी बारिश वाले जंगलों में ले जाने का ठेका लेते हैं। पर्यटक उनके पीछे देशज गांवों में चले जाते हैं, फिर वहाँ के स्थानीय परिवारों के साथ रहने की मांग करते हैं, उनका खाना खाते हैं तथा स्थानीय लोगों से आशा करते हैं कि वे उनका मनोरंजन भी करें। लेकिन गांव को छोड़ने से पहले सिर्फ थोड़ा सा दिखावे का भुगतान करते हैं।"

न्यूजीलैंड के डीकीहोरो मूलीगन, एक माओरी के अनुसार, "हम भगवान से डरने वाले, बड़े आराम से रहने वाले समुदाय हैं। बड़े माओरी नई पीढ़ी के लोगों को पचुर संभावनाओं से परिपूर्ण अपनी संस्कृति की शिक्षा देने की कोशिश कर रहे हैं यहां तक कि बहुत से यूरोपीयन जो कई पीढ़ियों से यहां रह रहे हैं, हमारे बारे में बहुत कम जानते हैं। आज, पर्यटन के द्वारा लोगों को समृद्ध माओरी संस्कृति एवं रीति-रिवाजों के बारे में जानकारी मिली है।"

भारत की देशज आबादी जो कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत हैं² एवं जिनका जीवन सांस्कृतिक, भाषाई, जीवन-शैली एवं कलात्मक विविधता से ओत-पोत हैं, पर्यटन के रूप में उन पर होने वाले हमले का मुकाबला करने के लिए तैयार हो रहे हैं। यह लेख देशज लोगों के विषय पर हो रहे चिंतन का रुख पर्यटन की ओर मोड़कर इसे प्रासंगिक बना रहा है - निःसंदेह पर्यटन ने विभिन्न रूपों में इनके शोषण, विस्थापन एवं मुख्यधारा से विलगन में योगदान दिया है। यह लेख इस विषय को तीन भागों में विभक्त कर चर्चा करता है - पहला भाग देशज समुदायों पर पर्यटन के हो रहे प्रभावों को तीन बिन्दुओं - शोषण, विस्थापन और लाभ में हिस्सेदारी पर केन्द्रित कर, भारत एवं एशिया, दक्षिण अमेरिका और

अफ्रीका के सामुदायिक अनुभवों के उदाहरणों के मद्देनजर उनका व्याख्या करता है। भाग दो पर्यटन का देशज समुदाय पर होनेवाले प्रभावों एवं उत्पन्न विवादों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों का खाका प्रस्तुत करता है। भाग तीन पर्यटन से संबंधित भारत की वर्तमान की नीतियों एवं कानूनी ढाँचा का विश्लेषण करता है और यह भी जानने की कोशिश करता है कि ये किस प्रकार पर्यटन से जुड़े विषयों एवं संभावनाओं की व्याख्या करते हैं।

प्रथम भाग

पर्यटन ने विश्व भर में देशज समुदायों को किस प्रकार प्रभावित किया है?



देशज का प्रदर्शन

पर्यटन के लिए देशज भूमि को लक्षित करने के चलन के प्रति आगाह करते हुए, डेबोराह मैकलारे ने एक दशक पूर्व लिखा है,³ "विपणन चलन ऐमोजोन, हिमालय, उत्तरी थाइलैंड की पहाड़ियों, अफ्रीका के जनजातिय क्षेत्रों एवं कनाडा और आस्ट्रेलिया की आदिम क्षेत्रों की ओर इशारा करती है। पर्यटन को बढ़ावा देनेवाली विज्ञापनें, इन क्षेत्रों के निवासियों को ऐसे व्यक्तियों की तरह जान-बूझ कर पेश करती हैं जो गर्मजोशी से भरपूर हों, मुस्कुराते हों, दोस्ती के इच्छुक हों एवं किसी को भी जोखिम में डालने वाले नहीं हो.... ऐसे लोग जो चापलूस हों और दूसरों की स्वागत के लिए आतुर रहते हों... पर्यटकों को आनंद पहुंचाने के लिए वहां हों..... पर्यटन संस्कृतियों का विक्रय करता है - हुला कन्याएं, भटकते जनजातीय लोग, एशियन पहाड़ी लोग एवं अमेरिकी निवासी पर्यटन के कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि जब हम पर्यटन पर जाते हैं, हम एक उत्पाद को खरीदते हैं, ऐसा उत्पाद जिसमें व्यक्ति शामिल हों।"

"विदेशागत" पर्यटन एवं पारिस्थितिकी पर्यटन ने देशज लोगों की समृद्ध एवं बहुआयामी संस्कृतियों की ओर ध्यान तो आकर्षित किया है, लेकिन इनका विपणन एवं प्रस्तुति इस तरह किया है जिससे इनकी संस्कृतियां विकृत हों, पारंपरिक रीति-रिवाज निम्नीकृत हों एवं देशज समुदायों को सस्ती चीजें बेचने वाले हॉलीवुड कथानक का पात्र बना दिया है।⁴

यह निर्विवाद तथ्य है कि पर्यटन ने भारत में देशज लोगों एवं उनकी संस्कृतियों को विक्रय हेतु प्रदर्शित किया है। अगर हम पर्यटन को बढ़ावा देने वाले रंगीन एवं आकर्षक छपी हुई सामग्रियां जिसका प्रकाशन केन्द्र एवं राज्यों के विभागों ने किया हो, पर गौर करें तो इस संबंध में काफी सबूत पा लेंगे।

"उड़ीसा : भारत की आत्मा" - उड़ीसा पर्यटन (1988)

"उड़ीसा की पुरातनता उसके आदिम लोगों की देन है जो अभी भी घने जंगलों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में वास करते हैं। अपने आदिम तौर-तरीकों के कारण रहस्य बने। उड़ीसा के ये आदिवासी आज भी न केवल मानव शास्त्रियों एवं समाज शास्त्रियों के लिए रुचि का विषय बने हुए हैं बल्कि विभिन्न क्षेत्रों से पर्यटकों के भ्रमण का कारण बन गए हैं जो पर्यटकों की नजर से अभी तक दूर रहे राज्य की मोहक रमणीयता से आकर्षित होकर उड़ीसा आ रहे हैं।"

.... लोक एवं जनजातीय गीत एवं नृत्य आज भी उड़ीसा में साल भर होने वाले मेले एवं महोत्सवों एवं ग्रामीण उत्सवों के अभिन्न अंग बने हुए हैं और दर्शक इन्हें वास्तविक विन्यास में प्रदर्शित होते देख सकते हैं।"

..... उड़ीसा में 62 ऐसे जनजातीय समूह हैं जो आज भी पहाड़ों एवं जंगलों में अपने पारंपरिक निवासों पर उसी शैली में वास कर रहे हैं जैसा वे वर्षों से करते आए हैं। जनजातीय क्षेत्रों का भ्रमण एक शैक्षिक एवं रोमांचक अनुभव हो सकता है बशर्ते कि आप उनके रीति-रिवाजों में कुछ देर के हिस्सेदार हो जाए"

"बस्तर: केवल एक पलायन नहीं - एक खोज"- छत्तीसगढ़ पर्यटन बोर्ड (2002)

बस्तर - एक ऐसी जगह है जहां पर्यटकों के रुकने के लिए उत्तम स्थान हैं, साथ ही उपयुक्त है छुट्टियां बिताने के लिए, आदिवासी भ्रमणों, जोखिम भरे एवं मोटर वाहन से होने वाले यात्राओं के लिए।

.... अगर आप जिले में कहीं भी चले जाए आपका सामना निश्चित ही अच्छे तरीके से कपड़े पहने हाट की ओर जाते आदिवासियों से होगा। औरतों को आप खाली पैर सर पर पड़े बोझा के साथ संतुलन बनाते हुए एक सीधी कतार में जाते हुए देख सकते हैं। बहुत सी औरतें सिर पर बास्केट एवं कमर पर बच्चा लटकाए होती हैं। इसके साथ ही आप बहुत ही ज्यादा मात्रा में गोदना की हुई बूढ़ी महिलाएं एवं चमकीले कपड़े पहने छोटी लड़कियों को भी देख सकते हैं निश्चित ही एक अद्भुत दृश्य।

..... आप चाहें तो भ्रमण के दौरान कोश कीट पालन केन्द्रों एवं मानवशास्त्रीय संग्रहालयों का भी भ्रमण बस्तर की आदिवासी संस्कृति का आनंद लेने के लिए कर सकते हैं

.... यह एक आदिवासी क्षेत्र है और हमने आपकी आदिवासियों के घर में ही उनके साथ मुलाकात की व्यवस्था कर रखी है। यह निःसंदेह एक बेहतरीन अवसर है उनसे मिलने का एवं उनके संस्कृति के बारे में जानने का।

..... सुबह के नाश्ते के बाद, एक जानकार पैलेस गाइड आपको कर्वथा के जनजातीय संसार जिसके बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है, से परिचय कराएगा। आप की मुलाकात भद और मैत्री के इच्छुक बैगा लोगों से होगी। बैगा जंगल में रहने वाली देशज जनजाति है। आप उनके साथ पिकनिक भोजन का आनंद लें.....

..... आपकी मुलाकात कुछ स्थानीय बाईसन, होर्न मारिया जनजाति के लोगों से भी होगी जो अद्भुत आनुष्ठानिक नृत्य के लिए विख्यात हैं। होटल में लौटने से पूर्व आपके मनोरंजन के लिए वे नृत्य भी करेंगे.....

"भारत का उत्तर-पूर्व: अछूता स्वर्ग" अद्भुत भारत

(पर्यटन मंत्रालय, भारत 2005)

अरुणाचल प्रदेश: आपतानी जनजातीय घरों का भ्रमण तो जरूरी है। आपतानी अरुणाचल की सबसे विकसित जनजाति है। मर्द एवं औरतें दोनों गोदना करते हैं तथा बांस के नथुने पहनते हैं।

नागालैंड - कोहिमा में किराना का समान खरीदना एक अद्भुत अनुभव है। नागा ग्रामीण औरतों को अपनी जनजातीय वेश-भूषण में विभिन्न उपज एवं जंगली उत्पादों का विक्रय करते हुए देखने के लिए आप थोक बाजार में अवश्य जाएं।

पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से छापे गए सामग्रियों से उद्धृत ये कुछ अंश इस बात का गवाह है कि मुख्यधारा में रह रहे लोग पर्यटन के उद्देश्य से किस प्रकार देशज लोगों को देखते हैं। देशज लोगों को न केवल उत्पाद के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, बल्कि उससे भी गंभीर बात है आदिवासी महिलाओं का मादक प्रस्तुतीकरण। प्रचार सामग्रियां ऐसे वाक्यों "पारंपरिक जेवर पहने एक रियांग सुंदरी", "एक मुस्कुराती त्रिपुरा लड़की," "नर्तकी की पोशाक पहने खासी सुंदरी" या सिर्फ "आदिवासी महिलाएं" से भरी पड़ी हैं। इन शीर्षकों के साथ होती हैं पारंपरिक वेश-भूषा में महिलाओं के रंगीन फोटोग्राफ। आदिवासी गाँवों का चित्रण एक रहस्यमयी, स्वर्ग के समान जगह के रूप में किया जाता है जहां लोगों को एक अलग ही किस्म की दुनिया का नजारा देखने को मिलता है। इन आदिम लोगों के संस्कृति, लोक साहित्य एवं पारंपरिक मूल्यों के बारे में जो कुछ भी उल्लेख है उसमें मुख्यधारा में रह रहे लोगों के अखड़पन और ज्ञान के अभाव का पता चलता है। उन्मादीकरण स्पष्ट है - एक पारंपरिक चित्र "शिल्प-तथ्य" और "स्मृति चिन्ह", पारंपरिक वेश-भूषा "पोशाक" एवं अनुवांशिक रीति-रिवाज, एक अनुभव का रूप ले लेती हैं।

विश्व भर में आदिम संस्कृतियों का उत्पादीकरण पर्यटन के लिए विभिन्न रूपों में हो रहा है। केवल कुछ दक्षिणी राज्य ही पर्यटन के द्वारा राजनीतिक रूप से प्रभावित नहीं हो रहे हैं। अमेरिका में खासकर अलास्का और हवाई के आदिम लोगों को पर्यटन में आई इस तेजी से होने वाले विकास के राजनीतिक परिणामों का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। जोन गौस "सिडक्सन ऑफ प्लेस" में लिखते हैं, 'अलोहा हवाई लोगों के संबंध में संभवतः

सबसे अधिक जटिल एवं विवादास्पद धारणा है। एक पर्यटक के लिए ये सिर्फ अभिवादन और विदाई या फिर 'प्रेम' की अभिव्यक्ति हैं, लेकिन मानवशास्त्री इसके गंभीर अर्थ निकाल रहे हैं।⁵ आदिम संस्कृति का पर्यटन हेतु शोषण के चलते एवं इनके उत्पाद के रूप में प्रस्तुतीकरण के कारण इनकी भाषा एवं संकेतों का बिना गहराई से अर्थ जाने काफी उपयोग एवं दुरुपयोग हो रहा है। जिस प्रकार पर्यटन अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है वह स्थिति आने वाली है जिसका चित्रण पूर्व में 'जोहर' कविता में किया जा चुका है।

मैक्सिको के विख्यात हुइचल कला का हुइचल आदिवासियों के धार्मिक विश्वास के रूप में चित्रण के बजाय इनका आर्थिक फायदे के रूप में उपयोग एक ज्वलंत उदाहरण है। हुइचल अपने आपको 'भगवान का प्रतिबिम्ब' मानते हैं एवं उनकी कला विश्व के बारे में उनकी पवित्र दृष्टि की ओर इंगित करती है, लेकिन पर्यटन एवं वैश्वीकरण ने उनकी कला को इंटरनेट पर उपलब्ध करा दिया है एवं उनको स्मृति-प्रपत्रों में पर्यटकों के रुचि के मद्देनजर छापा भी जा रहा है।

फिलीपींस के पहाड़ी सागदा क्षेत्र ने एक पर्यटन स्थल का रूप ले लिया है जिससे कांकानेज के अस्तित्व पर ही खतरा आ गया है। सागदा के लोग अपनी पैतृक भूमि का आदर पवित्र करते हैं लेकिन पर्यटन के लिए उत्सुक लोगों ने उनके रीति-रिवाज खासकर खेती से संबंधित रिवाजों पर अपनी दखल बना ली है। यहां तक कि उनके पवित्र कब्रगाहों को भी नहीं छोड़ा है और उनके पूर्वजों की हड्डियों को स्मृति-चिन्ह के लिए ले जाया जाता है।⁶

हिन्द महासागर के अंडमान द्वीप पर जरावा एक लुप्तप्राय जनजाति है जिसके सिर्फ 250 सदस्य ही द्वीप पर रह गए हैं। सन 2002 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने द्वीप की चड़मड़ाती पारिस्थितिकी एवं आदिवासी समुदायों की सुरक्षा हेतु महत्वपूर्ण निर्णय दिया था। इनमें शामिल था अंडमान ट्रंक रोड (ए.टी.आर.) का बन्द होना। 1950 में बना यह रोड दक्षिण एवं उत्तरी अंडमान को जारावी लोगों के लिए सुरक्षित क्षेत्रों से होकर जोड़ता है। लेकिन द्वीप की प्रशासनिक एवं औद्योगिक इकाइयां सर्वोच्च न्यायालय का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन कर रही है। जंगली भोजन की समस्या, जंगल आवृत की हानि एवं जरावा लोगों के लिए नई प्रकार की बीमारियां जिनसे लड़ने की क्षमता उनके शरीर में नहीं हो, के उत्पन्न होने के अलावा ए टी आर ने एक नई योजना जो 'जरावा पर्यटन'⁷ के रूप में

कुख्यात है की शुरुआत कर दी है। द्वीप पर भ्रमण पर आए लोगों से ए टी आर पर चलने एवं पाशाण युग में रह रहे नग्न आदिवासियों को देखने के आग्रह किए जाते हैं। लेकिन अब जब थोड़ी जागरूकता आई है प्रशासनिक नजरिया में स्वागत-योग्य परिवर्तन भी आया है। प्रचार सामग्रियों में इनका उल्लेख तो होता है, किन्तु यह भी लिखा होता है उनसे मेल-जोल एवं उनका फोटो खींचना मना है।

भारत में आदिवासी कलाओं को मुख्यधारा में लाने का चलन प्रचलित हो रहा है - एक पर्यटक पुस्तिका के अनुसार, "बस्तर कला की कुछ सुंदर कृतियां पांच सितारा होटलों की शोभा बढ़ा रही हैं एवं महंगे दुकानों पर उपलब्ध हैं।" हालांकि पर्यटन का उपयोग कुछ हद तक स्थानीय कला, संस्कृति एवं हस्त-शिल्प को जीवित रखने के लिए किया जा रहा है, उनके उत्पादीकरण का भय एवं उनके वास्तविक अर्थ एवं क्रियाओं में उलटफेर होना स्वाभाविक है। छत्तीसगढ़, भारत की एक आदिवासी महिला के अनुसार उसे उस कमरे में जाने से भय होता है जहां कि उनके पारंपरिक धातुओं से बने देवी-देवताओं के चित्र अथवा मूर्ति रखे हों। कारण यह है कि उनकी मान्यताओं के अनुसार देवी-देवताओं की मूर्ति को गांव के लोगों की सुरक्षा के लिए गांव के बाहर रखा जाता है। एक पसंदीदा उत्पाद बनाने से पहले लोगों ने आदिवासियों से उनके विचार एवं अनुभव को भी जानने की जरूरत नहीं समझी।



अपनी भूमि से भूमि-पुत्रों का विस्थापन: पर्यटन बेदखल कर रहा है

टेरी-लीन वीलीयम्स-डेविडसन, एक देशज लेखक देशज लोगों एवं उनके भूमि से संबंध पर उनके विचार को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं... "देशज लोगों के लिए पृथ्वी एवं इसके सभी जीवित पक्ष महत्वपूर्ण हैं और उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग हैं।"⁸ जहां बड़ी कम्पनियों ने तेल, दवा और लकड़ी के लिए इन्हें बेदखल कर दिया है, संरक्षण के विश्वस्तरीय प्रयासों के द्वारा लाखों लोगों को संरक्षण शरणार्थी बनाने का प्रयास भी उतना ही घातक है।⁹

अपने उपयुक्त शीर्षक 'संरक्षण शरणार्थी' से लिखे गए लेख में डाउनी बहुत ही अच्छे ढंग से यह उल्लेख करते हैं कि संरक्षण समूहों को मिल रहे राजनीतिक एवं आर्थिक मदद ने संरक्षण की प्रक्रिया को सुरक्षित क्षेत्रों (पी.एफ.), राष्ट्रीय उद्यानों एवं शरणस्थलियों के निर्माण के द्वारा गति प्रदान कर दी है। 1962 में पूरे विश्व में 1000 सरकारी सुरक्षित क्षेत्र थे, आज यह संख्या बढ़कर 11000 हो गई है। सुरक्षा-कवच में आ रहे क्षेत्रों की संख्या 1990 से दुगुनी हो गई है; यानि पृथ्वी की 12 प्रतिशत भूमि आज 'संरक्षण' के अंदर आ गई है। पहली नजर में यह भूमि एवं 'प्राकृतिक' संरक्षण अच्छा प्रतीत होता है, लेकिन जब हम विश्व भर के लोगों पर इनके प्रभावों को ध्यान में रखे तो हम यह मानेंगे कि पूरे विश्व की भूमि पर कभी इन्हीं 60 लाख 'संरक्षित शरणार्थियों' का कब्जा था।

पर्यटन ने पैतृक भूमि से देशज लोगों के विस्थापन के साथ ही इन्हें पारिस्थितिकी पर्यटन के लिए भी खोल दिया है। सभी सुरक्षित क्षेत्र बेहतरीन पर्यटन स्थल हैं - उनकी नैसर्गिक सुंदरता, वन्य जीव आकर्षण एवं जंगली स्वरूप ने काफी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित किया है। एक स्पष्ट एवं सामान्य रूप से स्वीकृत परिभाषा के अभाव ने पारिस्थितिकी पर्यटन को आकर्षक एवं सामान्य रूप से घातक भी बना दिया है। पारिस्थितिकी पर्यटन संरक्षण के साथ चला है लेकिन संरक्षण के प्रयासों में इसके योगदान पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। पारिस्थितिकी पर्यटन को बढ़ावा मिला क्योंकि इसे वातावरण के उपयुक्त माना गया - इसके द्वारा पारिस्थितिकी-संवेदनशील लोगों को आकर्षित कर उद्योग को बढ़ावा दिया गया, किन्तु जंगल में रह रहे लोगों के हितों पर कुठाराघात भी हुआ।¹⁰

यूगांडा के किडीयो घाटी नेशनल पार्क में, इक जनजाति की स्थिति खतरनाक है। पार्क के निर्माण के पूर्व, शिकार एवं जंगली चीजों को इकट्ठा। चुनने वाले इस समुदाय के लोग सब्जी, जड़ एवं फल-फूल की तलाश में सुडान एवं उत्तरी कीनिया तक घूमते हुए चले जाते थे। घाटी के राष्ट्रीय उद्यान के रूप में घोषणा के साथ, इन लोगों को बिना चेतावनी के जबरदस्ती बाहर कर दिया गया। यूगांडा के नेशनल पार्क के कड़े नियमों के अनुसार पार्क का किसी भी रूप में स्थानीय उपयोग नहीं हो सकता। नतीजा यह हुआ कि इन लोगों को पहाड़ों पर विपरीत परिस्थिति में रहने के लिए मजबूर होना पड़ा। इक का वन्यजीव पर सीमित प्रभाव था क्योंकि वे सिर्फ अपने उपयोग के लिए ही शिकार करते थे, किन्तु आज

पार्क में मजे के लिए यूरोपीयन एवं उत्तरी अमेरिकन पर्यटक आते हैं जो शिकार पर बड़े शौक से जाते हैं।¹¹ एक अनुमान के अनुसार कीनिया की 50 प्रतिशत से अधिक देशज आबादी ने पारिस्थितिकी पर्यटन एवं अन्य विकास कार्यों के नाम पर किसी-न-किसी रूप में भूमि से बेदखल होने की स्थिति का अनुभव किया है (उत्तरी कीनिया में यह संख्या 60-70 प्रतिशत है)¹² शोषण एवं भेदभाव के शिकार समुदाय में शामिल हैं - दक्षिणी क्षेत्र के मसाई एवं ओगीक, रीफ्टवैली के एण्डोरीज, इलचामुस, पोकोट, साबोट, सेंगवार समुदाय, उत्तरी कीनिया के बोरोना, घाबरा, रेनडाइल एवं सोमालिस एवं कीनिया समुद्री किनारा की नम-भूमि।

भारत में कुल 650 सुरक्षित क्षेत्र¹³ हैं जिसमें 196 राष्ट्रीय उद्यान, 508 वन्यजीव शरणस्थलियाँ, 29 बाघ सुरक्षित क्षेत्र, 14 जीव-मण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र एवं 3 संरक्षित सुरक्षित क्षेत्र शामिल हैं और अनुमानित 20 लाख की संख्या में संरक्षण-शरणार्थी।¹⁴ यह आश्चर्य की बात नहीं कि ये राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव शरणस्थलियों एवं जीव-मण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र जनजातीय लोगों की गृह भूमि है जिनके लिए जंगल उनके जीवन, अस्तित्व एवं इतिहास का आधार है। लेकिन ब्रिटिश औपनिवेशिकता के बाद स्वतंत्र भारत सरकार की औपनिवेशिक नीतियों के फलस्वरूप जंगलों के बारे में एक नई सोच उभर रही है जो कि देश के आदिवासी समुदायों के अस्तित्व को ही संकट में डाल रहा है। सर्वप्रथम यह सोच पश्चिमी सिद्धान्त पर आधारित था जिसके अनुसार जंगल एक हरा-भरा मानव-विहीन क्षेत्र है। यहां तक कि संरक्षण का मतलब जंगल में निवास कर रहे लोगों को जंगल पर उनके पारंपरिक अधिकारों से मुक्त कर उन्हें जंगल से बेदखल करना समझ लिया गया।¹⁵

भारत में राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्यजीव शरणस्थलियों को पारिस्थितिकी पर्यटन के आकर्षण के रूप में बढ़ावा दिया गया है। 2002 की नेशनल टूरिज्म पॉलिसी स्पष्ट रूप से कहती है - वन्यजीव शरणस्थलियों एवं राष्ट्रीय उद्यानों को भारतीय पर्यटन उत्पादन के अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए एवं पर्यटन स्थलों के निर्माण एवं पर्यटन प्रबंधन के मद्देनजर उद्यानों के वर्गीकरण के उपरान्त मुख्य उद्यानों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पारिस्थितिकी पर्यटन के उद्देश्य से देशज लोगों का अपने पारंपरिक भूमि से बेदखल होना एवं इसके परिणामों का इन नीतियों में उल्लेख नहीं है।

कान्हा राष्ट्रीय उद्यान मध्य प्रदेश के मांडला एवं समीपवर्ती बालाघार जिले के एक बहुत बड़े क्षेत्र में फैला है और सतपुड़ा एवं विंध्य में पूर्व से पश्चिम 500 कि.मी. में फैले जंगल आवृत क्षेत्र के अंदर आता है। यह समृद्ध जंगल बैगा एवं गोंड आदिवासियों की पैतृक भूमि है। बाघ निश्चित ही पर्यटन के हिसाब से आकर्षण का मुख्य केन्द्र हैं और 1974 में सरकार ने इस क्षेत्र को बाघ सुरक्षित क्षेत्र भी घोषित कर दिया। आज बाघों के संरक्षण के प्रयासों ने 26 आदिवासी गांवों (लगभग 5431 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में रह रहे 1217 परिवारों) को अपनी भूमि से बेदखल कर दिया है।¹⁶ आदिवासी गांव जो खेती एवं मामूली जंगल-उत्पादों के संग्रह द्वारा जीविका चला रहे थे बेदखल हो गए हैं एवं जंगल उत्पादनों के संग्रह से इनके निवासियों को वंचित कर दिया गया है। उनको आस-पास के इलाकों में फिर से बसाने की कोशिश की जा रही है, किन्तु बिना उचित कागजी कारवाई की। हालांकि जीवन कठिन है, एवं जीवन-यापन लगभग असंभव, वन अधिकारियों के द्वारा चलाए जा रहे वेबसाइट के अनुसार "अगर आप कान्हा में छुट्टी बिता रहे हों तो आपको ऐसा पतीत होगा जैसे कि आप अविस्मरणीय पुस्तक के पन्नों के अंदर जा रहे हों और शेरखान, बाघ, की जंगल में दहाड़ भी सुनना चाहेंगे..."¹⁷ वे निश्चित तौर पर विस्थापित आदिवासियों की आवाज की अनदेखी करते हैं।

इसी प्रकार की स्थिति (मध्य प्रदेश के ही) पेंच राष्ट्रीय उद्यान के आदिवासियों के समक्ष भी उत्पन्न हुई और इसे 1992 में देश का 19 वां प्रोजेक्ट टाइगर रीजर्व घोषित कर दिया गया। वर्ल्ड बैंक के द्वारा 1995 में इको डेवलपमेंट प्रोजेक्ट¹⁸ के शुरुआत के साथ ही शरणस्थली क्षेत्र के बहुत से गांवों को योजनाबद्ध तरीके से विस्थापित कर दिया गया।

15 गोंड परिवार, जो परंपरागत रूप से पेंच नदी के किनारे रह रहे थे, को अपने गांव अली कहां से विस्थापित कर दुर्गापुर में बसने के लिए मजबूर कर दिया गया।¹⁹ उन्हें बताया गया कि उनको हटाना जरूरी है क्योंकि राष्ट्रीय उद्यान का निर्माण किया जा रहा है। गांव वाले जिनके पास उपजाऊ, खेती योग्य भूमि थे, आज खेती नहीं कर सकते, ना ही गिरफ्तारी के भय से गांव में ही जा सकते हैं। पार्क के निर्माण के दौरान गोंड संस्कृति एवं पहचान को नजरअंदाज किया गया एवं गांवों के और वन विभाग के बीच के रिश्ते खराब हो गए हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि वन्यजीव की उचित रूप से सुरक्षा की जा रही है कि नहीं, खासकर तब जब शरणस्थली को पर्यटकों के लिए खोल दिया गया है।²⁰

नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान कर्नाटक के कोडागू एवं मैसूर जिले में स्थित हैं। 32,000 के लगभग आदिवासी राष्ट्रीय उद्यान में अथवा इसके आस-पास रहते हैं। क्षेत्र में रहने वाले मुख्य आदिवासी समूह हैं - जेनुकुरुबस (मधु का संग्रह करने वाले), बेट्टाकुरुबास (कुरुबस पहाड़ी), येरावास, सोलीगास एवं येरावास की उप-जातियां - पंजेरी येरावास एवं पानी-येरावास। नागरहोल के आदिवासियों को सर्वप्रथम वर्ल्ड बैंक के इको डेवलपमेंट प्रोजेक्ट के द्वारा विस्थापित किया गया। इसी विवादास्पद प्रोजेक्ट ने पूर्व में उन पर कई नियंत्रण लगाए थे जिसमें खेती, शिकार एवं जंगल-उत्पादों के संग्रह पर निषेध शामिल हैं। इस अन्याय के बावजूद, कर्नाटक सरकार ने 1994 में नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान के अंदर भारत के पहले पारिस्थितिकी अनुकूल सैरगाह के निर्माण का ठेका गेटवे होटल्स एवं गेटवे रिसार्ट्स (ताज होटल समूह की इकाई) को दे दिया। इस कदम का स्थानीय समूहों एवं आदिवासी संगठनों ने पुरजोर विरोध किया। कानूनी कार्यवाही भी इन समूहों के द्वारा की गई। नतीजतन उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार सैरगाह के निर्माण का कार्य रोकना पड़ा और पूरे मामले में राज्य सरकार के रवैये पर कड़ी आपत्ति की गई। नागरहोल निर्णय ने पारिस्थितिकी-पर्यटन के विकास में सुरक्षित क्षेत्र के उपयोग के संबंध में एक नई शुरुआत की किन्तु आदिवासियों का भविष्य आज भी अधर में लटका हुआ है। इस क्षेत्र में उद्यान परिक्षेत्र के आसपास बड़ी संख्या में पर्यटक सैरगाहों का निर्माण हो रहा है जिससे वन भूमि की न तो सुरक्षा हो पा रही है, ना ही आदिवासियों का कुछ फायदा ही हो रहा है।²¹

ये केस समुदायों एवं सरकारी नीतियों में बढ़ते तनाव को परिलक्षित तो करते हैं, साथ ही भारत में संरक्षण प्रक्रिया को समझने में सहायता भी करते हैं। सुरक्षित क्षेत्रों के अंदर 'टूरिज्म जोन्स' के निर्माण से संरक्षण के उद्देश्य एवं विस्थापित समुदायों के अधिकारों में बढ़ते विरोधाभास को बढ़ावा मिलता है। इसके फलस्वरूप पारिस्थितिकी संवेदनशील क्षेत्र के अंदर कार्यरत एक विश्व उद्योग को कानूनी मान्यता प्रदान करने की प्रक्रिया को बल मिला है, जबकि देशज लोग एवं स्थानीय समुदायों को आक्रामक तरीकों से जंगल से बाहर कर दिया गया है।

जब संयुक्त राष्ट्र ने 2002 को इंटरनेशनल इयर ऑफ इकोटूरिज्म (आई वाई ई) घोषित किया, इसका विश्वभर के देशज लोगों ने जर्बदस्त विरोध किया। पर्यटन से उत्पन्न कुछ

मूलभूत समस्याओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हुए देशज समूहों ने उद्योग के रूप में एवं इसके पर्यावरण एवं लोगों पर होनेवाले प्रभाव का बिना उचित रूप में मूल्यांकन किए बड़े पैमाने पर पारिस्थितिकी पर्यटन के अनियंत्रित प्रोत्साहन के खिलाफ चेतावनी भी दी थी।²² इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा था कि इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो जाएगी क्योंकि विस्थापन के बाद उन्हें पुनः नए तरीके से जीना सीखना होगा। पहले तो वो खुद ही प्रकृति के सहारे अपना जीवन चला लेते थे। पर्यटकों को भीतरी क्षेत्रों में पहुंचाने के उद्देश्य से भौतिक सुविधाओं को जुटाना होगा जिसका पर्यावरण और स्थानीय समुदायों पर बुरा प्रभाव-पड़ेगा। वर्षों बाद, ये आशंकाएँ सही साबित हुई है।

जैविक विविधता का संरक्षण निश्चित ही महत्वपूर्ण है। लेकिन हमें पहले मूलभूत सिद्धांतों पर फिर से नजर डालना होगा।²³ भारत में राष्ट्रीय उद्यान प्रबंधन संकल्पना जंगलों पर अमेरिकी अनुभव की नकल है। अध्ययनों को प्रस्तुत करते हुए गाडगिल एवं गुहा अपने पुस्तक "द फीजर्ड लैंड" में कहते हैं "जैविक विविधता उन क्षेत्रों में सबसे अधिक पाई जाती है जहां थोड़ा मानवीय दखल अवश्य होता है ... पूर्ण सुरक्षा के विचार के गंभीर परिणाम हो सकते हैं।" मार्क डाउनी के अनुसार - "देशज लोगों की उपस्थिति सुरक्षित क्षेत्रों की सुरक्षा का सबसे कारगर उपाय हो सकता है।"²⁴ यह स्थिति, वास्तव में, देशज लोगों ने वर्षों से बनाई हुई है।

भारत में संरक्षण के सिद्धांत ने आदिवासियों की प्रकृति एवं इसके विविध स्वरूपों की रक्षा में उनके योगदानों की अनदेखी की है। विभिन्न राज्यों में आदिवासियों की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएँ उन्हें प्रकृति से छेड़छाड़ से रोकती है। उड़ीसा के कालाहांडी में बाघ को भाई समझा जाता है और उसकी मौत के बाद सामुदायिक शोक मनाया जाता है। इसी तरह झारखंड के पूर्वी सिंहभूम में गोरंग, डोरांग एवं बुची वुड़ी देवी-देवताओं जो पहाड़ों, नदियों एवं जंगलों में रहते हैं, की पूजा करते हैं।

दलदली, छत्तीसगढ़ के मोती राम वैगा कहते हैं, "हम पहाड़ों, पेड़ों एवं नदियों की पूजा करते हैं। हमारे देवी देवता 'खेर माता' 'खूंट पार' 'ठाकुर देवरा' और 'नंगा बैगा' इन जंगलों और पहाड़ों पर रहते हैं। वे हमें सारी बुराईयों से बचाते हैं।"

ऐसे समुदाय जो प्रकृति से इतना जुड़े हुए हैं एवं जिनकी धार्मिक विश्वास और सामाजिक रीतियां प्रकृति को अधिक शोषण से बचाती है, अब अपने ही घर में अतिक्रमण करने वाले समझे जा रहे हैं। झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा जहां प्रचुर मात्रा में जंगल, जल एवं खनिज संपदा हैं में आधुनिक विकास ने इन समुदायों को एक किनारे पर खड़ा कर दिया है। औद्योगिकीकरण, खनन, बांध एवं अन्य बड़ी योजनाओं के कारण देशज लोगों का बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ है जिससे उनकी जीविका एवं सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ है। भद्र और सभ्य समझे जाने वाले पर्यटकों पर से अगर मुखौटा उतार दिया जाए तो हम पाएंगे कि उनके गृहभूमि पर बिना नियंत्रण के पहुंचने वाले वे शोशक अतिथि हैं।



होने वाले आय में देशज समुदायों का हिस्सा: पर्यटन क्या फायदा पहुंचा रहा है?

जहाँ एक तरफ पर्यटन के शोषक स्वरूपों का देशज समुदायों द्वारा विरोध हो रहा है, बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो पर्यटन से लाभ उठाने की जुगाड़ में हैं। परन्तु, वर्तमान के पर्यटन विकास की प्रक्रिया में क्या सामुदायिक हस्तक्षेप एवं सामुदायिक नियंत्रण की कोई गुंजाइश है और क्या इनसे समुदाय को फायदा पहुंच सकता है, क्या पर्यटन के वर्तमान स्वरूप इन समुदायों की संस्कृति एवं पहचान के प्रति संवेदनशील हैं?

पारिस्थितिकी-भ्रमण के नए तरीके इस बात का दावा करते हैं कि धरती की सुरक्षा की जाएगी और स्थानीय लोगों को आर्थिक तौर पर फायदा पहुंचाया जाएगा। पर, क्या ऐसा होता है? गैर-सरकारी संस्थानों के शोध एवं यहाँ तक कि वर्ल्ड बैंक के भी इस बात की ओर इशारा करते हैं कि उद्यान प्रबंधन योजनाएँ स्थानीय आर्थिक विकास के लिए कुछ खास नहीं कर पाए हैं।⁵ यहां तक कि सर्वाधिक सफल उद्यानें जैसे थाईलैंड की खाओ याई नेशनल पार्क जहां पर्यटक प्रतिवर्ष 5 मिलियन अमेरिकी डॉलर लाते हैं के आस-पास रहने वाले समुदायों की आर्थिक स्थिति खस्ता ही है। खांडा में पारिस्थितिकी पर्यटन से प्राप्त

राजस्व का उपयोग उद्यान प्रबंधन में भी होता है, लेकिन इसके बावजूद स्थानीय लोगों के लिए आर्थिक विकल्पों को तैयार नहीं किया जा सका है। विकास में लगे लोग पारिस्थितिकी पर्यटन के आधारभूत तत्व यानि लाभ में हिस्सेदारी की प्रायः अनदेखी कर देते हैं।

लेकिन जो और भी चिंताजनक बात है वह है पर्यटन के संदर्भ में देशज लोगों के अधिकारों का हनन। टूरिज़्म राइट्स इंटरनेशनल के अनुसार "पूर्व में ली गई सहमति" अत्यावश्यक है। इनकी अनदेखी के वजह से ही देशज समुदायों की बाहरी दुनिया के साथ संघर्ष की स्थिति आई है। इसमें शामिल हैं:- संबंधित प्रस्तावित पर्यटन गतिविधियों के बारे में समस्त सूचनाओं (सकारात्मक व नकारात्मक) की उपलब्धता, साथ ही आते संबंधित नीति-निर्माण में पहुंच और भागीदारी, स्थानीय लोगों द्वारा खुद से विकसित पर्यटन मॉडेल को सरकारी सहायता, एवं 'ना' कहने का अधिकार। ऐलीसन जॉनस्टन के अनुसार, "अगर पारिस्थितिकी पर्यटन उद्योग देशज लोगों से स्वतः समुदाय का समर्थन मिल जाने की आशा रखती है तो इसके लिए इसे ख्याल रखना पड़ेगा कि वह किनसे बात कर रही है, इन लोगों के अनुभव एवं आकांक्षाएँ क्या हैं और "स्व-निर्धारण" के अधिकारों पर क्यों इतना जोर दिया जाता है। कम्पनियों को यह जानना चाहिए कि व्यवसाय को किस प्रकार एक अच्छे रिश्ते बनाने की पहल के रूप में लिया जाए।⁶

देशज लोगों द्वारा लाभ में हिस्सेदारी की मांग विभिन्न स्वरूपों में आती है और यह केवल एक पर्यटन परियोजना से ही सीधी तौर पर संबंधित नहीं है। एण्डेस देशज लोग फोटो खिंचवाने के एवज में मुआवजे की मांग करते हैं। ओटालोवा की एक महिला कहती है, "हम अपने और अपने बच्चों के फोटो पोस्टकार्ड पर देखते हैं। फोटो खिंचवाने से हमें कोई फायदा नहीं होता, किन्तु एक पर्यटक को तो होता ही है। हम लाभ में कुछ हिस्से की मांग करते हैं।" उत्तरी भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में पहाड़ी समुदाय अपने पोशाकों को पर्यटकों को देते हैं जिन्हें पहनकर वे फोटो भी खिंचवाते हैं। इसके लिए उन्हें पैसे भी मिलते हैं। मेक्सिको के आदिवासी लोग अब जागरूक हो गए हैं और पर्यटन के पोन्नयन के लिए बनाए गए सामग्रियों पर अपने मोटिफ और कलाओं के उपयोग के बदले रॉयल्टी की मांग करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ ऐसे भी पहल हुए हैं जिनसे सामुदायिक हित पर आधारित पर्यटन ने सामुदायिक स्वामित्व का रूप ले लिया। बेलीज में टोलेडो इकोटूरिज़्म एशोसियेशन

(टी.ई.ए.) एक सामुदायिक स्वामित्व वाली संस्था है जिसका स्वामित्व और प्रबंधन मोपन, केकची एवं गरीफुना गांवों की संस्थाओं के हाथ में है।¹⁷ टी.ई.ए. का उद्देश्य प्रत्येक भागीदार गांव के द्वारा पर्यटन से होने वाले फायदा में बड़े पैमाने पर हिस्सेदारी है। प्रत्येक गांव के सात से नौ परिवारों को बारी-बारी से गाइड, खाना बनाने एवं मनोरंजन की जिम्मेदारी दी जाती है। इक्वेडर में एक सामानांतर कार्यक्रम सफल हो रहा है। आर. आई. सी. ए. एन. सी. आई. ई. (इण्डीजेनसब कम्युनिटी नेटवर्क ऑफ द अपर नापो फार इन्टलेक्चुअल एक्सचेंज एण्ड इकोटूरिज्म) की स्थापना एमाजोइनियन एक्वाडोर के नापो प्रोविंस में रह रहे क्वीचुआ समुदायों द्वारा 1993 में किया गया था।¹⁸ उनका लक्ष्य है समुदाय-आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन परियोजना के द्वारा नौ क्वीचुआ गांवों में जीवन के स्तर को सुधारना। इसके पहले इस क्षेत्र में भ्रमण विदेशी एजेंसियों के द्वारा होती थी जिसका फायदा गांव वालों को बहुत कम ही हो पाता था। आर. आई. सी. ए. एन. सी. आई. ई. ने स्व-निर्धारित रास्ता अख्तियार कर स्थिति में काफी बदलाव ला दिया है। अब सारे निर्णय गांव वाले खुद ही लेते हैं। आस्ट्रेलिया के मुताविंजी नेशनल पार्क, हिस्टोरिक साइट एण्ड नेचुरल रीजर्व को 1998 में इनके वास्तविक स्वामियों को सौंप दिया गया।¹⁹ अब इन प्रोजेक्ट को मुताविंजी लोकल एबोरीजनल लैंड कौंसिल चला रहा है। इस संस्था ने अब पार्क में होने वाले सभी भ्रमणों को अपने नियंत्रण में ले लिया है और ऑपरेटरों को लाइसेंस भी दे दिया है। अफ्रीका में पर्यटन से स्थानीय तौर पर अधिक फायदा उठाने के लिए बोत्सवाना, नामीबिया एवं दक्षिणी अफ्रीका के सैन समुदाय के सदस्यों ने विभिन्न संस्थाओं से सामुदायिक स्वामित्व वाली ज्वाइंट बेंचर टूरिज्म प्रोजेक्ट्स की शुरुआत के लिए सहयोग मांगा है।²⁰ स्वयं के पर्यटन उद्योग की शुरुआत की चाहत अब अन्य क्षेत्रों में रह रहे सैन समुदायों में भी जग गई है। वे न केवल आर्थिक फायदे के लिए ऐसा चाहते हैं, बल्कि अपनी संस्कृति एवं रीति-रिवाजों की पर्यटकों को जानकारी देने के लिए भी।

भारत के कुछ राज्यों में नागरिक समाज एवं स्थानीय लोगों ने अपने क्षेत्रों में पर्यटन के स्वरूप और तरीकों के निर्धारण का फैसला खुद करने का प्रयास किया है। 2003 में झारखंड के विभिन्न मिलों के देशज समुदायों के कुछ लोगों ने मिलकर 'दीर्घकालीन पर्यटन' पर 'झारखंड वासियों की नीतियां' की संरचना की। इस नीति के निर्माण के लिए पेरक का कार्य किया था क्षेत्र के ही दशम जलपात के करीब बसे पान सकम गांव के लोग

जिन्होंने वन विभाग से काफी जद्दोजहद के बाद जलप्रपात पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। इस नीति में शामिल है, संसाधनों से होने वाले लाभ में हिस्सेदारी, प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच एवं समुदायों द्वारा बनाए जाने वाले 'कोर टीम' का प्रावधान जिसका कार्य योजना बनाना, क्रियान्वित करना एवं उन पर नजर रखना है। यह नीति राज्य पर्यटन विभाग को सौंपी गयी, किन्तु अभी तक सरकार ने इन सुझावों को अपनी कार्यवाही में शामिल करने की दिशा में कोई भी पहल नहीं की है।

इसी तरह से, अटकू पंचायत (आंध्र प्रदेश) के कटकी गांव में गोस्तनी नदी पर एक छोटा सा जल प्रपात है। ग्राम सभा ने इस जगह को पर्यटकों के लिए आकर्षक बनाने के लिए रास्तों, सीढ़ियों एवं चेक-पोस्ट का निर्माण भी कराया है। यह पर्यटकों से जलपात को देखने के एवज में शुल्क भी वसूलती है। चूंकि बगल के ही बोरा गुफा को देखने आने वाले पर्यटकों में यह स्थान धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगा है, राजस्व की लालच में राज्य के आंध्र प्रदेश टूरिज्म डेवलपमेंट कारपोरेशन (ए.पी.टी.डी.सी.) ने अब इस जलपात को पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकसित करने की योजना बनाई है। अगर इस कदम का विरोध नहीं हुआ तो अभी तक ग्राम सभा जो कमाई कर रही थी, अपना अधिकार इस क्षेत्र पर खो देगी और कुंजी ए.पी.टी.डी.सी. के हाथों में आ जाएगी।

पर्यटन पर देशज स्वामित्व एवं नियंत्रण संबंधित प्रयोग एवं मॉडल्स अभी नवजात स्थिति में है।³¹ लेकिन भारत में जिम्मेदार पर्यटन में बढ़ती रुचि के मद्देनजर, नीति निर्धारकों को इन प्रयासों का अध्ययन करना चाहिए ताकि पर्यटन का विकास इस प्रकार हो कि वह समुदाय के नेतृत्व एवं स्वामित्व में रहे। कई देशज समुदाय यह आशा करते हैं कि पर्यटन 'विकास' के विनाशकारी पहलुओं जैसे लकड़ी की कटाई, खुदाई एवं अन्य शोषणकारी उद्योगों की जगह अच्छे विकल्पों को सामने लाएगी। उन्हें पारिस्थितिकी पर्यटन के बारे में जानकारी है, बल्कि कुछ तो इनका स्वागत भी कर रहे हैं क्योंकि इससे न केवल प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण होगा, बल्कि जीविका के वैकल्पिक साधन भी प्राप्त होंगे। हालांकि इन आकांक्षाओं के कोई तैयार मॉडल्स नहीं है, ना ही आसान उत्तर ही है। यह अवश्य प्रतीत होता है कि विकल्प, अच्छी प्रक्रियाएं एवं नए मॉडल्स का विकास उनके द्वारा अथवा उनके साथ हो।

भाग दो

पर्यटन एवं देशज लोगों के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय मार्गदर्शिका

देशज लोगों के संबंध में जारी कई अंतर्राष्ट्रीय मार्गदर्शिकाओं में पर्यटन का संदर्भ देखने को मिलता है। इनमें से कई नियमावली एवं मार्गदर्शिकाओं का निर्माण तो देशज लोगों द्वारा पर्यटन के उनके जीवन, संस्कृति एवं क्षेत्र पर हो रहे प्रभावों के जबरदस्त विरोध के फलस्वरूप हुआ है। हालांकि इनकी मानने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं है, ये सरकार एवं नीति-निर्धारकों को देशज लोगों एवं पर्यटन के विषय पर उपयोगी मार्गदर्शक का ढांचा उपलब्ध कराती है।

देशज लोगों के पारंपरिक अधिकारों पर ससम्मान विकासोन्मुखी सभा आयोजन करने वाले प्रथम संस्थाओं में इंटरनेशनल लेबर ऑरगेनाइजेशन का स्थान है। आइ. एल. ओ. कन्वेंशन ऑन इन्डिजेनस एण्ड ट्राइबल पॉपुलेशन, 1957 (नं. 107) उन जमीनों पर जो देशज लोगों को प्राप्त हैं, उनका अधिकार मानता है। इसका अनुसमर्थन 27 देशों जिसमें अधिकतर लैटिन अमेरिका के हैं ने किया है। भारत ने भी कन्वेन्शन का अनुसमर्थन किया है। 1989 में आइ.एल.ओ. ने इस कन्वेन्शन में संशोधन किया और इसे और भी मजबूती दी। आइ.एल.ओ. कन्वेन्शन नं. 169 (1989) के अनुसार "देशज लोगों के जीवन संस्थाओं, संपत्ति, श्रम, संस्कृति और वातावरण की रक्षा के लिए उचित कदम उठाए जाएंगे और ऐसे प्रयास इन लोगों द्वारा व्यक्त भावनाओं के विरुद्ध नहीं होंगे।" कन्वेन्शन नं. 169 देशज एवं आदिवासी लोगों खासकर उनके भूमि-अधिकारों, प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार की स्थिति एवं सीमा के बाहर के संबंधों के बारे में एक विस्तृत व्यवस्था है।³² इसमें कुछ ऐसी कड़ी धाराएँ भी हैं जिनकी वजह से देशज लोगों के क्षेत्र में विकास के कार्यों की शुरुआत के पूर्व उनको जानकारी देकर उनकी सहमति लेना आवश्यक है। इस कन्वेन्शन के अनुसार, "संबंधित देशज लोगों के पास विकास की प्रक्रिया के संबंध में अपनी प्राथमिकताओं के निर्धारण के अधिकार रहेंगे, क्योंकि यह उनके जीवन, मान्यताओं, संस्थाओं, आध्यात्मिक मनोस्थिति एवं जमीन जिन पर उनका कब्जा है अथवा वे उपयोग कर रहे हैं को प्रभावित करता है। साथ ही, जहां तक

संभव हो सके, अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास पर उनके नियंत्रण रहेंगे।" अभी तक केवल 13 देशों ने आइ.एल.ओ. कन्वेंशन 169 की संपुष्टि की है जिसमें भारत शामिल नहीं है। इन धाराओं का पर्यटन पर खासा प्रभाव है और इनका पर्यटन के स्वरूप एवं प्राथमिकताओं के निर्धारण में देशज समुदायों की भागेदारी को बढ़ावा देने एवं विकास से होने वाले हानियों को रोकने में प्रभावी रूप से उपयोग किया जा सकता है।

पर्यटन पर केन्द्रित, पर्यटन-विकास से संबंधित मार्गदर्शिकाओं में यू.एन.डब्ल्यू.टी.ओ. ग्लोबल कोड ऑफ़ इतीक्स जिसको सरकारी मान्यता यू.एन.जेनरल एसेम्बली द्वारा 21 दिसंबर 2001 को मिली, प्रमुख है। इस नियमावली के अनुच्छेद 1 की धारा एक के अनुसार, "मानवता से संबंधित नीति परक मूल्यों की समझ व पोन्नयन एवं धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक मान्यताओं की विविधता के प्रति सम्मान के भाव उत्तरदायी पर्यटन के आधार एवं परिणाम हैं। पर्यटन विकास में लगे लोग एवं पर्यटकों को भी खुद अल्पसंख्यकों एवं देशज लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाजों और व्यवहारों अपनाने चाहिए जिससे उन्हें उनका महत्व मालूम हो सके। अनुच्छेद 2 के अनुसार, "पर्यटन गतिविधियों को सबसे कमजोर समूह खासकर बच्चों, बुजुर्गों, विकलांग, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं देशज लोगों के व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान करना चाहिए।"

सन् 2002 में अपनाई गयी इंटरनेशनल फोरम ऑन इन्डीजेनश टूरिज्म की ओआकसाका डिक्लरेशन देशज समुदायों पर पर्यटन के प्रभाव लिपिबद्ध करता हुआ एक अति महत्वपूर्ण निर्णय है। आई.वाई.ई. के समय 13 पश्चिमी गोलार्द्ध देशों के देशज लोगों के द्वारा जारी घोषणा के अनुसार - "हम आई.वाई.ई. एवं पारिस्थितिकी पर्यटन के आधारभूत धारणाएँ जो देशज समुदायों को उत्पाद एवं हमारी भूमि को विश्व बाजार में बिक्री हेतु व्यावसायिक संसाधन के रूप में देखती हैं, का विरोध करते हैं। इस सर्वव्यापी आर्थिक ढांचा के अंदर पर्यटन बाजारी प्रतिद्वंद्विता को जन्म देती है और हमारी भूमि एवं लोगों को उपयोगी उत्पाद के रूप में प्रस्तुत करती है।"

यह घोषणा 'सतत विकास' की आड़ में आई.वाई.ई. द्वारा देशज लोगों की भूमि का वैधानिक रूप में अधिग्रहण का भी विरोध करता है। पर्यटन के दृष्टिकोण से देशज लोगों को किस प्रकार देखा जा रहा है, इस संबंध में घोषणा ने कई महत्वपूर्ण बातें सामने रखी

हैं। इसमें उल्लेखनीय है, इस बात को समझने की आवश्यकता कि देशज लोग 'स्टेकहोल्डर्स' नहीं बल्कि आंतरिक रूप से पहचान प्राप्त अधिकारी हैं सामूहिक एवं मानवीय अधिकारों के जिसमें स्व-निर्णय का अधिकार जानकारी देकर प्राप्त सहमति एवं प्रभावकारी भागीदारी शामिल हैं। यह धोखा खासकर सरकारों, निजी विकासकों, संरक्षण एवं पारिस्थितिकी पर्यटन में लगे गैर-सरकारी संगठनों, विकास में लगे एजेंसियों एवं विशेषज्ञों के संबंध में है। इसके अनुसार, "पर्यटन देशज समुदायों के हित में तभी हो सकता है जब यह स्व-निर्णय पर आधारित हो एवं इसे बढ़ावा दे। बाहरी विशेषज्ञ एवं सहायता हमारे लिए उपयोगी तभी हो सकते हैं जब वे हमारे समुदायों द्वारा रचित एवं निर्धारित मापदंडों के अंदर ही कार्य करें। इसलिए पर्यटन को बढ़ावा देने वाली योजनाओं का क्रियान्वयन एक देशज तकनीकी दल के निर्देशन एवं निगरानी में होना चाहिए और वह भी पर्यटन विकास के दीर्घकालीन लाभ व हानि के अध्ययन के बाद।" संयुक्त राष्ट्र को संबोधित करते हुए यह घोषणा निवेदन करती है कि देशज लोगों के पर्यटन विकास में सीधे तौर पर भागीदारी के लिए एक पारदर्शक एवं इमानदार प्रक्रिया को तैयार की जाए। यह मांग करती है कि राष्ट्रीय सरकारें वातावरण एवं देशज लोगों से संबंधित कानूनों एवं नियमावलियों का पालन करे। साथ ही यह पारिस्थितिकी पर्यटन के संबंध में दिश-निर्देशों के विकास की भी वकालत करती है जो भ्रमणों को स्थानीय संस्कृति एवं संवेदनशीलता के मद्देनजर संतुलित रख सके।

एक अन्य प्रक्रिया देशज लोगों के अधिकारों पर ड्राफ्ट यू.एन. डिक्लेरेशन के रूप में सामने आई। गुरुवार, 29 जून 2006 को मानवाधिकार समिति ने देशज लोगों के अधिकार संबंधी घोषणा को अपनाया।³³ यह घोषणा संयुक्त राष्ट्र की इंटरनेशनल डिकेड ऑफ द वर्ल्ड इन्डीजीनस पिपुल।³⁴ (1995-2004) के प्रयासों की परिणति थी। इन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य मानवाधिकार, पर्यावरण, विकास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी देशज लोगों की समस्याओं के निवारण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को मजबूती प्रदान करना था। यह घोषणा जिसको संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा के द्वारा अपनाया जाना बाकी है, से आशा है कि यह देशज समुदायों के अधिकारों को व्यापक तौर पर प्रचारित करेंगे और समर्थन हासिल करेंगे। हालांकि इस घोषणा ने पर्यटन का नाम विशेषकर तो नहीं लिया, यह निश्चित ही पर्यटन के कारण देशज लोगों के अधिकारों पर कुठाराघात की स्थिति में लागू होगी। यू.एन. के देशज विशयों पर स्थायी समिति³⁵ के अनुसार, 'लागू होने पर यह देशज लोगों

के अधिकारों पर अब तक का सबसे विस्तृत दस्तावेज होगा। घोषणा के मसौदे ने जिस प्रकार से सामूहिक अधिकारों को महत्व दिया है, वैसा अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के इतिहास में नहीं हुआ है। इसको अपनाने पर हमें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय देशज लोगों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक अधिकारों की रक्षा के लिए किस प्रकार प्रतिबद्ध है की, सबसे स्पष्ट तस्वीर मिल जाएगी।

लेकिन यू.एन. के सभी प्रस्तावों को देशज समुदायों ने स्वीकृति नहीं दी है। कन्वेंशन ऑन बायोलोजिकल डाइवर्सिटी (सी.बी.डी.) के पर्यटन मार्गदर्शिकाओं के संदर्भ में एक अन्तर्राष्ट्रीय बहस छिड़ी हुई है। जब 2004 में सी.बी.डी. के सेवन्थ कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टिज (सी.ओ.पी.7) ने पर्यटन मार्गदर्शिकाओं के मसौदे को अन्तिम रूप देने और इसे मंजूरी देने की योजना बनाई, तो अनेक देशज समूहों ने जोर देकर लिखा कि इसको अभी अन्तिम रूप से स्वीकृति नहीं दी जाए क्योंकि इसके निर्माण में देशज लोगों की भागीदारी नहीं थी। इंटरनेशनल इन्डीजीनस फोरम ऑन बायोडाइवर्सिटी (आई.आई.एफ.बी.) ने सी.ओ.पी. के चेयरमैन को लिखा, "हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि पर्यटन पर तैयार किए गए मार्गदर्शिकाओं के मसौदे को यहां कुआलालाम्पुर में मंजूरी दिए जाने के बारे में विचार किया जा रहा है। मार्गदर्शिकाओं के मसौदे संवेदनशील पारिस्थितिकीय व्यवस्था पर केन्द्रित है। यह स्थिति बड़ी चिन्ता का कारण है। विश्वस्तर पर तथाकथित पारिस्थितिकी पर्यटन उद्योग से देशज लोगों की पैतृक भूमि ही सबसे अधिक प्रभावित होगी। इस उद्योग से सबसे ज्यादा हानि देशज लोगों को हुई है। फिर, हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि विश्वस्तर पर देशज लोगों की भूमि ही सबसे कमजोर कड़ी है।"

फिर, इस मार्गदर्शिका में सांस्कृतिक विविधता एवं इसे जीवंत रखने के संबंध में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। आई.आई.एफ.बी. ने सी.बी.डी. के पर्यटन मार्गदर्शिकाओं के तथ्य एवं प्रक्रिया को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह देशज लोगों की उपेक्षा करता है तथा इन्हें निर्माण-प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया गया। देशज लोगों के प्रतिनिधियों ने यह निवेदन किया था कि पर्यटन मार्गदर्शिकाओं के मसौदे को अपनाने संबंधी विषय को दो वर्ष बाद 2006 में होने वाले सी.ओ.पी. 8 में विचार हेतु छोड़ दिया जाय। इन निवेदनों के बावजूद सी.बी.डी. ने आगे बढ़कर पर्यटन मार्गदर्शिकाओं को अपनाया जो आज सी.बी.डी. का औपचारिक रूप से अभिन्न अंग हैं। मार्गदर्शिकाएं अभी भी सांस्कृतिक जीवंतता एवं

पर्यटन द्वारा देशज लोगों के पैतृक भूमि के उपयोग संबंधी विषयों की अनदेखी करता है। सी.बी.डी. जैसी संस्थाएं वस्तुतः प्रजातंत्र में होने वाले सलाह एवं विचार की प्रक्रिया को हास्यास्पद समझते हैं। सी.बी.डी. से संबंधित इन घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया देती हुई, "एलीसन जॉनस्टन कहती हैं, "संयुक्त राष्ट्र के मंचों पर देशज लोगों ने अपने भूमि समर्पण पर विश्व की सरकारों के समझ पर अपनी आशंकाएं जाहिर की है। विभिन्न देशों की सरकारें यह जानती हैं कि देशज अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण मानकों का लगातार उल्लंघन हो रहा है। वे फायदा देखना चाहते हैं न कि मुआवजा एवं क्षमता के वर्तमान एवं पूर्व के मुद्दों में अपने को उलझाए रखना चाहते हैं। इसलिए जब पर्यटन पर सी.बी.डी. प्रक्रिया आगे बढ़ी तो देशज लोगों की व्याख्या को गंभीरता से लिया गया। सुरक्षात्मकता का जो स्तर अपनाया गया था उसकी कोई तर्कपरक व्याख्या नहीं थी।"³⁶

ये अंतर्राष्ट्रीय मार्गदर्शिकाएँ एक उपयोगी ढांचा प्रस्तुत करते हैं जिसे राष्ट्रीय सरकारें अपना सके। लेकिन सी.बी.डी. जैसी प्रक्रियाएं इस बात की ओर इशारा करती हैं कि विश्व स्तर पर भी उन प्रक्रियाओं जिनका उन पर खासा प्रभाव पड़ना हो, में भी देशज लोगों के अर्थपूर्ण एवं सही भागेदारी एक चुनौती ही है।

भाग तीन

देशज लोगों के मद्देनजर भारत की पर्यटन नीतियों पर एक नजर

भारतीय नीति निर्धारकों ने पर्यटन पर नजर छठी पंचवर्षीय योजना अवधि (1977-1982) के दौरान दिया, जब देश की पहली पर्यटन नीति को प्रस्तुत किया गया। तुरंत बाद 1985-90 अवधि के दौरान पर्यटन को एक उद्योग का दर्जा दे दिया गया, जिससे इसे संस्थागत वित्तीय सहायता, आधारभूत सुविधाओं की सहजता एवं एक तर्कसंगत कर के निर्धारण की सुविधा प्राप्त हुई। 1991 में उदारीकरण के साथ ही, देश की कई प्राकृतिक एवं जैव-विविधता से संपन्न क्षेत्रों को पर्यटन के लिए खोल दिया गया। जोर था पारिस्थितिकी पर्यटन पर एवं केन्द्र में थे वन, समुद्री किनारे पहाड़े एवं अन्य जीव-विविधता से संपन्न क्षेत्र।

पर्यटन के बाजारी पक्ष का लाभ उठाने के लिए कई राज्य सरकारों ने पारिस्थितिकी पर्यटन एवं संस्कृति एवं परंपरा पर्यटन को बढ़ावा देने, समुद्री किनारों पर नियंत्रणों को कम करने एवं पर्यटन के क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा देने जैसे कदम उठाए हैं।



पर्यटन पर राष्ट्रीय नीतियां

नेशनल टूरिज्म पॉलिसी (एन.टी.पी.) 2002 ने पारिस्थितिकीय जीवंतता, प्राकृतिक संसाधनों का न्यायोचित उपयोग एवं पर्यटन को गरीबी उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण मानते हुए इसे अपने आधारभूत सिद्धांतों में स्थान दिया है। यह नीति पर्यटन क्षेत्र में बढ़ते संघर्षों के लिए सामुदायिक भागीदारी में कमी को एक कारण मानता है और इसलिए पारिस्थितिकी पर्यटन एवं रोमांचकारी पर्यटन गतिविधियों के क्षेत्र में व्यापक सामुदायिक भागीदारी एवं स्थानीय समितियों एवं पंचायतों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता है।

पिछली नीतियों से अधिक प्रगतिशील होने के बावजूद, एन.टी.पी. पर्यटन के बुरे प्रभावों से निपटने के लिए मार्गदर्शिकाओं को स्पष्ट रूप से पहचानने एवं पारिभाषित करने में असफल रही है।³⁷ देशज लोगों के संबंध में यह नीति देशज एवं जनजातीय समुदाय के बारे में दो संदर्भों का सरसरी तौर पर उल्लेख करती है। यह नीति पारिस्थितिकी पर्यटन पर जोर तो देती है पर देशज समुदायों के निवास वाले क्षेत्रों में पर्यटन के प्रोन्नयन के दौरान कुछ सावधानियों को अपनाए जाने पर जोर नहीं देती। पर्यटन के कुछ आदिवासियों पर कुछ प्रतिकूल प्रभावों जैसे संस्कृति का उत्पादीकरण, भूमि विलगन, संसाधनों तक पहुंच पर रोक एवं शोषण की अनदेखी की गई है। पर्यटन पर अन्य महत्वपूर्ण नीति दस्तावेजों ने देशज क्षेत्रों में पर्यटन के नियमन की आवश्यकता को महत्व नहीं दिया है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के पर्यटन वाले अध्याय में देशज समुदायों से संबंधित किसी भी मुद्दों की चर्चा नहीं की गई है। अगर हैं भी तो वह एन.टी.पी. की, जो सरकार को पारिस्थितिकी पर्यटन पर जोर देने के लिए कहती है।

अगले पांच साल तक की नीति का नींव रखते हुए, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की पर्यटन कार्यकारी समुह ने पारिस्थितिकी पर्यटन के साथ परंपरा और संस्कृति पर्यटन पर भी जोर डाला है। किन्तु एक बार फिर से यह पर्यटन को नियमित करने जिससे देशज समुदाय प्रभावित न हो की आवश्यकता की अनदेखी करता है।³⁸

भारत सरकार की पर्यटन मंत्रालय ने पारिस्थितिकी पर्यटन संबंधी नीति एवं मार्गदर्शिका का खुलासा 1998 में किया। इन मार्गदर्शिकाओं का निर्माण "पारिस्थितिकी पर्यटन में हो रहे वृद्धि के इस प्रकार के नियमन के लिए हुआ है जिसका वातावरण की सुरक्षा और सामुदायिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़े। पर्यटन मंत्रालय द्वारा 1998 में जारी पारिस्थितिकी पर्यटन विभिन्न पर्यटन उद्योग समितियों के द्वारा बनाए गए अनेक अंतर्राष्ट्रीय मार्गदर्शिकाओं एवं ढांचों पर आधारित है।³⁹

वातावरण के संरक्षण पर जोर देने के साथ ही, यह नीति पारिस्थितिकी पर्यटन एवं देशज एवं स्थानीय समुदायों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं संस्थागत प्रक्रियाओं के पारस्परिक संबंधों को नजरअंदाज करता है। देशज एवं स्थानीय समुदाय जिन्हें स्थानीय वातावरण की जानकारी है को "राइट होल्डर्स" की जगह "स्टेक होल्डर्स" बनाकर यह नीति उन्हें उस प्रक्रिया में साझीदार बना देता है जिसमें वातावरण की सुरक्षा पर उनका नियंत्रण नहीं रहता और सब कुछ आर्थिक फायदे के लिए हो रहा हो।⁴⁰

स्थानीय समुदाय की भागीदारी की आवश्यकता पर जोर एवं जीविका एवं पर्यटन को स्थानीय समुदाय के वातावरणीय एवं सामाजिक-आर्थिक पहलुओं से जोर कर देखने की कोशिश एक गलत संदेश देती है कि यह नीति सामुदायिक हित एवं वर्षों तक जीवन्त रहने वाले पर्यटन सिद्धांतों की बहुत ही ज्यादा महत्व देती है। किन्तु जब इन समुदायों की वास्तविक भूमिका का प्रश्न, भौतिक आधारभूत सुविधाओं के आवश्यकता पर आधारित योजनाओं के निर्माण, पर्यटन प्रबंधन योजनाओं के निर्माण एवं प्रभावों के मूल्यांकन के संदर्भ में आता है, तो इन पर यह नीति खामोश रह जाती है।⁴¹



राज्य पर्यटन नीतियां

पर्यटन पर विभिन्न राज्यों ने अपनी नीतियां बनाई है और इनका राष्ट्रीय नीतियों के मुख्य सिद्धान्तों से प्रेरित होना जरूरी नहीं है। जो समान बात है वह यह है कि राज्य नीतियां पर्यटन को लोगों की नजरिए से देखने में असफल रही हैं और इसलिए पर्यटन नीतियां निवेश एवं विपणन योजना सी हो जाती है।

मध्य प्रदेश जो कि पर्यटन नीति की घोषणा करने वाले प्रथम राज्यों में से एक है, ने पारिस्थितिकी पर्यटन एवं रोमांचकारी पर्यटन के प्रोन्नयन को मुख्य उद्देश्यों के शामिल किया है। अपने 31 प्रतिशत वन-क्षेत्र के बंदोबस्त, पर्यटन विभाग, मध्य प्रदेश सरकार ने 2001-02 में पारिस्थितिकी एवं रोमांचकारी पर्यटन संबंधी नीतियों का संरचन किया। इस नीति को पृष्ठभूमि नोट के अनुसार, "आम पर्यटक सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्यटन से ही संतुष्ट नहीं हैं - पर्यटक कुछ रोमांच, मजा एवं लीक से हटकर की चीजों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। पर्यटकों की मनोवृत्ति में आए परिवर्तन के मद्देनजर राज्य सरकार ने पारिस्थितिकी पर्यटन एवं रोमांचकारी पर्यटन के प्रोन्नयन का निर्णय लिया है। पर्यटन के इन स्वरूपों को लोकप्रिय बनाने एवं विकास हेतु, सरकार पहली बार निजी निवेशकों से भागीदारी चाहती है। नीति के प्रमुख बिन्दुओं में शामिल हैं वे योजनाएँ जो निजी भागीदारी की बात करती हैं।

लेकिन राज्य में 23 प्रतिशत आदिवासियों की संख्या होने के बाद भी सरकार की प्राथमिकता पर्यटकों की बदलती मांगों की संतुष्टि है, न कि स्थानीय समुदायों की जीविका संबंधी समस्याओं का निपटारा। राष्ट्रीय उद्यानों एवं शरणस्थलियों की घोषणाओं के कारण मध्य प्रदेश में वन से विस्थापन आम बात है। कान्हा एवं बांधवगढ़ ज्वलंत उदाहरण हैं। राज्य पर्यटन नीतियां इन समस्याओं को नजरअंदाज करती है।

पड़ोसी छत्तीसगढ़ में स्थिति अलग नहीं है। 2006 की पर्यटन नीतियों से यह स्पष्ट है कि पर्यटन प्रोन्नयन एवं राज्य का पर्यटकों के एक ठिकाने के रूप में विपणन राज्य सरकार की प्राथमिकता है। यह जीवंतता, सामुदायिक भागीदारी एवं वातावरणीय संरक्षण की बात तो करता है लेकिन इन पर क्रियान्वयन किस प्रकार हो, पर चुप है। यह विकेन्द्रीकृत पर्यटन विकास और स्थानीय समुदाय की भागीदारी की बात तो करता है, लेकिन यह सब कुछ एक दिखावा ही लगता है क्योंकि इस नीति ने पर्यटन विकास के लिए राज्य सरकार द्वारा संचालित छत्तीसगढ़ टूरिज्म बोर्ड को नोडल एजेंसी बना दिया है। पर्यटकों की सुविधा हेतु यह नीति हास्यास्पद रूप से हेलीकॉप्टर की सुविधा उन भीतरी क्षेत्रों में प्रदान करने का प्रस्ताव करती है जहाँ जनजातीय एवं देशज लोग रहते हैं। यह नीति नस्लीय पर्यटन पर जोर देते हुए कहती है कि यह राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा एवं स्मारकों को पारिस्थितिकी पर्यटन के साथ जोड़कर प्रदर्शित करेगी।

उड़ीसा ने अपनी पर्यटन नीतियों का खुलासा 1997 में किया। यह भी अन्य राज्यों की नीतियों से अलग नहीं है। राज्य की पर्यटन नीति में गंजम, कालाहोड़ी, कंधामल, देवगढ़, ढेनकनाल, अंगुल, किओनझार एवं मयूरगंज को वन्यजीव पर्यटन के लिए प्रस्तावित किया गया है, जहाँ अच्छी संख्या में आदिवासियों की आबादी है। आदिवासी संस्कृति का उत्पादीकरण इस प्रस्ताव कि आदिवासियों की कला एवं कलाकृतियों पर भुवनेश्वर में एक संग्रहालय का निर्माण जिससे आदिवासी जीवन और संस्कृति पर्यटकों के समक्ष जीवन्त हो सके-से स्पष्ट है।

वर्तमान की पर्यटन एवं पारिस्थितिकी पर्यटन नीतियां जो पर्यटन के विभिन्न स्वरूपों को आदिवासी बहुल क्षेत्रों में प्रोन्नयन पर जोर देती हैं, असमानता को ही बढ़ावा देंगी। राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्यजीव शरणस्थलियों की घोषणाओं एवं वनों का "सुरक्षित क्षेत्र" के अंतर्गत पदोन्नयन का बढ़ता चलन आदिवासियों के लिए चिंता का कारण है।

संदर्भ

1. बार्श रसेल - "द वर्ल्ड्स इण्डीजीनस पीपुल्स", डीपार्टमेन्ट ऑफ नेटिव स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ लेथ ब्रिज, कनाडा (वर्ष अज्ञात)

2. कार्टियर, कैरोलिन (सं.) एवं लीऊ, एलन ए. (सं.)- "सीडक्वन्स ऑफ प्लेट : जियोग्राफिकल पर्सपेक्टिव्स ऑन ग्लोबलाइजेशन एण्ड टूरिस्टेड लैण्डस्केप्स", क्रिटिकल ज्याग्रफिस, राउटलेज, 2005.
3. "कन्टूर्स" - वोल्यूम 8 नं. 3/4, इकूमेनीकल कोअलीशन ऑन थर्ड वर्ल्ड टूरिज्म, नवंबर 1998
4. जॉनस्टन, एलीसन एन - "इज द सेक्रेड फार सेल? टूरिज्म एण्ड इण्डीजीनस पीपुल", अर्थस्केल पब्लिकेशन, 2006
5. मैकलारेन, डेबोराह - "रिथिंकिंग टूरिज्म एण्ड इकोटूरमेल : द पेंविंग ऑफ पैराडाइज एण्ड व्हाट यू कैन डू टू स्टाप इट," कुमारियन प्रेस, 1998
6. प्रभु प्रदीप - "ट्राइबल फारेस्ट इन्टरफेस - लाजिक ऑफ सरवाइवल, कोम्बेट लॉ, वाल्यूम 2 इमू 5, दिसंबर-जनवरी 2007
7. "ट्रबल इन पैराडाइज : टूरिज्म एण्ड इंडीजीनस लैंड राइट्स : टूवार्ड्स एथीकल साल्यूशंस", ब्रिफींग, माइनारिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल, जनवरी 2007
8. "क्रिएटिंग भ्वायस फार इंडीजीनस पीपुल", प्रकाशक, नेशनल एडवोकेसी फार डेवलपमेंट ऑफ इंडीजीनस पीपुल (एन.ए.सी.डी.आई.पी.); सहयोग : पी.आर.इ.एन. उडीसा एवं आइ टी डब्लू डब्लू एस - तमिलनाडु - दिसंबर 2002
9. "पैराडाइम वार्स: इण्डीजीनस पीपुल्स रेसिसटेंस टू इकोनोमिक ग्लोबलाइजेशन", इंटरनेशनल फोरम ऑन ग्लोबलाइजेशन, कमीटी ऑन इण्डीजीनस पीपुल्स, 2005.

टिप्पणियाँ

1. देशज लोगों के संदर्भ में 'नोटिस' अंग्रेजी शब्द का प्रचलन अब कम हो गया क्योंकि इससे सांस्कृतिक पिछड़ापन एवं पुरातनता जैसे विचार आते हैं और अधिकतर लोग इनसे बचना चाहते हैं। नकारात्मक भाव के बावजूद 'नोटिस' शब्द का प्रयोग नेलि आस्ट्रेलिया एवं अलास्का नोटिस करते हैं, शायद इसलिए कि नोटिस अमेरिकन शब्द का प्रयोग नस्लीय गर्व सम्मान के रूप में किया जाता है।
2. आदिवासी मामलों का मंत्रालय, 2001 जनगणना
3. "रिथिंकिंग टूरिज्म एण्ड इकोटूरमेल: द पेंविंग ऑफ पैराडाइज एण्ड व्हाट यू कैन डू टू स्टाप इट," डेबोराह मैकलास, कुमारियन प्रेस, 1998.

4. रसेल बार्श, "द वर्ल्ड्स इंडीजीनस पीपुल्स," डिपार्टमेंट ऑफ नोटिस स्टडीस एट द यूनिवर्सिटी ऑफ लेथ ब्रिज, कनाडा (वर्ष अज्ञात)
5. जॉन गॉस, "द सोवेनियर एण्ड सेक्रीफाइस इन द टूरिस्ट मोड ऑफ कन्जम्पसन," "सिडकशन्स ऑफ प्लेस: ज्याग्राफिकल पर्सपेक्टिव्स ऑन ग्लोबलाइजेशन एण्ड टूरिस्टेड लैंडस्केप्स", केरोलीन कारटीयर एवं एलन इ. लीव (सं.), राइटलेज, 2005
6. जोअन कारलिंग, "टूरिज्म इम्पैक्ट्स ऑन इंडीजीनस पीपुल ऑफ कोरडिलेरा" कानटूर्स, वोल्यूम 8 नं. 3/4, इकूमिनिकल कोआलिशन ऑन थर्ड वर्ल्ड टूरिज्म, नवंबर 1998
7. "क्वेसचंस अबाउट ए रोड, पंकज शेखसरिया, डाउन टू अर्थ 31 मई 2007
8. टेरी-लीन विलियम्स-डेविडसन- "सेक्रेड ओबजेक्ट्स, आर्ट एण्ड नेचर इन ए ग्लोबल इकोनामी", पाराडाइम वार्स : इंडीजेनस पीपुल्स रेसीसटेन्स टू इकोनोमिक ग्लोबलाइजेशन, इंटरनेशनल फोरम ऑन ग्लोबलाइजेशन, 2005.
9. मार्क डोवी, "कन्जर्वेशन रिफ्यूजीस" चैप्टर 14, पाराडाइस वार्स : इंडीजेनस पीपुल्स रेसीसटेन्स टू इकोनोमिक ग्लोबलाइजेशन, इंटरनेशनल फोरम ऑन ग्लोबलाइजेशन, 2005.
10. "मिक्सड प्रोमिसेस ऑफ इकोटूरिज्म", सुसेन यार्क, इंटरनेशनल फोरम ऑन ग्लोबलाइजेशन एज पार्ट ऑफ 'इण्डीजेनस पीपुल्स' रेसीसटेन्स टू इकोनोमिक ग्लोबलाइजेशन, प्रकाशक : आई.एफ.पी. 2004
11. "ट्रबल इन पाराडाइज : टूरिज्म एण्ड इंडीजेनस राइट्स : टूवार्ड्स एथीकल साल्युशंस", ब्रिफींग, माइनारिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल, जनवरी 2007
12. वहीं
13. वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, जून 2007, <http://www.wii.gov.in.htm>
14. उपर लिखि 10 नम्बर टिप्पणि को देखे।
15. प्रदीप प्रभु : "ट्राइबल फारेस्ट इंटरफेस - लौजिक ऑफ सरवाइवल", काम्बेट लॉ, वाल्यूम 2, अंक 5, दिसंबर - जनवरी 2004, पृ. 5-18
16. एन.एफ.एफ.पी.एफ.डब्ल्यू., इंडिया की ओर से सुपर्णा लाहिड़ी एवं देवजीत नंदी की ओर से क्षेत्र परीक्षण के दौरान प्राप्त आंकड़े।
17. <http://www.incredibleindiaholiday.com> / incredible-india-wildlife-holidays/kanha-wildlife-tour.html

18. 1995 में विश्व बैंक ने भारत में सरकार के सहयोग से पारिस्थितिकी विकास परियोजना की शुरुआत की। मध्य प्रदेश के पन्ना बाघ संरक्षित क्षेत्र का चयन कर्ज प्राप्ति के लिए किया गया। परियोजना का मुख्य उद्देश्य था भारत के जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी संरचना की सुरक्षा करना। यह कार्य राष्ट्रीय उद्यान के मध्यवर्ती क्षेत्र के चारों ओर रहने वाले ग्रामीणों को अपनी आजीविका के लिए वन पर निर्भरता को कम करने के लिए प्रेरित कर किया जाना था। विश्व बैंक ने यह योजना इस आशय के आधार पर बनाई थी कि वन्य जीव संरक्षित क्षेत्र में मानव आबादी के कोमल पेड़-पौधों पर जीव-जन्तुओं से संबंधित पारिस्थितिकी संयोजन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसलिए इन्हें वन्यजीव संरक्षित क्षेत्र के बाहर बसाना चाहिए और उन्हें वन के बाहर ही जीविका के स्रोत ढूंढने चाहिए। इससे ऐसा समझा गया कि ग्रामीणों एवं उनके फसलों की जंगली जानवरों से रक्षा हो सकेगी। साथ ही, जंगली जानवरों एवं पेड़ पौधों की मानवीय दखल से रक्षा होगी।
19. यह पार्क अनुसूचित क्षेत्र में है - अनुसूचित क्षेत्र भारतीय संविधान द्वारा पहचान किए गए वे क्षेत्र हैं जहाँ आदिवासियों की अत्यधिक मात्रा में आबादी है एवं इनका प्रशासन भी आदिवासी संस्थाओं एवं शासन को मद्देनजर रखते हुए ही होता है।
20. उपर लिखि 16 नम्बर टिप्पणि को देखे।
21. यह केस "आदिवासिस, राइट्स एण्ड टूरिज्म : एन एसर्शन फ्राम नागरहोल इ.क्यू.यू.ए.टी.आई.ओ.एन.एस, इक्वेशन्स 2000.
22. आई.वाई.ई. के जवाब में देशज पर्यटन पर अन्तर्राष्ट्रीय समिति की घोषणा का संदर्भ लें।
23. 'क्रियेटिंग भ्वायस फॉर इण्डीजीनस पीपुल', प्रकाशक : नेशनल एडवोकेसी काउंसिल फॉर डेवलपमेंट ऑफ इण्डीजीनस पीपुल (एन.ए.सी.डी.आई.पी.); सहयोग : पी.आर.इ.एम. - उड़ीसा और आई.टी.डब्ल्यू.डब्ल्यू.एस. - तमिलनाडु, दिसंबर 2002
24. उपर लिखि 12 नम्बर टिप्पणि को देखे।
25. "पीपुल एण्ड पार्क्स : लिंकिंग प्रोटेक्टेड एरिया मैनेजमेंट विद लोकल कम्युनिटीज", विश्व बैंक 1992
26. एलीशन एम. जॉनस्टन, "इज द सेक्रेड फार सेल? टूरिज्म एण्ड इण्डीजीनस पीपुल", अर्थस्कैन पब्लिकेशन 2006
27. उपर लिखि 11 नम्बर टिप्पणि को देखे।
28. वहीं।
29. वहीं।

30. "टूरिज्म एण्ड द एस.ए.एन. इन साउथ अफ्रीका," कान्टूर्स, इकूमेनीकल कोआलिशन ऑन थर्ड वर्ल्ड टूरिज्म, वोल्यूम 8, नं. 3/4 नवंबर 1998.
31. ऐसे कुछ प्रयास अब भारत में शुरू हो गए हैं जिसने पर्यटन विकास का रूस देशज समुदाय की आवश्यकताओं की ओर मोड़ दिया है। कुछ प्रयास तो समुदाय की स्वामित्व में हैं तो कुछ उनके द्वारा ही शुरुआत की गई है। इसमें सम्मिलित हैं, यू.एन.डी.पी. एवं पर्यटन मंत्रालय की अर्न्तजात ग्रामीण पर्यटन परियोजना जहाँ कुछ जगहों पर देशज समुदायों के साथ काम हो रहा है तथा पूर्व और उत्तर पूर्व भारत के गैर सरकारी संस्थाओं के पर्यटन एवं सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिकी संरक्षण के बीच संतुलन बनाने के प्रयास तथा गांवों के द्वारा खोनोना, नागालैंड में किए गए कुछ प्रयास
32. <http://www.ilo.org/public/english/indigenous/standard/index.htm>
33. संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त का कार्यालय : <http://www.ohcr.org/english/issues/indigenous/declaration.htm>
34. सामान्य सभा ने 22 दिसंबर 2004 को द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय दशक के लिए एक प्रस्ताव ए./आर.इ.एस./59/174 को पारित किया। द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय दशक की शुरुआत 1 जनवरी 2005 को हुई। आर्थिक एवं सामाजिक मामलों के अवर महासचिव, श्री जोस एन्टोनियो ओकैम्पो को द्वितीय दशक का समन्वयक बनाया गया। दशक का उद्देश्य कुछ विशिष्ट परियोजनाओं जिसमें तकनीकी सहायता इत्यादि शामिल हैं, के द्वारा सांस्कृतिक, शिक्षा, स्वास्थ्य, मानव अधिकार, वातावरण एवं सामाजिक और आर्थिक विकास के क्षेत्रों में देशज समुदाय की समस्याओं के समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर बल देना है। दशक का मूल विषय है "कार्य एवं सम्मान के लिए भागीदारी" <http://www.un.org/esa/socdev/unpfii/en/second.html>
35. संसदीय समिति का गठन संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (इ.सी.ओ.एस.ओ.सी.) प्रस्ताव 2000/22 द्वारा 28 जुलाई 2000 को हुआ। इस प्रस्ताव के द्वारा यू.एन. पी.एल.आई.एल. को "परिषद के आर्थिक एवं सामाजिक विकास, संस्कृति, वातावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मानवअधिकार विषयों से संबंधित आदेश-पत्र के अंतर्गत देश मुद्दों पर विचार करने का आदेश मिला। <http://www.un.org/esa/socdev/unpfii/en/structure.html>
36. उपर लिखि 26 नम्बर टिप्पणि को देखे।
37. दो संदर्भ हैं : "रेलवे का विदेशी पर्यटकों के प्रति विशेष आकर्षण है जो कि देश का अनुभव बड़े आराम से और देशज लोगों के साथ नजदीकी व्यक्तिगत संपर्क के द्वारा करना चाहते हैं ... और पारिस्थितिकी पर्यटन जरूरी रूप से जनजातीय एवं स्थानीय हस्तकला को प्रोत्साहित कर वातावरण को अच्छा करने एवं एक उचित एवं न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में सहयोग देती है"। राष्ट्रीय पर्यटन नीति, पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार 2002

38. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, पर्यटन कार्यकारी समूह रिपोर्ट 2007
39. पारिस्थितिकी पर्यटन नीति 1998 के अनुसार, यह यू.एन.डब्लू.टी.ओ. के द्वारा विकसित संरक्षित क्षेत्र एवं राष्ट्रीय उद्यानों के विकास संबंधी मार्गदर्शिकाओं पर आधारित है। साथ ही, यह पी.ए.टी.ए. कोड फार एनव्दारमेन्टली रिस्पॉसिबल टूरिज्म, विश्व यात्रा एवं पर्यटन परिषद के वातावरणीय मार्गदर्शिकाओं, हिमालयन पर्यटन सलाह बोर्ड द्वारा बनाए गए हिमालयन आचारसंहिता एवं इकोटूरिज्म सोसाइटी की पारिस्थितिकी पर्यटन संबंधी मार्गदर्शिका पर आधारित है।
40. इकोटूरिज्म एज मार्केट बेस्ड कन्जर्वेशन मेकेनीज्म, ब्रिफींग पेपर, इक्वेशन्स 2006
41. "ग्लोबलाइजेशन, गर्वनेन्स एण्ड ग्रासरूट्स : द केस ऑफ इकोटूरिज्म एण्ड इट्स इम्पैक्ट्स इन ट्राइबल डोमीनेटेड एरियास इन इंडिया", इक्वेशन्स नवंबर 2006
42. पेसा की धारा 4 एम iii



अतीत, जिसे हम भूल गए¹

इक्वेशन्स

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के हर पहलू में आदिवासी रीति-रिवाज का असर शामिल है लेकिन चेतन रूप में हम कभी इसे स्वीकार नहीं पाते। आदिवासियों के संघर्ष और उनके आंदोलनों से जुड़े लोगों के प्रयास के बावजूद भारतीय दर्शन, भाषा और प्रथाओं में उनके योगदान को आमतौर पर लोगों ने तो अनदेखा किया ही है, इतिहासकारों और समाज शास्त्रियों ने भी कभी उसका सही मूल्यांकन नहीं किया है।



भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के गुमनाम नायक (1763-1856)

आधुनिक भारतीय इतिहास के उस हिस्से में औपनिवेशिक शक्तियों के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह का कोई स्थान नहीं है, जिसमें केंद्रीय रूप से स्वतंत्रता संग्राम की ही बात की

गई है। वर्ष 2007 में भारत सरकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (1857-2007) के 150 साल पूरे होने का जश्न मना रही है और पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय इस मौके पर एक नए पर्यटन परिपथ (फ्रीडम सर्किट) को बढ़ावा देने में लगा है। पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय इस मौके पर टेलिविजन चैनलों पर दो विज्ञापन दिखा रहा है जिसमें उन महान स्वतंत्रता सेनानियों, राजनेताओं और जननायकों का जिक्र है जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। हालांकि सरकार और पर्यटन मंत्रालय ने साल भर तक चलने वाले इस जश्न के लिए कई कार्यक्रमों और रैलियों की योजना बनाई, लेकिन वे स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों के योगदान को सर्वथा भूल गए। मीडिया में आने वाली खबरें और इतिहास की मुख्यधारा अभी भी 1857 की क्रांति को ही आजादी की पहली लड़ाई और पहला जनसंघर्ष तथा भारत में उठे पहले विद्रोह के रूप में देखती हैं। लेकिन अगर आदिवासियों के इतिहास को खंगालें तो साफ दिखेगा कि उन्होंने ही देश में सबसे पहले औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जनसंघर्ष शुरू किया।

इसी संदर्भ में ये लेख 18वीं और 19वीं शताब्दी में झारखंड, गुजरात, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में हुए कुछ संघर्षों की याद को ताजा कराने की कोशिश है, जिससे साफ पता चलता है कि 1857 की जिस क्रांति को हम 'पहली' लड़ाई के रूप में देखते हैं, दरअसल लड़ाई उसके पहले ही शुरू हो चुकी थी। जैसे ही अंग्रेजों ने पूर्वी भारत पर कब्जा जमाया वैसे ही आदिवासियों का विद्रोह इस विदेशी शासन के खिलाफ फूट पड़ा। औपनिवेशिक शासन के शुरुआती दौर में ही जिस बहादुरी से आदिवासियों ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह किया और झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और बंगाल में आज भी मौजूद कई आदिवासी कबीलों ने इस प्रतिरोध का जितना त्रासदीपूर्ण परिणाम झेला, उतना किसी भी दूसरे समूह ने न तो झेला न ही वैसा विद्रोह किया। आमतौर पर हम जिसे ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह के रूप में देखते हैं वह 'शासक वर्ग' का औपनिवेशिक शक्तियों के खिलाफ संघर्ष है। महाराजाओं और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुए; कोई जीता और कोई हारा; लेकिन इसमें कहीं भी 'शासितों' का संघर्ष नहीं दिखता है। हमारे इतिहास में जो छूट गया है वो ये कि आदिवासी इलाकों में अंग्रेजों के कदम को सबसे पहले आदिवासियों के तीव्र

संघर्ष का ही सामना करना पड़ा। दरअसल आदिवासी इलाकों में अंग्रेजों को मिला प्रतिरोध 'शासितों' का प्रतिरोध था; 'आम जनता'का प्रतिरोध था।

1769 (पहले विद्रोह) और 1947 के बीच आदिवासियों ने अंग्रेजों के खिलाफ कुल 72 बड़े विद्रोह को अंजाम दिया। आदिवासियों का शुरूआती विद्रोह अंग्रेजों की कुछ नीतियों, जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे, आदिवासियों की आर्थिक व्यवस्था में ठेकेदारों को शामिल करना और आदिवासियों के ऊपर स्थानीय प्रशासन को थोपने जैसे मुद्दों को लेकर था। इसके परिणाम स्वरूप भारत के मध्य भूभाग में अंग्रेजों ने 'आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्र' की नीति को लागू किया। इन क्षेत्रों को आंशिक तौर पर औपचारिक प्रशासनिक ढांचे से अलग कर दिया गया था। यहां अंग्रेज खुद तो मौजूद नहीं थे लेकिन सिंहासन के प्रतिनिधि के तौर पर यहां उनके प्रतिनिधि मौजूद थे जो 'बेहतर शासन' के नाम पर किसी भी कानून को निरस्त या संशोधित कर सकते थे, उसे बदल सकते थे या फिर किसी नए कानून को लागू कर सकते थे।

इसके अलावा उत्तर पूर्व के इलाके में अंग्रेज प्रवेश नहीं कर सके। इसलिए प्रशासनिक सहूलियत के लिए उन्होंने इसे 'पूर्ण वर्जित क्षेत्र' का नाम दे दिया। यहां प्रशासन के नाम पर कुछ भी नहीं था और सरकार भी नाममात्र की ही थी। 1935 के गवर्मेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट में आंशिक रूप से वर्जित क्षेत्र और पूर्ण रूप से वर्जित क्षेत्र को दो अनुसूचियों में शामिल किया गया जो बाद में भारतीय संविधान में क्रमशः पांचवीं और छठी अनुसूचि के क्षेत्र के रूप में परिवर्तित हो गए।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जनांदोलनों की शुरूआत हो गई थी। अंग्रेजों के खिलाफ पहला विद्रोह 1769 में उत्तरी उड़ीसा और दक्षिणी झारखंड की कोंड जनजाति ने किया। इलाके में कहानियां प्रसिद्ध हैं कि कैसे रॉबर्ट क्लाइव को आदिवासियों ने घेर लिया था और उसे मार डालते, लेकिन उसे मारने के बदले उन्होंने अनाज रखने के बड़े से मर्तबान में छिपाकर बैलगाड़ी पर लादकर इलाके से बाहर भेज दिया।

1772 में पहाड़िया जनजाति का विद्रोह फूटा और फिर तिलका मांझी ने पांच साल तक विद्रोह की आग को जलाए रखा, जिन्हें 1785 में भागलपुर में फांसी दे दी गई। इसके बाद

तमार और मुंडा जनजाति ने विद्रोह किया। अगले दो दशकों में सिंहभूम, गुमला, बीरभूम, बांकुरा, मनभूम और पलामू में विद्रोह होते रहे। इसके बाद 1832 में कोलों ने और फिर 1832-34 के बीच खेवार और भुमिजों ने बड़े पैमाने पर विद्रोह किया। 1855 में लॉर्ड कॉर्नवालिस के स्थाई बंदोबस्ती के खिलाफ संथालों ने विद्रोह शुरू किया, और फिर एक साल बाद कई आदिवासी नेताओं ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

झारखंड के आदिवासियों के विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने पूरे इलाके में भारी मात्रा में फौज तैनात की। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश शासन और उनके प्रतिनिधियों के खिलाफ हुए विद्रोह में खेवार और बिरसा मुंडा का विद्रोह सबसे महत्वपूर्ण था। लंबे समय तक चलने वाला बिरसा मुंडा का विद्रोह अंग्रेजों की उन नीतियों के खिलाफ था जिनके चलते जमींदार और महाजन आदिवासियों को बेतरीके लूट रहे थे। 1914 में जतरा उरांव ने ताना आंदोलन की शुरुआत की (जिसमें 25,500 से ज्यादा आदिवासियों ने हिस्सा लिया)। 1920 में ताना आंदोलन देशव्यापी सत्याग्रह आंदोलन के साथ जुड़ गया और आदिवासियों ने औपनिवेशिक सरकार को भूमि-कर देना बंद कर दिया।

ब्रिटिश शासन के दौरान उड़ीसा में कई आंदोलन हुए जिनमें आदिवासियों ने स्वाभाविक तौर पर हिस्सा लिया। इन विद्रोहों में 1817 का पाइक विद्रोह, 1836-1856 का घुमसर विद्रोह और 1857-1864 के बीच का संभलपुर विद्रोह प्रमुख है।

आंध्र प्रदेश की पहाड़ियों में अगस्त 1922 में एक विद्रोह शुरू हुआ। अल्लूरी रामाचंद्रा राजू (जो सीतारामा राजू के रूप में प्रसिद्ध हुए) के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश की पहाड़ियों के बीच रहनेवाले आदिवासियों ने अंग्रेजों के साथ बड़े पैमाने पर गुरिल्ला युद्ध किया। अंग्रेज जब इनका सामना नहीं कर सके तो उन्होंने इन्हें कुचलने के लिए मालाबार स्पेशल फोर्स को बुलाया लेकिन सफलता तब ही मिल सकी जब अल्लूरी राजू का निधन हो गया।



झारखंड में आदिवासियों का विद्रोह

अंग्रेजों के खिलाफ पहला जनांदोलन झारखंड की पहाड़िया जनजाति ने 1767-80 के बीच किया। अंग्रेज सिंहभूम इलाके में घुस आए और उन्होंने संथाल परगना पर अधिकार जमाने की कोशिश की, जिसका पहाड़िया आदिवासियों ने जमकर विरोध किया।

दुमका में राजमहल पहाड़ियों (अब झारखंड का हिस्सा) के संथालों ने 1784 में विद्रोह का स्वर उठाना शुरू कर दिया। जंगल की जिस जमीन को संथालों ने खेती के लिए साफ किया था वे जमींदारों के हाथों चली गई। इस बंदोबस्ती का असर ये पड़ा कि संथालों पर कर का बोझ बढ़ने लगा। अब उन्हें अंग्रेजों और जमींदारों, दोनों को कर देना पड़ता था। इसके चलते संथाल झारखंड के दूसरे इलाकों, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्य भारत के इलाकों में जाकर बसने लगे।

पहला बड़ा विद्रोह 1784-85 के बीच बाबा तिलका मांझी (तिलका मुर्मू) के नेतृत्व में हुआ। संसाधनों की लूट और अत्याचार के विरोध में उन्होंने संथालों को इकट्ठा कर मुक्ति दल (लिबरेशन ग्रुप) का निर्माण किया। सन् 1784 को अंग्रेजों के खिलाफ पहले सशस्त्र विद्रोह और संथालों के हूल की शुरुआत के रूप में देखा जाता है। बाबा तिलका मांझी ने तत्कालीन भागलपुर और राजमहल के जिलाधिकारी ऑगस्टस क्लीवलैंड पर गुलेल से हमला किया जिसकी बाद में मौत हो गई। बाबा तिलका मांझी को क्लीवलैंड की हत्या के मामले में दोषी करार देते हुए 1785 में फांसी की सजा दे दी गई।

1790 तक आते-आते संथाल विद्रोह शांत हो गया और 1824 में दमिन-इ-कोह की स्थापना हो गई। राजमहल की पहाड़ियों को पहाड़िया जनजाति के लिए आरक्षित कर दिया गया और जंगल काटने के लिए पहाड़ के निचले हिस्से संथालों को दे दिए गए।

दमिन-इ-कोह की स्थापना के बाद कटक, दलभूम, मनभूम, बाराभूम, छोटानागपुर, हजारीबाग, पलामू, मिदनापुर, बांकुरा और बीरभूम से संथाल वापस आकर इस जमीन पर खेती करने लगे। अधिकांश संथालों के लिए ये उनकी गृहभूमि पर वापसी थी और उन्होंने अब फिर से अपने परंपरागत कानूनों को लागू करना शुरू कर दिया तथा साथ ही अपनी परंपरा के मुताबिक त्योहारों और धार्मिक कर्मकांडों को करने लगे। दमिन-इ-कोह में उनकी जिंदगी शांतिपूर्ण थी¹ हालांकि जंगल और संथालों का शांतिपूर्ण सहअस्तित्व ज्यादा लंबे समय तक नहीं चल सका। औपनिवेशिक शासन की मंशा थी कि जंगल की जिस जमीन को संथालों ने साफ किया और सालों से उसपर खेती करते रहे, उससे लगान वसूला जाए। संथालों के दूसरे विद्रोह का तात्कालिक कारण दमिन-इ-कोह की भूमि पर अंग्रेजों की ओर से लगान लगाना ही था। लेकिन अंग्रेजों, जमींदारों और अन्य बाहरी लोगों ने जिस तरीके से संथाल महिलाओं, स्थानीय लोगों, जमीन और जंगल को मात्र उपभोग की वस्तु में बदल दिया था, संथाल इसको लेकर भी आक्रोशित थे। संथालों के आंदोलन का उद्देश्य औपनिवेशिक शक्ति के खिलाफ समानांतर सरकार बनाने का नहीं था बल्कि ये आंदोलन शोषण तथा अत्याचार के खिलाफ था²

1855 में संथाल हुल अपने चरम पर था। कान्हो, सिद्धो, चंद तथा भैरव - चारों भाईयों ने दूसरे विद्रोह का नेतृत्व किया। उन्होंने अपने पैतृक गांव भोगनाडीह में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार, जमींदारों, महाजनों तथा दूसरे शोषकों के खिलाफ 10,000 संथालों को तैयार कर "हल" की शुरुआत की। उन्होंने निश्चय किया कि वे छोटे तबके के हिंदू तथा मुसलमानों को कोई क्षति नहीं पहुंचाएंगे क्योंकि अमीर तथा शक्तिशालियों ने उनका भी समान रूप से शोषण किया है। धीरे-धीरे यह विद्रोह बीरभूम, हजारीबाग और भागलपुर के दूसरे इलाकों में भी फैल गया और सशस्त्र संथाल औपनिवेशिक सत्ता के केंद्र, कलकत्ता की ओर कूच करने लगे। मजदूर, भूमिहीन किसान और विस्थापित संथाल भी इस आंदोलन से जुड़ गए जिससे ये आंदोलन और उग्र हो गया। पहले सिर्फ जमींदार और महाजन ही निशाने पर थे लेकिन धीरे-धीरे अंग्रेजों के खिलाफ भी आंदोलन तेज होने लगा। संथालों ने सबसे पहले अंग्रेजों की सेना को पायलपुर में हराया और फिर उन्होंने कई जगहों पर अंग्रेज अधिकारियों पर हमला किया। संथाल जैसे कृषक समुदाय के इस विद्रोह से अंग्रेज भड़क उठे और उन्होंने आम संथालों पर हमले शुरू कर दिए और

कई गांवों को तबाह कर दिया। जनवरी 1856 में संग्रामपुर (भागलपुर) के नजदीक संथालों की अंग्रेजों के हाथों हार हुई जिससे संथालों के विद्रोह को करारा झटका लगा। सिद्धो अंग्रेजों के हाथों मारे गए जबकि बिरभूम में कान्हो की गिरफ्तारी हो गई और उन्हें बाद में फांसी दे दी गई। एक अनुमान के मुताबिक 1855 के विद्रोह के दौरान अंग्रेज अधिकारियों और जमींदारों समेत कुल 10,000 लोग मारे गए।

कान्हो मांझी की मौत के बाद संथाल विद्रोह खत्म हो गया लेकिन संथालों के इस विद्रोह ने झारखंड के दूसरे कई आदिवासी समुदायों को अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने की प्रेरणा दी। तमार विद्रोह (1795) भूमिज विद्रोह (1798-99), पलामू में मुंडा विद्रोह (1819-20), कोल संघर्ष (1831), खैरिया आंदोलन (1860-80) और सरदारी आंदोलन (1859-95) की गिनती आदिवासियों के मुख्य विद्रोहों के रूप में होती है।

अपने प्राकृतिक संसाधनों और संस्कृति को बचाना आदिवासियों की सामूहिक आकांक्षा रही जो संथाल हुल के दौरान स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है और आदिवासियों की यही आकांक्षा उलगुलान की भी प्रेरणा बनी... उलगुलान, झारखंड के मुंडा आदिवासियों का वो प्रसिद्ध विद्रोह था जो बिरसा मुंडा के नेतृत्व में शुरू हुआ। बिरसा मुंडा का जन्म रांची के नजदीक चलखड़ में 1872 में हुआ था। उन्होंने मुंडा राज की स्थापना के लिए अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र आंदोलन किया। इसके साथ-साथ उन्होंने विभिन्न आदिवासी समुदायों में व्याप्त जबरन धर्म परिवर्तन, शराबखोरी, भूत-प्रेत और जादू-टोने के प्रति अंधविश्वास के खिलाफ भी सामाजिक सुधार की शुरुआत की। लगातार बिगड़ती कृषि व्यवस्था और अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव के चलते तेजी से बदल रहे सांस्कृतिक मूल्यों की दोहरी चुनौती से निबटने के लिए बिरसा मुंडा के नेतृत्व में मुंडा जनजाति ने कई आंदोलन किए। इन आंदोलनों के जरिए मुंडा जनजाति को उनके जमीन का मालिकाना हक दिलाने के साथ ही बिचौलिए और अंग्रेजों से मुक्ति की कोशिश की जाती रही। बिरसा मुंडा को सबसे पहले शांति भंग करने की कोशिश के आरोप में गिरफ्तार किया गया और दो साल के लिए हजारीबाग जेल भेज दिया गया। जेल से छूटने के बाद उनके समर्थकों ने सबसे पहले बोरतोडीह गांव में उनसे मुलाकात की और फिर अंग्रेजों के खिलाफ रणनीति बनाने के लिए उन लोगों ने मुंडा इलाके में सोलह सभाएं कीं। 1897 के अकाल ने उलगुलान आंदोलन के लिए उत्प्रेरक का काम किया। 1899 की क्रिसमस की पूर्वसंध्या (24 दिसंबर) की

तारीख हत्या, हत्या की कोशिश और लूटपाट के लिए तय की गई। सिंहभूम जिले के चक्रधरपुर और रांची जिले के खूंटी, कारा, तोरपा, तमार और बसिया में बृहत पैमाने पर आगजनी के साथ ही तीरों से हमले किए गए। इसके अलावा कई जर्मन मिशनरियों के गिरजाघरों पर हमले किए गए और उन्हें जला दिया गया। इसके बाद इटकेडीह के उपायुक्त, रांची के आयुक्त के साथ ही दूसरे अधिकारियों और खूंटी पुलिस स्टेशन पर भी सशस्त्र हमले किए गए। यह विद्रोह 9 जनवरी 1900 को अपने चरम पर पहुंचा जब मुंडा आंदोलनकारियों ने सेल में अंग्रेजों पर हमला किया। यहां भारी मात्रा में रक्तपात हुआ और कई आंदोलनकारी मारे गए। इसके बाद छापेमारी शुरू की गई और अंग्रेजों ने उन सभी लोगों को गिरफ्तार किया जिन्होंने आंदोलन में भाग लिया था। पहले 28 जनवरी को 32 लोगों के साथ दो मुंडा सरदार डोंका और मांझिया गिरफ्तार हुए और फिर 3 फरवरी को बिरसा मुंडा की गिरफ्तारी हुई। बिरसा मुंडा को रांची जेल में बंद कर दिया गया जहां 9 जून 1990 को उनकी मृत्यु हो गई। मुंडा आंदोलनकारियों की गिरफ्तारी और बिरसा मुंडा की मौत के बाद झारखंड में अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासी विद्रोह खत्म हो गया।



गुजरात में आदिवासियों का विद्रोह

जब बिहार (वर्तमान में झारखंड) के कुछ भागों और बंगाल में संथाल, मुंडा, हो और खरिया आदिवासी औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ आवाज़ उठा रहे थे, उसी समय गुजरात में भी आदिवासियों ने कई विद्रोह किए। गुजरात में पहला विद्रोह 1838 में पंचमहल जिले के चंपानेर में रूप सिंह नायक के नेतृत्व में हुआ। गुजरात में नायकों और भीलों ने आदिवासी आंदोलन का नेतृत्व किया। 1897 के बॉम्बे प्रेसिडेंसी गजेटियर में इन आंदोलनों का यथोचित उल्लेख नहीं है और बस हाशिए के तौर पर इनका जिक्र किया गया है। रूप सिंह नायक का जन्म पंचमहल जिले में चंपानेर के नजदीक जादूगोड़ा तालुका के दांडियापुर गांव में हुआ था और वे बाद में नारकोट के पाएली गांव चले गए। रूप सिंह का संघर्ष बहुसंख्यक

नायकों को जंगल और प्राकृतिक संसाधनों पर हक दिलाने के लिए था। नारकोट के राजा ने पंचमहल की दूसरी रियासत, छोटा उदयपुर के राजा की मदद से 1838 में रूप सिंह के पिता की हत्या कर दी। इसके फलस्वरूप 1838 में रूप सिंह ने नारकोट के राजा और अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष शुरू कर दिया।

1850 में रेलवे लाइन बनाने का काम शुरू किया गया जिसके लिए भारी मात्रा में लकड़ी की जरूरत थी। लकड़ी की इस जरूरत को पूरा करने के लिए पंचमहल के जंगलों को ठेकेदारों को दे दिया गया। अंग्रेजों ने नायकों के बीच उभर रही अशांति और विरोध को भांप लिया था। जंगलों के कटान के चलते अंग्रेजों को राजस्व का लाभ तो हुआ ही, साथ ही आदिवासियों के विद्रोह को दबाने में भी सुविधा हुई। देश के कई भागों में फैली 1857 की क्रांति की आड़ में रूप सिंह ने पंचमहल के भीलों और नायकों को संगठित कर एक समानांतर क्रांति का नेतृत्व किया। ये क्रांति 1859 तक चली। इस आंदोलन के कारणों और विनाशात्मक परिणाम के बारे में बहुत कम शोध हुआ है। इलाके में फैली कहानियों में इतना ही मिलता है कि अंग्रेजों ने रूप सिंह और उनके भाई केवल नायक को गिरफ्तार कर लिया और फिर बाद में छोड़ दिया। ये आंदोलन दस सालों तक दबा रहा लेकिन जब वाडेक गांव (जम्बूगोड़ा) के नायक जनजाति के ही जोड़िया भगत रूप सिंह से आ मिले तो फिर दोनों ने मिलकर संघर्ष को आगे बढ़ाया। जोड़िया भगत ने उस इलाके में नायक राज की स्थापना के उद्देश्य से पंचमहल के नायकों को अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन और चंपारन रियासत के खिलाफ संगठित किया और ये आंदोलन 1868 में अपने चरम पर पहुंचा।

यहां की लोककथाएं जोड़िया भगत और रूप सिंह के इर्द-गिर्द घूमती हैं। जम्बूगोड़ा के नायकों का मानना है कि जोड़िया भगत संत थे और उन्हें अलौकिक शक्तियां प्राप्त थीं। गांधार गांव (जमगोड़ा, पावागढ़ तालुक) के बुजुर्ग भव सिंह नायक जोड़िया भगत की लोकगाथाओं को बार-बार सुनाते हैं।

जोड़िया भगत ने 22 साल की कम उम्र में ही धार्मिक उपदेश देना शुरू कर दिया था। उन्होंने नायक समूह में स्थित सामाजिक बुराईयों को दूर कर उसमें अनुशासन स्थापित करने का प्रयास किया। वे जंगलों में रहे, बांस के पेड़ों के पास सोए और

उन्होंने अलौकिक शक्तियां प्राप्त की। एक रात उन्हें "देव वाणी" (भगवान की आवाज) सुनाई दी जिसने जोड़िया भगत को बांस का एक टुकड़ा काटने को कहा। आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने उस टुकड़े को काटा। एक से तलवार तथा दूसरे से छड़ी बनाई, जो कि उनकी अपार और असीम शक्ति का स्रोत बना।

जोड़िया भगत तथा रूप सिंह दोनों ने वाडेक गांव में नायक राज की स्थापना की। रूप सिंह नायक राजनीतिक मामले देखते थे और जोड़िया भगत सामाजिक व धार्मिक मामले। दोनों ने हर तरह से एक दूसरे की सहायता करते हुए नायक राज के लिए संघर्ष किया। स्थानीय लोगों का मानना है कि नारकोट मूलरूप से नायकों की रियासत थी जिसे ऊंची जाति के राजाओं तथा जमींदारों ने छीन लिया। यह संघर्ष उस समय शुरू हुआ जब जोड़िया भगत और रूप सिंह ने नारकोट के पुलिस चौकी पर हमला कर दिया। नारकोट के राजा जगत बारिया उस समय रियासत से बाहर थे लेकिन जोड़िया भगत, रूप सिंह और दूसरे नायकों ने थाना प्रभारी शिव लाल और कुछ अन्य लोगों की हत्या कर दी। बाद में उन्होंने जंबूगोड़ा रेलवे स्टेशन पर भी हमला किया। उस समय छोटा उदयपुर रियासत के राजा शिकार पर निकले थे। नायकों ने उन्हें चुनौती दी और नारकोट, जंबूगोड़ा और छोटा उदयपुर के राजाओं ने नायकों के सामने समर्पण कर दिया। 1868 में इन रियासत के लोगों को भरोसा हो गया कि अब ब्रिटिश राज खत्म हो गया है तथा नायक राज की स्थापना हो चुकी है।

बदला लेने के लिए अंग्रेजों ने बड़ौदा के राजा सहज सिंह गायकवाड़ की सहायता से सेना का गठन किया। ब्रिटिश सेना ने वाडेक और डांडियापुर को कब्जे में ले लिया और विद्रोह में शामिल कई नायकों को गिरफ्तार कर उन्हें 5-9 साल की सजा दे दी। रूप सिंह नायक, उनके बेटे और जोड़िया भगत भी पकड़े गए तथा उन्हें फांसी की सजा दे दी गई। जंबूगोड़ा के आसपास रहने वाले सभी नायकों को अंग्रेज इस विद्रोह के कारण संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने इस इलाके से नायकों को हटा दिया और यहां "स्थवास" जनजाति के आदिवासियों को बसा दिया। फिलहाल वाडेक, डांडियापुर तथा आस-पास के गांवों में एक भी नायक परिवार नहीं रहता है। जालू भाई नायक कहते हैं "नायकों को वाडेक, डांडियापुरा या जंबूगोड़ा में नहीं रहना चाहिए क्योंकि वे लोग लंबे समय तक यहां नहीं रह पाएंगे। हमें विश्वास है कि अगर नायक यहां बसते हैं तो वे ब्रिटिश जैसे बाहरी लोगों द्वारा मार दिए जाएंगे।"



मध्य और पश्चिमी भारत के दूसरे भागों का संघर्ष

रूप सिंह नायक और जोड़िया भगत की मृत्यु के साथ ही आदिवासियों के विद्रोह की कहानी खत्म नहीं होती। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में इस संघर्ष को महान नायक गोविंद गुरु ने संचालित किया। संतरामपुर और मनगढ़ के स्थानीय आदिवासियों का मानना है कि गुरु बंजारा थे और राजस्थान के डूंगरपुर के वसिया गांव से आए थे। उन्होंने आदिवासी गांवों में जानवरों का व्यापार शुरू किया। गोविंद गुरु इस बात से काफी दुखी हुए कि जो आदिवासी परंपरागत रूप से जमीन, जंगल और दूसरे संसाधनों के मालिक हैं, उनके पास मूलभूत सुविधाएं तक मौजूद नहीं हैं। उन्होंने सनमानगिरी गांव में एक धार्मिक संगठन की शुरुआत की और आदिवासियों के लिए काम करने लगे। गुजरात और राजस्थान की सीमा से सटे मनगढ़ की पहाड़ियों के बीच उन्होंने एक मंदिर की स्थापना कर धार्मिक कार्यों की शुरुआत की। इलाके के आदिवासी बड़ी संख्या में उनके अनुयायी बन गए और उन्हें अपना गुरु मानने लगे। पूर्णिमा के दिन मेले का आयोजन किया जाने लगा जिसमें गोविंद गुरु धार्मिक प्रवचन देने लगे। संतरामपुर जैसी रियासतें और अंग्रेज हुकूमत अपने शासन के खिलाफ आदिवासियों की एकजुटता को दबाने की कोशिश करने लगीं और इसी सिलसिले में उन्होंने मनगढ़ की पहाड़ियों पर हमला कर हजारों आदिवासियों को मार डाला। इस त्रासदी की जिम्मेदारी लेते हुए गुरु ने मनगढ़ छोड़ दिया और मध्यप्रदेश के कन्नोई में जाकर बस गए।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ का हलबा आंदोलन (1774), भोपाल पट्टनम आंदोलन (1795), महाराष्ट्र में 1818 से 1831 का भील विद्रोह, पारलकोट आंदोलन (1825), तारापुर आंदोलन (1842), स्वतंत्रता आंदोलन (1857), कुई आंदोलन (1859), मुरिया आंदोलन (1876), रानी आंदोलन (1878) और भूमकल आंदोलन (1910) भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में अनदेखा ही रह गया। झारखंड जैसे कुछ राज्यों ने आदिवासियों के इतिहास को पचारित करने की कोशिश की लेकिन यहां भी ये उत्सवों और प्रदेश के नायकों के

स्मारक बनाने तक ही सीमित होकर रह गए। झारखंड सरकार ने रांची स्थित प्रदेश के इकलौते हवाई अड्डे का नाम बिरसा मुंडा के नाम पर तो रख दिया, लेकिन दूसरे राज्यों में और राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासियों का संघर्ष और उनका योगदान लगभग अनदेखा ही रह गया।

जैसे-जैसे स्वतंत्रता आंदोलन फैलता गया आदिवासियों की भागीदारी इसमें बढ़ती गई। अच्छी-खासी तादाद में भूमिहीन और शोषित आदिवासी इस उम्मीद में ऊंची जाति के स्वतंत्रता सेनानियों के साथ जुड़ गए कि ब्रिटिश हुकूमत की समाप्ति के साथ ही यहां लोकतंत्र की एक नई शुरुआत होगी।

आदिवासियों के विरोध के जवाब में अंग्रेजों ने जो कार्रवाई की वो उनके जंगल और प्राकृतिक संसाधनों को हथियाने के साथ ही विद्रोहियों की जिदगी को बद से बदतर बनाने की कोशिश और सख्त औपनिवेशिक कानूनों को लादने की थी। 1865 में अंग्रेजों ने एक अधिनियम पारित किया जिसके तहत वे पेड़ या झाड़ियों से ढके किसी भी जमीन को बतौर सरकारी जंगल घोषित कर सकते थे और उसके रख-रखाव में मनमर्जी बरत सकते थे। इस कानून में आदिवासियों के हित में कोई प्रावधान नहीं था। 1878 में एक इससे भी व्यापक कानून, भारतीय वन अधिनियम को लागू किया गया जिसके तहत संरक्षित वनभूमि और इसके संसाधनों को लेकर आदिवासियों के अधिकार पर कई पाबंदियां लगा दी गईं। इस कानून ने सीधे तौर पर परंपरागत रूप से जंगल पर चले आ रहे आदिवासियों के अधिकार को खत्म कर दिया और इसे सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया। ठीक इसी प्रकार अंग्रेजों ने 1871 में आदिवासी विद्रोहियों को सजा देने के लिए "द क्रिमिनल ट्राइब ऐक्ट" पारित किया। इस कानून में कई समुदायों, खासकर बंजारों और आदिवासियों को (जिन्हें अंग्रेज अपने स्वार्थ में सबसे बाधक मानते थे) मूलरूप से ही आपराधिक चारित्र का मान लिया गया।

आज इसे विडंबना ही कहेंगे कि आदिवासियों के जिस शक्तिशाली विद्रोह को अंग्रेजों ने अपने क्रूरतम उपायों से कुचला, उस विद्रोह का जिक्र और उसकी महत्ता का चित्रण भारतीय इतिहास और स्वतंत्रता संग्राम पर लिखी किताबों में कहीं भी और कभी भी उचित ढंग से नहीं किया गया। जिन आदिवासियों ने इस आशा में खून बहाया कि अंग्रेजों की हार

से एक नये लोकतंत्र का उदय होगा वे अब भी उसी औपनिवेशिक शोषण से जूझ रहे हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि भारत आजाद है और ये शोषण इसी आजाद देश में यहां के लोगों की ओर से हो रहा है।

संदर्भ...

पुस्तकें और लेख

1. बोसुमुल्लिक, संजय, 2006, "जंगल की जंग", रांची
2. बिजोय सी. आर, 2007, "आदिवासी ऑफ इंडिया: अ हिस्ट्री ऑफ डिस्क्रिमिनेशन, कन्फ्लिक्ट एंड रेसिसटेंस"
3. डाइस, जेवियर, 2005 "लूट का इतिहास", पब्लिशड बाइ प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची
4. मांझी, प्रथ्वी, 2005 "संथाल हल: औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ एक निर्णायक युद्ध", प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची
5. प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन 2005 "पुरखा लड़ाके : स्टोरिज ऑफ झारखंडी हीरो एंड स्ट्रगल," रांची
6. शुक्ला, प्रभात कुमार, 2004 "मालगुजारी और कर्ज - कारु मांझी का "छोटानागपुर में संघर्ष" पब्लिशड इन बुधन, न्यू दिल्ली
7. सिंह, के. एस, 2001, "बिरसा मुंडा 1872-1900", नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
8. अ हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम 1 एंड 2 रोमीला थापर, परसिवल स्पीयर, पेन्गुइन पब्लिकेशन्स

साक्षात्कार

1. प्रदीप प्रभु, नेशनल कॉन्वीनर, कैम्पेन फॉर सरवाइवल एंड डिगनिटी
2. डॉ. जी. एन. देवी, डीनोटिफाइड ट्राइब्स राइट्स ऐक्शन ग्रुप
3. संजय बोसुमुल्लिक, कॉर्डिनेटर, झारखंड जंगल बचाओ आंदोलन
4. कांजी भाई पटेल, लूनावाड़ा, गुजरात
5. डॉ. डी. एन. गांधी, रिटायर्ड प्रिंसिपल, गोधरा आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, गुजरात
6. डॉ अरुण वाघेला, हेड ऑफ डिपार्टमेंट, हिस्ट्री, गोधरा आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, गुजरात
7. पीपुल ऑफ जम्बुगोड़ा, संतरामपुर, मगध इन पंचमहल डिस्ट्रिक्ट, गुजरात

वेबसाइट्स

1. <http://www.incredibleindia.org/microsite/mutiny/milestone.htm>
2. <http://www.jharkhand.nic.in>
3. http://India_resource.tripod.com/sahistory.html

टिप्पणियाँ

1. इस आलेख में इस विषय पर विभिन्न पुस्तकों और लेखों के विस्तृत उद्धरणों का समावेश हुआ है साथ ही कार्यकर्ताओं और शिक्षाविदों के साक्षात्कार भी हैं। हर एक जगह पर अगर हम संदर्भ उद्धरित करते तो इनकी संख्या बहुत हो जाती, इसलिए सुविधा के तौर पर हमने अंत में उन किताबों और लेखों का विस्तृत विवरण दिया है जिनको आधार बनाकर हमने ये लेख लिखा है।
2. <http://www.incredibleindia.org/microsite/mutiny/milestone.htm>
3. 1855 में अंग्रेजों के खिलाफ संथालों की लड़ाई को हल नाम से जाना जाता है
4. दमिन-इ-कोह एक फारसी शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ पहाड़ों का सीमावर्ती इलाका, पहाड़ों का निचला हिस्सा या तलहटी होता है। राजमहल के पहाड़ों में दमिन-इ-कोह की शुरुआत जॉन पैट्टीवार्ड और कैप्टन टैनर ने की थी। इसके तहत राजमहल पहाड़ों के निचले हिस्से में जहां कम घने जंगल थे वहां के जंगलों को काट कर संथालों के लिए बस्तियां बनाई गईं और उस जमीन पर उन्हें खेती का अधिकार दिया गया।
5. "पुरखा लड़ाके: स्टोरिज़ ऑफ़ झारखंडी हीरो एंड स्ट्रगल," प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, 2005.
6. "मालगुजारी और कर्ज: कारु मांझी का छोटानागपुर में संघर्ष" बाइ प्रभात कुमार शुक्ला, 2004.

मृत्यु के कारण पर वरली कथा

सभी धर्म और समाज निरन्तर मृत्यु की व्याख्या करने की कोशिश करते रहे हैं। यह एक सरल प्राकृतिक घटना मात्रा नहीं है कि आपने जन्म लिया, बढ़े और मृत्यु को प्राप्त किए। यह वारलिस का बहुत रुचिकर मिथक है कि मृत्यु इसलिए आई है क्योंकि हमने प्रकृति को क्षति पहुँचाई है। यह मिथक आदिम युग से प्रारम्भ हुआ जिसके अनुसार तीन आत्माएँ - गंगा, गौरी और महादेव मिट्टी से बने हुए टिलों से मिट्टी लेकर पहाड़ियों और घाटियों को बनाते हैं। तब वे गिलहरियों तथा अन्य जीवों से बीजों को इक्छा करते हैं। उन बीजों को वे चारों तरफ बोते हैं और बारह वर्ष के पश्चात् उन्हें देखते हैं। चूँकि गंगा, गौरी और महादेव दैविक आत्माएँ हैं अतः इनके हाथों से ये वृक्ष लगाए गए, इसीलिए प्रकृति अमर है। इसीलिए प्रकृति निरन्तर विकसित हो रही है। वृक्षों की संख्या, एवं जानवरों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि हो रही है क्योंकि वहाँ मृत्यु नहीं है और यह पृथ्वी "धरती" जो सब की माँ है आज यह बोझ वहन करने में अक्षम है इसीलिए पृथ्वी कराह रही है और इसीलिए वह अपने भाई नारन जो कि सर्वोच्च आत्मा हैं, उनसे सहायता लेने जाती है।

जब वह नारन के पास जाती है तो उसका दूसरा भाई पाण्डु, जो कि एक साधारण मनुष्य है, उससे नाराज होकर उसे ठोकर मारता है और वह गिर जाती है। नारन ने कई आत्माओं को विभिन्न प्रकार के साम्राज्यों का दायित्व सौंपा है, परंतु मृत्यु का साम्राज्य अभी तक सृजित ही नहीं हुआ है। इस मुद्दे पर अभी चर्चा भी नहीं हुई है। नारन पाण्डु से कहता है कि धरती माँ को ठोकर मारने एवं उसे घायल करने के दंड के रूप में अब हम मृत्यु के साम्राज्य की रचना करेंगे जिसका प्रभारी पाण्डु होगा। इस प्रकार मृत्यु के विषय में जो सामान्य अवधारणाएँ हैं उनके अनुसार यह व्याख्या की जाती है कि लोगों द्वारा प्रकृति को हानि पहुँचाने के कारण ही इस ग्रह पर मृत्यु का आगमन हुआ।

कथाकार - प्रदीप प्रभ. 2004 की एक व्यक्तिगत साक्षात्कार में।



भाग 2

होवर्हो ह्यहस्यहस्यहसिहसं

यह 5600 वर्ष पुराना शैलशिखर कर्मगढ़ सुरक्षित वनक्षेत्र छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिला में स्थित है। पास ही के राज्य आंध्र प्रदेश में राज्य सरकार ने जुलाई 2005 में जिंदल समूह के साथ 9500 करोड़ के बॉक्साइट एवं खनन संयंत्र हेतु सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं। समता निर्णय को चतुराई से अपनाकर आंध्र प्रदेश खनिज विकास निगम की स्थापना की गई जो अनुसूची V के अन्तर्गत आनेवाले क्षेत्रों में खनन का काम करेगी और जिन्दल के उन्हीं संयंत्रों को कच्चा माल उपलब्ध करायेगी।



हल से राज

झारखंड में पारिस्थितिकी के विरुद्ध 150 वर्षों का अपराध

संजय बासु मलिक

1854 का संथाल विद्रोह, हल, विभिन्न सभ्यताओं के बीच एक टकराव था। औपनिवेशिक इस्ट इंडिया कंपनी के अपने वादे कि वे संथाल एवं अन्य सदृश समुदायों के लोगों को बिना किराया दिए दामिन-इ-कोह में रहने देंगे, से मुकर जाने के खिलाफ यह आंदोलन शुरू हुआ था। संथाल एक ऐसे विदेशी सभ्यता के खिलाफ खड़े हो गए जिसने प्रकृति को व्यक्तिगत संपत्ति बना दिया और लोगों को किराएदार। इतना ही नहीं जो कुछ भी प्रकृति ने प्रदान किया और लोगों ने उत्पादन किया - सभी को कर के योग्य घोषित कर दिया। एक जनजाति जो शिकार एवं जंगली फलों पर अपनी निर्भरता को छोड़कर खेती की ओर बढ़ रही थी यूरोपियन सामन्ती चालों की गहराई को समझ नहीं पाई। मुगलकाल में जंगल के नाम पर जनजातियाँ जो कुछ भी अंशदान दे देती थी उससे सरकार खुश थी और कभी उनके सामाजिक जीवन में दखल नहीं देती थी। अब जब नियमित 'कर' ने अनियमित 'अंशदान' का स्थान ले लिया एवं औपनिवेशिक सरकार की कानूनी व्यवस्था ने जनजातीय प्रथाओं एवं मान्यताओं की जगह ले ली, तो संथाल प्रकृति की संतान न रहकर ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा बन गए।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने संथाल एवं अन्य सहधर्मी समुदायों को जंगलों से भरे और बहुत ही कम आबादी वाले दामिन क्षेत्र में रहने के लिए इसलिए प्रेरित किया कि वे एक दिन इन्हीं लोगों से राजस्व कमाएंगे। जंगलों को साफ कर एवं पहाड़ियों को बड़ी मेहनत से खेती योग्य भूमि बनाकर इस क्षेत्र में लोगों ने कई बड़े गांव बसा लिए। अब कम्पनी के लिए राजस्व कमाने का सुनहरा मौका आ गया। इस कार्य के लिए ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों, पुलिस, व्यवसायियों सूदखोरों एवं वकीलों को आगे कर दिया। इन लुटेरों ने संथालों के खून-पसीनों को तब तक चूसा जब तक उनके शरीर पीले न पड़ गए हों और भगवान की तरफ सहायता के लिए न मुड़े हों। भगवान उनके सामूहिक सपनों में आए और शीघ्र ही मारंगबुरु के रूप में एक शक्तिमान व्यक्ति ने उन्हें इस कदर मजबूत बनाया कि उन्होंने औपनिवेशिक ताकतों को हरा दिया - एक सहस्राब्दिक स्वप्न।

हल की विषय-वस्तु - राजनैतिक सार्वभौम एवं सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति लोगों की सामूहिक आकांक्षा - जनता के आंदोलन के अगले चरणों में कायम रही। सहस्राब्दिक स्वप्न 'हल' के बाद 'उलगूलान' (मुंडा विद्रोह) के रूप में सामने आया और बाद में 'अलग प्रांत' (जनजातियों के लिए अलग राज्य) की मांग जोर पकड़ने लगी। और तब नवजागरण की जगह नवनिर्माण की विचारधारा आ गई। सार्वभौमिकता के लिए औपनिवेशिकता के खिलाफ सौ सालों की लड़ाई आजादी के लगभग आधी सदी तक चली और फिर उन्हें सन् 2000 में 28 वीं राज्य 'एक विकृत स्वरूप के बच्चे' के रूप में भारत सरकार से प्राप्त हुआ। नई सहस्राब्दी ने झारखंड के आदिवासियों एवं मूलवासियों के सहस्राब्दिक स्वप्न के साथ बुरा मजाक किया। इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। जिस तरह 'हल' ने प्रशासनिक सुविधा के लिए संथाल परगना जिले के निर्माण हुए का रास्ता दिखाया, ठीक उसी तरह 'अलग प्रांत' के लिए हुए आंदोलन के कारण झारखंड राज्य का निर्माण हुआ। सांस्कृतिक क्षेत्रों की राजनीतिक पहचान की विचारधारा से इतर प्रशासनिक सुविधा हेतु छोटे राज्यों के निर्माण हुए जिसमें झारखंड भी शामिल है, से दो उद्देश्यों की पूर्ति हुई। पहला यह समान लोकाचार वाले जनजातियों को विभिन्न समूहों में विभाजित करता है। दूसरा, दो राज्यों के निर्माण ने सरकार को यह सुविधा दी कि वो प्राकृतिक संसाधनों का आसानी से संदोहन कर सके। (मुंडा एवं बोसु मल्लिक 2003, पृ. XIV) यह एक कुचक है जिसकी कथावस्तु औपनिवेशिक शक्ति की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के बेहद करीब है,

लेकिन यह केवल औपनिवेशिक नीति की पुनरावृत्ति ही नहीं हैं। यह 'आंतरिक समूहों' पर शासन बनाए रखने की उसी नीति के जारी रहने का प्रमाण है।

'सरकारी' भारतीय उच्चवर्ग आज खुद का 'दूसरा वर्ग' जाति, वर्ग एवं लिंग भेद के आधार पर बना चुके हैं (जेविट, एस झार, पृ. 58)। राजनीतिक शास्त्रीयों ने इस बात को माना है कि औपनिवेशिक सरकार के खात्मे के बाद भी आज की सरकार उसी औपनिवेशिक मनोवृत्ति का पोषण कर रही है (नंदी, आशीष 1983, जेविट के कथानुसार) अंग्रेजों के लिए भारतीय 'दूसरे वर्ग' में आते थे; और आजादी के बाद उपनिवेशी मनोवृत्ति के लोगों के लिये आदिवासी 'दूसरे वर्ग' में आते हैं।

इस पेपर में मैं आजादी के बाद सरकार एवं आदिवासियों के बीच हुए संघर्ष के मूल कारण को, राज्य एवं केन्द्र सरकारों की आजादी के पूर्व और बाद की वन नीतियों की जांच के द्वारा, जानने की कोशिश करूंगा।



झारखंड की औपनिवेशिक वन नीतियाँ

झारखंड औपनिवेशिक युग की शुरुआत के पहले झारखंड वास्तव में वन की भूमि थी खेती मुख्यतः बीजों को भूमि पर ही छिड़क कर दाहाध्या या जारा किया जाता था। मध्ययुगीन जंगल सरकारों ने हल से होने वाले खेती को कुछ क्षेत्रों में शुरू किया। लेकिन दोनों ही मामलों में यह बात नदारद थी कि भूमि राजा की हो जो सर्व शक्तिशाली हैं। समुदाय का भूमि एवं उत्पाद पर पूरा नियंत्रण था। वन आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग था। जंगल घने एवं खतरनाक जानवरों से भरे थे।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन औपनिवेशिक ताकतें तथाकथित 'बंगाल वुडलैंड भूमि' या 'जंगल महल' जैसा कि 19वीं सदी के शुरुआत में मुगल इस इलाके को कहते थे, ने क्षेत्र में प्रवेश किया। इस नियंत्रण के पीछे अंग्रेजों का मूल उद्देश्य जंगलों की भूमि एवं लकड़ी

से मिलने वाले राजस्व पर कब्जा जमाने का था, लेकिन यह तब तक संभव नहीं था जब तक विद्रोही समुदायों को शांत नहीं किया जा सके। इस कारण ब्रिटिश नीति में कुल तीन तत्व निहित थे - विरोध का दमन, धूमन्तू कृषकों एवं शिकार कर जीविकोपार्जन करने वालों को स्थानबद्ध करना एवं जंगल का संरक्षण।

हल के तुरंत बाद, औपनिवेशिक सरकार ने झारखंड के मूलनिवासियों को 1856 में एक कानून बना कर जंगलों से बेदखल कर दिया। गवर्नमेंट फॉरेस्ट एक्ट 1865 1 मई 1865, से लागू हुआ और इस प्रक्रिया को नियमित कर दिया गया। इस एक्ट ने सभी सार्वजनिक संपत्ति को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया और आम लोगों को पारंपरिक जीविकोपार्जन के साधनों एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से अलग कर दिया।

"औपनिवेशिक ने सरकार और निजी क्षेत्र में अंतर किया। जहाँ पर्यावरण पहले में रखा गया नहीं कृषि को निजी क्षेत्र की गतिविधि बना दिया गया। आधुनिक राज्य के निर्माण की प्रक्रिया में भूदृश्यों एवं सामाजिक क्षेत्रों के विभाजन की प्रमुख भूमिका रही।" (शिवराम कृष्णन पृ. 80)। इस दौरान धूमन्तू खेती पर रोक लगाकर उन्हें एक विशेष क्षेत्र में ही कृषि करने को कहा गया जो कि यह पिछड़ी हुई भूमि ही थी। (आई. बी. डी. पृ 81)। 1870 तक बंगाल की दक्षिण - पश्चिमी वनस्थली भाग ऐसे आदिवासी गढ़ के रूप में विकसित हो रहा था जहाँ दोनो ही तरह की नीतियां कार्य कर रही थीं। पहला जंगली और बंजर भूमि को एक व्यवस्थित भू-क्षेत्र बनाने की प्रक्रिया को हवा दे रहा था। दूसरी नीति वन संरक्षण की थी (आई.बी.डी. पृ 86)।

इंडियन फारेस्ट एक्ट 1865 के अंतर्गत सामुदायिक संपत्ति पर सरकारी नियंत्रण के लिए किए गए पहल को तब बल मिला जब इंडियन फॉरेस्ट एक्ट 1878 को लागू किया गया। औपनिवेशिक सरकार के द्वारा जंगल के एक बड़े हिस्से का 'आरक्षित, सुरक्षित एवं निजी' वर्गों में आरक्षण ने सरकार को और भी अधिक शक्तिशाली बना दिया जिसके परिणामस्वरूप आदिवासियों एवं जंगलों पर निर्भर अन्य लोगों की आर्थिक व्यवस्था चरमरा गई। इसने स्रोतों के उपयोग के पारंपरिक तरीकों को बदल दिया और लकड़ी को एक प्रमुख उत्पाद बना दिया जिसके परिणामस्वरूप जंगल की पारंपरिक परिस्थितिकी प्रभावित हुई (गाडगिल

एवं गुहा 2000, पृ. 85)। जंगल की मुख्य संरचना पूर्ण आयु, विविध एवं प्राकृतिक पुनः उत्पादक वाले जंगल से बदल कर सरल, एक समान आयु, एक संवर्धन का रूप ले लिया जिसमें सील, टीक एवं पाइन का प्रभाव अधिक था। (जेविट वर्ष 7 पृ. 62)।

19वीं सदी के अंत तक, झारखंड की अंग्रेज सरकार ने दो महत्वपूर्ण कार्य को पूरा किया- विरोधों का दमन एवं आदिवासियों की घूमन्तू जीवन शैली पर रोक। इस उपलब्धि के बाद पितृव्यवहार पूर्ण और पृथक्वादी नीतियों को अपनाया गया जो अभिवृत्ति धाराओं एवं प्रशासनिक नीतियों में परिलक्षित हुआ। छोटानागपुर टेनेन्सी एक्ट 1908 एवं संथाल परगना टेन्यूर एक्ट 1912 बनाए गए एवं क्षेत्र के आदिवासी-बहुल जिलों को 'आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र' के अंतर्गत रख दिया गया जहाँ एक सरल, प्रशासनिक व्यवस्था कार्य कर रही हो। यह क्षेत्र को राज के सीधे नियंत्रण में रखने के लिए जरूरी था। यह इसलिए भी जरूरी था कि आदिवासियों को औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ बढ़ते आंदोलन से दूर रखा जाए क्योंकि यह क्षेत्र न केवल कोयला बल्कि अन्य खनिज पदार्थों जैसे लोहा, मैंगनीज, बॉक्साइट के अपार भंडार के कारण सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया था। यही स्थिति देश के अन्य आदिवासी-क्षेत्रों की भी रही।

ब्रिटिश नीति निर्माण में विरोधाभास ब्रिटिश शासन के अधिपत्यवादी रूप एवं आदिवासियों के साथ रक्षक के रूप में पेश करने की कोशिश के बीच के संघर्ष के रूप में परिलक्षित हुआ। (जेविट, 2004, पृ 64)। जमींदार इसका विरोध करते थे एवं राष्ट्रवादी इसे एक इसाई साजिश के रूप में देखते थे जिसका उद्देश्य भोले-भाले आदिवासियों का धर्म-परिवर्तन था। जहाँ राष्ट्रवादी समावेशनीयता के पक्ष में थे वहीं ब्रिटिश अलगाव की नीति के पोषक। राज की वन एवं जनजातिय नीति - दोनों में ही विरोधाभास एवं अस्पष्टता थी। ब्रिटिश सरकार ने एक बहुत ही कठिन उद्देश्य की प्राप्ति की कोशिश की - वन का संरक्षण आदिवासियों को इनसे अलग रख कर हुआ एवं आदिवासी पहचान की रक्षा की कोशिश वन के साथ उनसे आत्मीय संबंध-को तोड़ने से हुई।



स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी पूर्व प्राच्यविधा

औपनिवेशिक सरकार के जाने के बाद भी-प्राच्यवेता की मनोवृत्ति स्पष्ट है। ब्रिटिश औपनिवेशिकता की जंजीरों को उखाड़ फेंकने के बजाय ब्रिटिश सरकार के शासन के कई विचार एवं विधि नई सरकारों ने लागू रखी क्योंकि भारत अब पश्चिमी वाणिज्यिक एवं उपभोक्ता व्यवस्था का अभिन्न अंग बन चुका है। ब्रिटिश सरकार की आधुनिकीकरण नीति को अस्वीकार करने और उसकी जगह सामाजिक एवं पर्यावरण तौर पर अधिक संवेदनशील वन प्रबंधन की योजना को अपनाने के बजाय, नए वन प्रबंधन ने ब्रिटिश नीति को ही चालू रखना हितकर समझा (जेविट, पृ 71-72)।

आजादी के बाद भारत का शासकीय उच्च वर्ग सत्ता की जगह धन की लिप्सा में डूब गया। भारतीय समाज के अर्ध सामन्ती स्वरूप ने वन सुधार को स्वीकार नहीं किया (1956), और ना ही पंचायती राज के अंतर्गत गांव के स्तर पर सत्ता में किसी की भी हिस्सेदारी को। राष्ट्रीय हित एवं विकास जैसे शब्दों की आड़ में प्राकृतिक संसाधनों का अमानवीय तरीके से शोषण किया गया। सरकारी अधिकारी, पुलिस एवं राजनेताओं ने इसके लिए एक मंडली बना ली। जहाँ औपनिवेशिकता हटी, विकास ने जगह बना ली (कोठारी 1988, पृ 143, जैसा कि जेविट ने कहा है)। कलाकृतियों के संसार ने प्राकृतिक संसार को तहस-नहस कर दिया। जहां बांध एवं खदानों ने लाखों किसानों व आदिवासियों को विस्थापित किया, वन के विनाश ने भूख और गरीबी को जन्म दिया। पारिस्थितिकी शरणार्थियों की संख्या बढ़कर कुछ भारतीय आबादी की एक तिहाई हो गई, जिन्हें जी-तोड़ मेहनत वाली मजदूरी करने के लिए विवश होना पड़ा, किंतु उन्हें विकास की धूल ही समझा गया। झारखंड में विकास बंदूक के साये तले हुआ। विकास की आड़ में दमन की नीति के पीछे यही आशय काम कर रहा था कि आदिवासी किसान झारखंड की प्रचुर खनिज संपदा एवं प्राकृतिक संपदा पर कब्जे की कोशिश में रोड़े अटका सकते हैं (डी वैले 1992, पृ 104-105)।

झारखंड ने सबसे ज्यादा पारिस्थितिकी शरणार्थियों को जन्म दिया है। विभिन्न विकास कार्यों के दौरान तीन लाख से ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं, जिसमें 90 प्रतिशत आदिवासी हैं। पारिस्थितिकी विनाश ने भोजन की उपलब्धता के पारंपरिक स्रोत बंद कर दिए। सरकारी अनुमान के अनुसार, झारखंड की 10 प्रतिशत जनता भुखमरी से पीड़ित है, जबकि 2 प्रतिशत की स्थिति बहुत खराब है।

ये पारिस्थितिकी विनाश एवं इससे होने वाले आदिवासी समाज की दुर्गति के लिए विकास कार्यों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। मानवीय एवं पारिस्थितिकी पहलुओं को अपने फायदे के लिए नजरअंदाज करने की वन विभाग की कारस्तानी का तब खुलासा हो पाया, जब वन विभाग एवं जंगलों पर निर्भर लोगों के बीच मध्य भारत के कुछ राज्यों एवं हिमालय की पहाड़ियों पर हुए संघर्षों की खबरें एवं जानकारी आम जनता तक पहुंची। चिपको, झारखंड एवं नर्मदा आंदोलन ने वन विभाग की दबंगता एवं इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार का न केवल खुलासा किया, बल्कि सरकार की जंगल से संबंधित नीतियों को चुनौती भी दी। जंगल आज भी सरकार की सबसे बड़ी जागीरदारी है और वन विभाग के अधिकारी जमींदारों की तरह कार्य करते हैं।

झारखंड में 'पारिस्थितिकी के विरुद्ध अपराध' का अध्ययन तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रथम चरण की शुरुआत जंगल का 'अग्रगण्य रियासत' के रूप में ब्रिटिश अधिग्रहण एवं जंगली वृक्षों एवं पशुओं का खेती के लिए सफाया से हुई। दूसरे चरण में, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जमींदारों ने ब्रिटिश संरक्षण नीति को चुनौती दी और यही कार्य आजादी के बाद वन विभाग ने तब तक किया, जब तक कि केन्द्र सरकार ने संरक्षण नीति का पुनरुत्थान 1980 में एक एक्ट के द्वारा नहीं किया। तीसरे चरण की शुरुआत इसके बाद कानूनों, प्रस्तावों एवं दिशा-निर्देशों की एक श्रृंखला से हुई जिसका उद्देश्य था औपनिवेशिक शक्तियों के तर्ज पर जंगलों और जंगलों पर निर्भर लोग विशेषकर आदिवासियों और मूल निवासियों के रिश्तों को कानून की दुहाई देकर खत्म कर देना।

जमींदारों एवं वन अधिकारियों ने आजादी के पूर्व की अस्थिर राजनीतिक स्थिति जिसका निर्माण भारत छोड़ो आंदोलन एवं द्वितीय विश्व युद्ध से हुआ एवं 30 से 80 के दशक के जनजातीय एवं वन नीति के दुलमूल स्वरूप जिसके मूल में था प्राकृतिक लकड़ियों को

कृत्रिम धन में परिवर्तन, का जमकर फायदा उठाया। शासन के अंतिम दिनों में ब्रिटिश सरकार ने ग्रामीणों के उपयोग के लिए रखे गए सुरक्षित वनों पर बिहार प्राइवेट फॉरेस्ट ऐक्ट, 1946 (111 ऑफ 1946) के द्वारा अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। आजादी के बाद फिर से इसे बिहार प्राइवेट फॉरेस्ट ऐक्ट, 1947 (ऐक्ट IX ऑफ 1948) के रूप में कुछ संशोधनों के साथ बनाया गया। लेकिन यह वन विभाग के अधिकारियों के लिए छिपा हुआ वरदान साबित हुआ। जब जमींदारी खत्म हो गयी, लैंड रिफार्म ऐक्ट (बिहार ऐक्ट, XX ऑफ 1950) पर कार्य शुरू कर दिया गया और सारे जंगल सरकार के अधिकार में आ गए एवं उन्हें इंडियन फॉरेस्ट ऐक्ट, 1927 के तहत सुरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया गया।

मुंडारी खूंटकट्टीदारों (छोटानागपुर टेनेन्सी ऐक्ट, 1980 के अंतर्गत मुंडा समुदाय के आदिवासी जिन्हें विशिष्ट दर्जा प्राप्त है) के भूमि को निजी सुरक्षित वन ही समझा जाता रहा एवं इनका प्रबंधन वन विभाग ने अपने हाथों में ले लिया। लेकिन इसका मुंडारी खूंटकट्टीदारों ने जमकर विरोध किया क्योंकि उनका शासन जमींदारी शासन से अलग था। ना ही वे किराएदार हैं ना ही यह कि उन्हें विशेष अवधि के लिए जमीन दिया गया है, वे सामूहिक रूप से गांव की चाहरदीवारी के अंदर के वन पर कब्जा रखते हैं। लेकिन इसका कोई सही परिणाम नहीं निकला और वन विभाग ने मुंडो से मुंडारी खूंटकट्टी जंगलो को ले लिया। ऐसा उन्होंने वनों के वैज्ञानिक प्रबंधन एवं लाभ में हिस्सेदारी के वायदों के सहारे किया - ऐसा वायदा जो कभी पूरा नहीं किया गया। 1984 में राय वर्मन आयोग ने इन गांवों का भ्रमण किया एवं अविश्वसनीय रूप से पाया कि मीलों तक के वनों का वन विभाग ने सफाया कर दिया था।

पारिस्थितिकी व्यवस्था के स्वार्थ के लिए विनाश ने आजादी के बाद के विकास के युग में शैतानी रूप ले लिया जिसकी शुरुआत ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के द्वारा हुई थी। झारखंड की 14 प्रतिशत भूमि पर ही आज निम्नीकृत वनों का आवरण है।

70 के दशक में इस दौरान झारखंड में आदिवासियों एवं वन विभाग में कड़ा संघर्ष हुआ। अरीपरम्पील के नजर में इसके चार प्रमुख कारण थे। इनमें शामिल थे - वन विभाग द्वारा आदिवासियों की भूमि एवं वन से संबंधित रीति-रिवाजों के अधिकार का अतिक्रमण,

आदिवासियों का वन विभाग के अधिकारियों द्वारा शोषण, वन का व्यापारीकरण जिसका असर ये हुआ कि आदिवासी और गरीब होते चले गए एवं वन विभाग के अधिकारियों की मिलीभगत से ठेकेदारों द्वारा का लूट एवं विनाश (अरीपरम्पील, 1992)। वन के वाणिज्यीकरण का विरोध-सरकारी दखल के शुरुआत के समय से ही हो रहा है (गाडगिल एवं गुहा, 2000 पृ. 85)। विद्वत्जन ने इस आंदोलन के राजनीतिक रंग को शुरु में ही भांप लिया था। झारखंड में यह आंदोलन पृथक झारखंड राज्य की मांग से जुड़ गया था (सेनगुप्ता 1982, डेवाले, 1992, कौरब्रिज 2004) और मध्य आदिवासी क्षेत्र में इस मुद्दे को उग्रवादी माओवादी समूह ने अपना लिया था (गाडगिल और गुहा, 2000 पृ. 85)। झारखंड में भूमि के लिए आदिवासी आंदोलन स्वायत्तता एवं पहचान के लिए हुए आंदोलन के हमेशा अभिन्न अंग रहे हैं। उन्होंने न केवल सरकार की जन-विरोधी नीतियों का विरोध किया बल्कि साथ में स्वायत्तता की मांग को मुद्दे के समाधान के रूप में रखा।

लेकिन सरकार स्थिति का सामना एक और भी कड़े कानून के द्वारा करना चाहती थी जिससे वन विभाग को वन भूमि पर पूरे अधिकार मिल जाए। 1980 के फॉरेस्ट बिल के मसौदे का देश व्यापी विरोध हुआ और अन्त में सरकार को अपनी योजना बदलनी पड़ी। पूर्वदेयता एक नए रूप में सामने आयी - संयुक्त वन प्रबंधन। अध्याय के तीसरे चरण में समझ के अनुसार औपनिवेशिक द्विभागीकरण की बात सामने आयी। लेकिन चूंकि आदिवासियों तथा वन संरक्षण के संबंध में औपनिवेशिक नीति गलत उद्देश्यों से प्रेरित थी, तथा जे.एफ.एम. भी स्वार्थ-हित से रचित था। वन संरक्षण धारा 1988 को हमेशा से धारा 1980 की एक नई शुरुआत माना गया है, वस्तुतः एक आंदोलनकारी कदम। दूसरे अर्थों में यह धारा का पूरक है। वन संरक्षण में लोगों की सहभागिता की मांग लोगों के प्रति अच्छे भाव दर्शाने के लिए नहीं बल्कि लोगों को अपने काम में लाने की योजना है क्योंकि अन्य धाराएँ दबाव देकर उन्हें वन पर के अधिकार से वंचित करती है।



वन प्रबंधन में नव प्राच्यविधा

जे.एफ.एम. नीति को बिहार सरकार ने बहुत शुरु में ही मंजूरी दे दी थी जब वन भूमि का एक बड़ा भाग निम्नीकृत हो चुका था और वन विभाग आमलोगों से अलग-थलग पड़ चुका था। बिहार सरकार ने 70 के दशक में ही यह माना था कि 29,232 वर्ग किलोमीटर के घोषित वन क्षेत्र में से दस हजार वर्ग किलोमीटर निम्नीकृत भूमि था (ए ड्राट पर्सपेक्टिव प्लान बिहार 1978-1989)। वर्तमान में झारखंड सरकार स्वीकार करती है कि पूरे भूमि का केवल 18-19 प्रतिशत ही वन आवरण के अंतर्गत आती है (विजन 2000, झारखंड सरकार)। वन विभाग हालांकि यह प्रतिशत 27 का बताता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि कार्यक्रम का विकास नगण्य औसत 17 जे.एफ.एम. सामुदायिक संस्थाएँ प्रतिवर्ष के द्वारा अवरुद्ध हुआ लेकिन आशा बहुत ज्यादा था। एक महत्वपूर्ण नीति परिवर्तन में इंडियन नेशनल फॉरेस्ट पॉलिसी 1988 ने वन के प्रबंधन में स्थानीय समुदायों की सहभागिता पर जोर दिया; वनों का संरक्षण एवं ग्रामीण गरीबी को दूर करना आशानुरूप परिणाम था (संजय कुमार 2004)। वन के लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए कुल लाभ का 33 प्रतिशत हिस्से की सहभागिता का उनसे वादा किया गया था। इस कार्यक्रम को एक क्रांतिकारी नई योजना के रूप में सराहा गया (जेविट, 2004)।

झारखंड राज्य के निर्माण के बाद, नई राज्य सरकार ने परियोजना की फिर से शुरुआत की। झारखंड सरकार की नई संयुक्त वन प्रबंधन प्रस्ताव 27 सितंबर, 2001 को पारित किया गया है जो कि पूर्व के बिहार सरकार की प्रस्ताव (जी.ओ.बी. प्रस्ताव नं. 5490-5244 बी.पी. दिनांक 19.11.1990) का अधिक्रमण करती है। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य जे.एफ.एम. समितियों की स्थापना, राज्य के आरक्षित एवं सुरक्षित वनों की सुरक्षा एवं वन के भीतर रहने वाले ग्रामीणों की माली हालत सुधारना है।

झारखंड प्रस्ताव की शुरुआत गांव वालों की वन के विनाशक के रूप में दोषारोपण से होती है। यह उन्हें वन उत्पादों की बिक्री में 90 प्रतिशत की भागीदारी के वादे का लालच भी

देता है, साथ ही, वनों की सुरक्षा एवं संरचना की मांग भी करता है। वन सुरक्षा समितियों की स्थापना हर गांव में की जाएगी एवं सचिव व कोषाध्यक्ष का पद वन विभाग के अधिकारी संभालेंगे। समिति के सदस्य को मामूली अपराध के लिए दण्ड देने एवं दण्ड शुल्क लेने का भी अधिकार होगा। इस प्रस्ताव की विस्तृत विवेचना यू.एन.डी.पी. के द्वारा हाल में ही हुई है। यह स्पष्ट किया गया है कि जे.एफ.एम. का मुख्य उद्देश्य वन पर केन्द्रीकृत सत्ता को स्थापित करना है। 90 प्रतिशत लाभ की हिस्सेदारी की बात एक छलावा ही है क्योंकि हिस्सेदारी केवल शुद्ध मुनाफे से जानीजाती है जो कि वर्तमान स्थिति जिसमें तरह-तरह के खर्च शामिल हैं मुनाफे के लिए शायद ही कुछ बच पाता है। फिर लोग वन उत्पादों के मूल्य के निर्धारण की स्थिति में नहीं रह पाएंगे और ना ही पैसे के प्रबंधन में ही उनकी बात चलेगी। यह 1908 के छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट एवं संथाल परगना टेनेंसी एक्ट 1912 का उल्लंघन है। सबसे खतरनाक जो परिणाम होगा वह यह कि लोगों की जंगल तक पहुँच पर रोक लगाने से ग्राम समुदाय के मध्य तथा पड़ोसी ग्रामों के बीच बिभाजन की स्थिति आ जाएगी। गांव के समुदाय के अंदर ही एवं पड़ोसी लोगों की मगल तक पहुँच पर रोक लगाने से ग्राम समुदाय के मध्य तथा पड़ोसी ग्रामों के बीच बिभाजन की स्थिति आ जाएगी।

जे.एफ.एम. को वर्ल्ड बैंक का पार्टिसिपेटरी फॉरेस्ट मैनेजमेंट की आड़ में समर्थन नव-पूर्वदेयता के दूसरे स्वरूप को सामने लाता है।



वन अधिकारों पर विधेयक

स्वायत्तता एवं पहचान के लिए देशज लोगों को औपनिवेशिक एवं उसके पश्चात की अवधि के दौरान संघर्ष, उनके संस्कृति एवं प्रकृति की अखंडता की सरकारी मान्यता की मांग से संबंधित थी। चूंकि वन उनके अस्तित्व से संबद्ध है; राज्य की जनजातीय एवं वन नीतियां एक उचित मापदंड के अभाव में निर्धारित नहीं हो सकती है। लेकिन इस मांग का सरकार ने कभी आदर नहीं किया। वर्तमान की वन नीति एवं ड्राफ्ट नेशनल पॉलिसी फार द ट्राइब्स

(डी.एन.टी.पी.) नियम के अपवाद नहीं है। जहां पहले की सोच संकुचित है एवं वन से आई.पी. के निष्कासन एवं पृथकीकरण के प्रचार में लगी है, दूसरे लोगों की वन पर स्वामित्व के अधिकारों के बारे में बात तक नहीं करता।

सुरक्षित क्षेत्रों में पंचायती राज एक्सटेंशन एक्ट, 1996 आइ.पी. के वन जंगलों के स्वामित्व के अधिकारों को भी नकारता है। एक कदम आगे बढ़कर झारखंड राज्य पंचायत एक्ट 2001 ने ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र से उनके लघु उत्पादों के अधिकार भी छीन लिये हैं जिसकी व्यवस्था सेंट्रल एक्ट ने की थी।

विधानसभा के अंतिम बजट अधिवेशन में अनुसूचित जनजाति और वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) बिल 2005 को रखने के मुद्दे पर प्राच्यवेत्ता विचारधारा के आंतरिक प्रतिवाद का प्रदर्शाश हाल ही में हुआ। यह बिल यू पी ए सरकार का वन निवासियों के अधिकारों को वैध बनाने के वादे का नतीजा था। जबकि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में सरकार का एक उदार भाग, वामपन्थी पार्टी के समर्थन के साथ वन निवासियों के वर्षों पुराने शिकायतों को सुनने के लिए तैयार है, फिर भी रुढ़िवादी पक्ष इन्हें जंगल से निकाला देने पर अड़ी हुई है। समझौते के रूप में प्रस्तावित बिल, अनुसूचित जनजाति के सिवाय अन्य वन निवासियों के लोप को भुगत रही है, जो ऐतिहासिक अन्याय के बलि बनते रहेंगे। चूंकि सरकार द्वारा बिल को विधानसभा के बजट अधिवेशन में प्रस्तुत नहीं किया गया इस कारण उसे अधिनियमन की प्रक्रिया पर रोक लगाना पड़ा जिस कारण अनुसूचित जनजातियों का भाग्य अनिश्चित सा है।

वैश्वीकरण के अन्तर्गत नव-उदारीकरण ने प्राच्यवेत्ता विचारधारा में एक श्रेष्ठ संबंध ढूँढ लिया है लेकिन फिर भी संघर्ष जारी है। सामान्य रूप से, भारत में वन अधिकार आन्दोलन, तथा विशेषकर, झारखंड, इसे राष्ट्रीय मुद्दा बना सकी है। वन विभाग, जिसने औपनिवेशिक रीति का आज्ञापूर्वक निर्वाह किया है, उसे अपने आपको जनतंत्र और सामाजिक न्याय के नए साँचे में गढ़ना होगा। वन क्षेत्रक पर होने वाले नव-उदार खतरे का मुकाबला वन के स्वामित्व और प्रबंधन से अधिक वन पर निर्भर लोगों के अधिकारों को मान्यता देनी होगी। तब एक संघर्ष जारी रहेगा; हल की लपटें बुझ नहीं पाएगी।

संदर्भ

1. अरीपरम्पील, मैथ्यू 1992, फॉरेस्ट आंदोलन इन सिंहभूम इन एड. एस. नारायन, झारखंड मूवमेंट : ऑरिजिन एण्ड इवाल्यूशन
2. कोरब्रिज, एस. 2004, स्टुअर्ट कोरब्रिज, साराह जेविट एण्ड संजय कुमार, (2004), झारखंड, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
3. देवल्ले, सूजन, बी.सी. 1992, डिसकोर्स ऑफ इथिनिसिटी : कल्चर एण्ड प्रोटेस्ट इन झारखंड, सेज, नई दिल्ली
4. गाडगिल, एम एण्ड गुहा, आर 2000 यूज एण्ड एब्यूज ऑफ नेचर, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
5. गुहा, आर, 1989, अनक्वाइट वुड्स, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
6. जेविट, साराह, 2004, यूरोप्स अदर्स? फॉरेस्टरी पॉलिसी एण्ड प्रैक्टिसेस इन कोलोनिअल एण्ड पोस्ट-कोलोनिअल इंडिया इन कोरब्रिज, स्टुअर्ट एट. आल (2004), झारखंड ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
7. मुंडा आर.डी. एण्ड बोसु मलिक, एस. (सम्पादक) 2003। द झारखंड मूवमेंट, आइ.डब्ल्यू.जी.आइ.ए. कोपेहगन
8. संजय कुमार, 2004 स्टुअर्ट एट.अल (2004) झारखंड, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
9. सरीन, मधु, 2003 जेंडर रिलेशंस इन फॉरेस्ट सोसायटीस इन एशिया, केलकर जी. (सम्पादक)
10. नाथन, डी एण्ड वाल्टर, पी. सेज, नई दिल्ली
11. सेनगुप्ता, एन. (सम्पादक), 1982, फोर्थ वर्ल्ड डायनामिक्स ऑफ झारखंड ऑथर्स गिल्ड
12. शिवरामाकृष्णन, के. 1999, मोर्डन फॉरेस्ट्स. ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली
13. सिंह, के.एस. 1966, द दस्ट स्टोर्म एण्ड द हैगिंग मिस्ट, कोलकाता



उड़िसा में प्रजातन्त्र का उपहास

देबरंजन सारंगी

जॉन पर्किन्स ने अपनी पुस्तक 'न्फेशन ऑफ ऐन इकॉनामिक हिट मैन' में यह कहा है कि "आर्थिक रूप से पिटा हुआ व्यक्ति पूरी तरह सफल होता है, कर्ज इतने विस्तृत होते हैं कि ऋणी पर कुछ ही वर्षों के बाद उसके भुगतान के लिए दबाव डाला जाने लगता है और उसे दोषी करार दिया जाता है। जब ऐसा होता है, तब माफिया हमसे हमारे रक्त के कतरे की माँग करता है। जब 2000 ई. में नवीन पटनायक केन्द्र में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबंधन (एन. डी. ए.) सरकार के दरम्यान उड़ीसा के मुख्यमंत्री हुए तब उड़ीसा की अर्थव्यवस्था के खिलाड़ियों ने उड़िसा के लोगों से खून का कतरा मांगा।

भूमंडलीकरण का टकराव डी. एफ. आई. डी. के साथ ज्यादा दृष्टिगोचर होने लगा, मूलार्थ में नवीन पटनायक की सरकार के साथ एक दार्शनिक और मार्गदर्शक की भूमिका अदा करने लगा और समय की माँग के मुताबिक सुधार हुआ। आन्ध्रप्रदेश और उड़ीसा का निम्नलिखित आवेदन 1999 ई. में समस्त ठेकों को ए. इ. एस. के पक्ष में करके इसके कार्यक्षेत्र का निजीकरण कर दिया। राज्य में अचानक निजी विद्युत उपभोक्ताओं के मीटर बिल बड़ गए। भूमंडलीकरण के टकराव का असर ऐसा हुआ कि सरकारी विभागों में लगभग 10 हजार पदों का कोष के अभाव में उन्मूलन कर दिया गया।

राज्य में निजी कम्पनियों का जन्म हो गया, जब कि सरकार उन्हें सहजता से कार्य करने का उपाय करके आराम फरमाने लगी। यह इससे भी जाहिर होता है कि जब 2003 ई. में राज्य में कर-सूचक में वृद्धि हो रही थी, तब सरकार ने कोका कोला कम्पनी के चार करोड़ रुपये का कर के भुगतान में शिथिलता बरत दी। ऋण राज्य सरकार ने चरणबद्ध रूप से 2001 ई. में 24,000 करोड़ रु., 2004 ई. में 32,000 करोड़ रु. लिया और जो अगले दस वर्षों में 72,000 करोड़ रु. पहुँच जाने की उम्मीद थी।

प्राकृतिक संसाधनों एवं खनिज पदार्थों की प्रचुरता के कारण उड़ीसा का क्रोमाइट, बॉक्साइट, ग्रेफाइट, मैंगनीज अयस्क, और डोलामाइट के मामले में पुरे भारत में सर्वोच्च धरोहरीय प्रतिशत हैं। कोयले के मामले में इसका चौथा स्थान है, और लौह-अयस्क धरोहर के मामले में इसका पाँचवा स्थान है। यह उड़ीसा सरकार के कारगर कदम हैं, जिसमें इन प्रचुर संसाधन के औद्योगिक घरानों को राज्य में पूँजी का विनियोग करने के लिए आमन्त्रित करके संरक्षित किया जा रहा है। नतीजन हिंडालको (बिड़ला ग्रुप), ऑलकैन (कनाडा), वेडान्ता (यू. के.) बी. एच. पी. बिल्लिटन (यू. के.) रियो टिन्टो (यू. के.) इत्यादि लगभग 53,000 करोड़ रु. के विनियोग से राज्य में अगले 75 वर्षों में कुल 7330 लाख टन बॉक्साइट का उत्पादन करेगा। इसी प्रकार टिस्को, वेदान्ता/स्टरलाइट, भूषण, जिन्दल, एसार, मित्तल, बी. एच. पी. बिल्लिटन (यू. के.), रियो टिन्टो (यू. के.) और पोस्को (दक्षिण कोरिया) ने अगले 45 वर्षों में एक लाख तीस हजार करोड़ रु. के 35,670 लाख टन लौह-आयस्क निष्कासन का ठेका ले लिया है। कई कम्पनियाँ मैंगनीज और कोयले की इजाजत लेने के लिए पंक्तिबद्ध हैं। इस तरह राज्य के प्रचुर खनिज सम्पदाओं को पूरी तरह लुप्त होने में देर नहीं लगेगी।

नई औद्योगिक नीति पिछले सितम्बर 2004 में लायी गई, जिसमें प्रवेश कर, बिक्री कर एवं अन्य रियायतों का राज्य में प्रत्येक दस हजार करोड़ विदेशी पूँजी के 10-15 वर्षों की वैधता में प्रतिवर्ष एक हजार करोड़ रूप विनियोग करने की छूट देने का प्रावधान किया। सामुहिक कृषि अधिनियम 2006 ई. में पारित होने के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने कृषि के नाम पर विशाल भू-खण्डों को संचित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उदाहरणार्थ, बी. एच. पी. बिल्लिटन ने कोरापुट जिले की एक लाख हेक्टेयर जमीन को जैव पौधाकरण के लिए व्यवहृत किया है जो कि आस्ट्रेलिया की कम्पनी है, और मोन्सैन्टो मोलान्गीर जिले में जमीन

हेतु प्रतिस्पर्द्धा के दौर में है। राज्य सरकार ने निजीकरण से जल को नहीं पृथक किया है। जल निजीकरण विधेयक 2003 शहरों एवं नगरों की निजी कम्पनियों के जल वितरण अधिकार का आश्वासन देता है। जल संसाधन के निजीकरण के कारण गंदगियों के अधिसंख्य उदाहरण अन्य जगहों में पड़े हैं, जैसे बोलिविया के कोचा बाम्बा के बेच्टेल में, दिल्ली के विवेन्डी में और छत्तीसगढ़ की शिवनाथ नदी में।

उड़ीसा की यह सरकार 'राज्य सहमति अधिनियमों में' पश्चिमी आस्ट्रेलिया की धारणा की राह पर चलने को गंभीरता पूर्वक सोच रही है। 'खनिज भूमि' राजस्व आँकड़ें अधिसूचित क्षेत्रों में पंचायत विस्तारीकरण अधिनियम (पेसा), 1996 के तहत ग्राम सभा के साथ वैधानिक 'संसर्ग' के कारण पलायित हो रही है और वैसे क्षेत्रों को अनुसूचित जनजातियों के मकसदों के विरुद्ध तथा अन्य अवैध जंगल कटाई (वन्य अधिकारों को मान्यता का अधिकार) अधिनियम 2006 से पृथक रखा जा रहा है। सरकार की गम्भीरता इस सच्चाई से इनकार नहीं कर सकती कि इस मुद्दे पर फरवरी 2006 में उड़ीसा के भुवनेश्वर में भारतीय खनिज उद्योग फेडरेशन (एफ. आई. एम. आई) द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय खनिज शिखर सम्मेलन में सामुहिक रूप से बहस हो चुकी है।



निर्वाचित सरकार द्वारा दमन

एक निर्वाचित सरकार द्वारा दमन राज्य में परियोजनाओं के भारी बोझ ने व्यापक पैमाने पर लोगों को विस्थापन के लिए बाध्य किया है। एक संरक्षी आकड़े के मुताबिक लगभग 2.5 लाख परिवार उन 46 परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वाले हैं, जिन पर आपसी सहमती (एम. ओ. यू.) ने हस्ताक्षर कर दिया है और लागू हो चुके हैं। अतीत में लोगों द्वारा किसी भी प्रकार के विरोध को सरकारी दमन का शिकार होना पड़ा। इसी संदर्भ में 2, जनवरी 2006 ई. को कलिंग नगर में घटना घटी थी, जिसमें पुलिस गोलीकांड में 13 आदिवासीयों की जाने गयी थी और 1159 गिरतार होने के भय से सहमें हुए हैं, क्योंकि उनपर आरोप है कि उन्होंने स्थानीय पुलिस का तब उपरोध किया, जब वे अपनी ड्यूटी

पर तैनात थे। वे टाटा परियोजना के साथ जमीन की लड़ाई लड़ रहे थे। एक दूसरी घटना में कलिंग नगर में ही लोगों के समुह पर महाराष्ट्र सिमलेक्स कम्पनी की इकाई लगाने का प्रतिकार करने के क्रम में पुलिस ने लाठीचार्ज किया था, जिस में 26 आदिवासियों को 9 मई, 2005 ई. को जेल भेज दिया गया था जिनमें अधिकांश महिलाएँ थी।

सरकार का दमन चक्र रायगढ़ जिले के काशीपुर प्रखंड में भी 16 दिसम्बर, 2000 ई. से चल रहा है। जबकि मैकाँच क्षेत्र के तीन आदिवासी पुलिस गोलीबारी में मारे गये। उनका अपराध बस इतना था कि वे निजी कम्पनियों के द्वारा भू-अधिग्रहण का प्रतिकार कर रहे थे। एक वर्ष में 52 आदिवासी गिरफ्तार कर लिए गए जब वे यू. ए. आई. एल. (उत्कल अल्यूमिना इंटरनेशनल लिमिटेड) कनाडा के ऐल्कैन और भारत के हिंडाल्को को एक संयुक्त सट्टा के द्वारा उद्योग लगाने के प्रति प्रतिकार कर रहे थे।

इन समस्त घटनाओं में सरकार ने अपनी पूरी क्षमता के साथ ताकत का इस्तेमाल किया, जिसके लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, भारतीय रिजर्व बटालियन, उड़ीसा राज्य सैन्य पुलिस एवं अन्य पुलिस बल का प्रयोग किया। क्षेत्र में दहशत का आलम बरकरार है, क्यों कि सरकार द्वारा दमन का चक्र चल रहा है।

लेंजीगढ़ प्रखंड के लोग यू.के. के वेदांता अल्यूमिना कम्पनी द्वारा बॉक्साइट खनन के लिए जबरन भू अधिग्रहण का विगत दो वर्षों से प्रतिकार जारी है। किसी भी प्रकार के विरोध को रोकने के लिए विभिन्न उपाय करने हेतु कम्पनी ने निजी सुरक्षाकर्मियों को बहाल कर लिया है। गत दो वर्षों में इन सुरक्षाकर्मियों एवं कम्पनी के चालकों के द्वारा तीन आदिवासी मारे जा चुके हैं। यद्यपि यह एक खुली सच्चाई है कि ये लोग कम्पनी से जुड़े निजी लोगों द्वारा मारे गये परन्तु पुलिस ने हत्या का मामला दर्ज करने से इनकार कर दिया। इसी तरह अप्रैल, 2006 ई. में जगतसिंहपुर जिले के पारादीप इलाके में 9 लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। ये स्थानीय लोग दक्षिण कोरिया के पोस्को कम्पनी द्वारा पारादीप इलाके में जमीन सर्वेक्षण कार्य किये जाने का विरोधा कर रहे थे। जगतसिंहपुर जिले के आरक्षी अधीक्षक और जिला समाहर्ता ने द्वेषपूर्ण ढंग से उन्हीं लोगों पर मुकदमा ठोक दिया जो पुलिस फायरिंग और काशीपुर में राज्य दहशतगार्दी के लिए जिम्मेवार थे जिससे पोस्को का मार्ग प्रशस्त हो गया था। उल्लेखनीय है कि पारादीप की स्थिति इन सबसे ज्यादा गंभीर हो गई।

भारतीय आरक्षी सेवा के जसवंत जेठवा ने 2000 ई. में मैकाँच में पुलिस फायरिंग का आदेश दिया था जिसमें तीन आदिवासी मारे गये थे। भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रमोद मेहेरदा ने रायगड़ा जिले के काशीपुर में 2005 ई. में जिला समाहर्ता के रूप में राज्य दहशतगर्दी पर नियंत्रण कायम किया था।

विस्तृत प्राकृतिक धरोहरों के लिए बड़ी कम्पनियों का मार्ग प्रशस्त करने के साथ सरकार ने कई स्पंज आयरन कारखानों को सुनिश्चित किया है। मयूरभंज, क्योंझर और सुन्दरगढ़ में ऐसी लगभग 130 कारखाने हैं, जिनमें से 50 अवैध हैं। 2005 में 64 स्पंज आयरन प्लान्ट पंजीकृत हो गये थे और 18 अनुमति हेतु प्रतीक्षारत हैं, परंतु अनुमति नहीं मिली है। अनुमति की प्रक्रियाएँ एवं लोक सुनवाई इन क्षेत्रों में अनसुनी हैं। सच्चाई है कि इन प्लांटों से जो अवशिष्ट पदार्थ उत्सर्जित होते हैं, उनमें कैडमियम, निकेल, हेक्सवैलेन्ट क्रोमियम, आर्सेनिक, मैंगनीज तथा कॉपर जैसे खतरनाक प्रदूषक निकलते हैं, जो जल एवं हवा को प्रदूषित करके फसलों एवं लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं।

राज्य प्रदूषण परिषद अपने कर्तव्य के निर्वाह में आनाकानी करती है। ठेकेदारी पर आधारित श्रमिक प्रथा इन संयंत्रों में जान को जोखिम में डालकर काम करने वाले लोगों की सुरक्षा को सुनिश्चित नहीं कर पाती। मृत्यु के उपरान्त मुआवजे की शिकायतों की सुनवाई श्रमिक प्रकोष्ठ में नहीं हो पायी। पुलिस कारनामों एवं नृशंसता के प्रतिकार का कोई नतीजा नहीं निकलता। उदाहरणार्थ, 24 मार्च, 2006 ई. को सुन्दरगढ़ जिले के कुआरमुंडा गाँव में पुलिस ने अपना दमन-चक्र चलाकर 4000 ग्रामीणों की भीड़ पर लाठी चार्ज किया और करीब 118 लोगों को गिरफ्तार कर लिया, जिनमें लड़के, लड़कियाँ एवं औरतें भी शामिल थीं। ग्रामीण, कुआरमुंडा गाँव में नेपाज स्पंज आयरन फैक्ट्री लगाये जाने का विरोध कर रहे थे। इसी प्रकार का विरोध सम्बलपुर एवं झारसुगुड़ा जिलों में भी हुआ था।

दिसम्बर 2005 ई. में ढेंकानल जिले के स्थानीय लोगों के द्वारा जब भूषण स्टील कम्पनी के निर्माण कार्य का विरोध किए जाने पर पुलिस ने जबर्दस्त लाठी चार्ज किया और घटनास्थल से 26 लोगों को गिरफ्तार कर लिया था। 11 मई 2005 ई. को बोलांगीर जिले के लोअर सुखतेल गाँव में जब ग्रामीणों द्वारा बाँध परियोजना के शिलान्यास का विरोध किया गया था, तब ग्रामीणों को पुलिस ज्यादाती का शिकार होना पड़ा था। पुलिस वालों

ने विरोध के आरोप में 70 लोगों को हिरासत में ले लिया था और थाने में लाकर उन्हें पीटा था और उनके साथ अभद्र व्यावहार किया था। सुखतेल में बाँध परियोजना का मकसद बोलांगीर जिले के गांधामर्दन पहाड़ी के पास एक बॉक्साइट खनन कम्पनी को जलापूर्ति सुनिश्चित करना है। इसी प्रकार का वाक्या-वारदात पिछले साल नुआपाडा अम्यारण्य में हुआ था, जिसमें 18 आदिवासियों को वन विभाग द्वारा बेदखली के आदेशों को कबूल करने से इन्कार करने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया।

फिलहाल लोगों द्वारा उनके प्रदेश में कम्पनियों के आक्रमणों का हो रहे विरोध, खासकर कलिंग नगर में पुलिस गोली चार्ज ने शायद उड़ीसा सरकार को पुनर्वास नीति पर गौर फरमाने को बाध्य किया है। 'परामर्श' प्रावधान के आलोक में ग्राम सभा की 'सहमति' परियोजनाओं के कारण लोगों के विस्थापन को दायरे में नहीं बाँध पाती परन्तु यह उड़ीसा ग्राम पंचायती अधिनियम के संशोधन के मामले में गौण हैं। यह भूमि खो देने वाले लोगों को कम्पनी के साथ सीधा समझौता करने को कहता है, परन्तु मुआवजा के रूप में भूमि के बदले भूमि अथवा भूमि के बदले नौकरी का प्रावधान, भूमिहीन परिवारों और बेदखल होने वाले परिवारों के लिए नहीं है। नीति साफ इज़हार करती है कि यदि स्थानीय लोग मुआवजे को कबूल नहीं करते हैं तो ताकत का इस्तेमाल किया जायेगा। यह भविष्य में कलिंग नगर एवं मैकाँच जैसी अन्य जगहों में पुलिस फायरिंग जैसी वारदातों के होने का रास्ता साफ कर देता है।

सरकार यह दावा करती है कि यदि आपसी सहमती 46 एम.यू. के तहत सभी परियोजनाओं को लागू कर दिया जाये, जो कि राज्य के आदिवासी क्षेत्र में छाये हुए हैं, तो 50,000 नौकरियों का सृजन होगा। यही कारण है कि सरकार अब वृहत् परियोजनाओं के विरुद्ध संघर्षों और उनके नेताओं को राष्ट्रदोही, उपद्रवकारी, नक्सपंथी एवं अन्य का दर्जा दे रही है। बिडम्बना यह है कि उनके जीवनयापन के लिए परियोजनाओं के विरुद्ध चलाये जाने वाले आन्दोलन गैरकानूनी, सरकार के विरुद्ध एवं राजनीतिक दल के द्वारा सुलगाये हुए नहीं हैं। तथापि, वे सरकार का विरोध करने की स्थिति में सज़ा पाने की दहशत का सामना करते हैं। उनका जुर्म यही है कि वे पीढ़ियों से अधिकार में रहे एवं प्रबन्धन किये गये अपने संसाधनों के लिए लड़ रहे हैं।



संवैधानिक अधिकार जोखिम में

डेविड सी. कोर्टोन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "वेन कार्पोरेशन्स रूल द वर्ल्ड" में लिखा है, "सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दमनकारी जातीय संघर्ष को बढ़ावा देने वाली दुर्बल कानूनों वाली, भ्रष्टाचार में आकंठ डूबी हुई, दुर्बल श्रम विधान वाली, निम्न वातावरणीय स्तर वाली और मानवाधिकार नाम की कोई चीज न रहने देने वाली सरकार को चाहती है"।

नवीन पटनायक ने अपनी छः वर्षों के मुख्यमन्त्रित्व काल में बहुराष्ट्रीय कम्पनीयों (एम. एन. सी.) के लिए अनुकूल वातावरण का सृजन किया है। जैसे 500 करोड़ रु. से अधिक निवेश वाले परियोजनाओं के शीघ्र निपटारे के लिए राज्य कानूनी परिवेश में शिथिलता बरतते हुए, उड़ीया राज्य प्रदूषण नियन्त्रण परिषद को पूरी तरह निष्क्रिय करते हुए एवं अन्य तरह से, एक गवाक्ष नीति अपनायी है। उड़ीया राज्य मानवाधिकार आयोग की पूरी निष्क्रियता के कारण पुलिस शांति के बजाय उग्रवाद को बढ़ावा दे रही है और निगमित मानसिकता का प्रशासन बड़ी निगम का स्वागत कर रही है।

आपसी सहमति (एम.ओ.यू.) द्वारा हस्ताक्षरित 46 परियोजना में से सरकार के रिपोर्ट के मुताबिक 10 परियोजनाओं में कार्य प्रगति में है। दस में से चार ने कानून का अपमान किया है। उदाहरणार्थ, लाँजीगढ़ में वेदान्ता के द्वारा वन कानूनों की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं, काशीपुर में वातावरण, खनन एवं वन-निकासी के कार्य यू. ए. आई. एल. के द्वारा नहीं किये जा रहे हैं। कलिंग नगर में टाटा, भूषण स्टील के पास ग्राम सभा का संकल्प नहीं है, झारसुगुडा में स्टर्लाइट भारी सशस्त्र पुलिसबल एवं निजी सिपहसालारों की मौजूदगी में, लोग सुनवाई कार्यक्रम को कर रहा है। बड़ी निगमों की उग्र कार्रवाइयों के बावजूद भी कलिंग नगर को छोड़कर इन जगहों में हर दिन कार्य में प्रगति हो रही है।

राज्य में विधिहीनता एवं व्यापक भ्रष्टाचार का आलम कायम है। शराब दुकानों के लिए लाइसेंस के निर्मम वितरण से अनुमानतः 10 करोड़ रु. के राजस्व की कमाई हुई है, जिससे विगत दो वर्षों में लगभग एक सौ लोगों की निर्मम मौत हुई हैं। सबसे निर्मम बात

यह है कि दोषियों को सजा देने के लिए कोई सख्त कार्रवाई नहीं की गई। बड़ हेतु बड़ी दुकानों एवं निगमित दफ्तरों को, पास-पड़ोस की गंदी बस्तियों को नगरों की सफाई के नाम पर उजाड़कर, निर्मित किया जा रहा है। यहाँ तक कि गंदी बस्ती वासियों के पुनर्वास का इंतजाम भी नहीं किया जाता। स्थानीय नमक कृषकों के हित के विरुद्ध टाटा आयोडाइज्ड नमक को अनुमति, चिल्का झील के परंपरागत मछुआरे समुह के हितों के विरुद्ध झींगा माफियाओं को और ठेके पर काम करनेवाले हजारों कामगारों की छँटनी, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ (एम.एन.सी.) के लिए मार्ग बनाता है और सरकार के विद्वेष पूर्ण इरादे का पर्दाफाश करता है।

वास्तविक समस्याओं से सरकार का कोई वास्ता नहीं तथा राज्य की समस्याओं को हल करने में राज्य सरकार की कोई दिलचस्पी नहीं है। जमीन जैसे संसाधन अब भी चंद लोगों के कब्जे में ही है। उदाहरणार्थ, लाँजीगढ़ में कई मामले ऐसे हैं, जहाँ पूरे गाँव की जमीन एक ही व्यक्ति के कब्जे में हैं। जाजपुर जिले के कलिंग नगर में समय का चक्र 1928 ई. से ही थम सा गया लगता है, क्योंकि उस वक्त से ही मूल भू-स्वामियों को जमीन का पट्टा नहीं दिया गया है। नतीजतन क्षेत्र की अधिकांश व्यक्तिगत जमीन को भूमि रेकॉर्ड में सरकारी भूमि के रूप में दर्शाया गया है। रायगढ़ जिले के काशीपुर इलाके में खासकर बरसात के दिनों में भोजन के द्वितीय फसल के लिए सिंचाई के अभाव में भुखमरी से लोगों की मौत होती है। अल्प वर्षा होने से रायगढ़ में जीवनयापन करने वाले लोगों का जीवन काफी कठिन होता है। कम्पनियों द्वारा खनिज पदार्थों के खनन में वृद्धि होने से स्रोत शुष्क होते हैं। बारगढ़ में किसानों द्वारा आत्महत्या, मयुरभंज और सुन्दर गढ़ में छोटे खनिकों द्वारा अवैध जमीन कब्जा, हिरासत में मौतें और पुलिस ज्यादातियाँ सरकार को विचलित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। भुवनेश्वर से कुचिन्डा के बीच एक कतार में चार लोगों की हिरासत में मौत और निरपराध लोगों की पुलिस द्वारा बदसलुकी रहस्योद्घाटन करते हैं कि गृह मन्त्रालय मुख्यमन्त्री के साथ है।

राज्य में गरीबी रेखा की दर जो कि 1993 - 94 ई. 36 प्रतिशत थी, वह बढ़कर 2004-05 में 44.6 प्रतिशत हो गयी है। सर्वाधिक चोंकानेवाला तथ्य यह है कि गरीबी रेखा की राज्य की 72 प्रतिशत तादाद में 22 प्रतिशत जनजातियों की है। यह इस सच्चाई को झुठलाती है कि उड़ीसा की अधिकांश परियोजनाएँ जैसे हीराकुंड बाँध, राउरकेला इस्पात

संयंत्र इन्द्रावती बाँध, नाल्को बॉक्साइट माइन्स एवं संयंत्र, एच. ए. एन. संयंत्र जनजाति बहुल जिलों में स्थित हैं, जो कि वहाँ के लोगों को बेहतर एवं उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देते हैं। नतीजतन, विगत 25-30 वर्षों में कोई भी आदिवासी 24-56 प्रतिशत आदिवासी भूमि को प्राप्त नहीं कर पाया है। उल्लेखनीय है कि जनजातीयता ही उनकी बदकिस्मती है। फसलों की विफलता, सूखा, तथा निजी वित्तीय कंपनियों से ऋण ने 30 प्रतिशत दलितों को 1961 से 1991 ई. के दौरान अपनी जमीन को बेच देने के लिए विवश कर दिया। एक समय जो लोग जमीन के स्वामी थे आज वे ही दैनिक मजदूर बन गये। जिन परियोजनाओं पर आपसी सहमती (एम. ओ. यू) ने हस्ताक्षर कर दिया है, वे भी आदिवासियों की जमीन छीनते ही आ रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य सेवाओं का स्तर गिरता जा रहा है, साथ ही, नवजात शिशु एवं मातृ मृत्यु दर राज्य के आदिवासी इलाकों में सर्वाधिक है।

समस्याओं के सही ढंग से निवारण के बजाय सरकार लोगों की आवाज को दमित करने के लिए अपनी क्रूरतम ताकत का इस्तेमाल कर रही है। नृशंता के विरुद्ध लोगों द्वारा किये गये प्रतिकार को नक्सलवादी संगठित गतिविधियों के मुहर लग जाने का खतरा बना रहता है। यहाँ तक कि नक्सली समस्या के समाधान के लिए दी जाने वाली राशि का लाभ प्राप्त करने के लिए भी सरकार खड़ी हो जाती है।

उड़ीसा, नक्सलवाद के सफाये के लिए केन्द्र से प्रदान की जाने वाली सबसे बड़ी सहायता प्राप्त करने वाला राज्य है। विगत दो वर्षों में सरकार ने इंडियन रिजर्व पुलिस फोर्स और सी. आर. पी. एफ. के दो बटालियनों को केन्द्र सरकार से प्राप्त किया है।

काँग्रेस, सी.पी.आई., सी.पी.एम., जे.एम.एम. सरीखे विपक्षी दलों से कुछ भी उम्मीद करना कोरा बकवास है, क्योंकि वे न तो निगम के प्रवेश के विरुद्ध स्पष्ट निर्णय ले पाते हैं और ना ही समस्त आवामी संगठनों पर लगाये गये अघोषित प्रतिबन्ध की आलोचना करते हैं। कलिंग नगर की वारदात ने कुछ दिनों के लिए कोलाहल तथा क्रन्दन सृजित कर दिया था, और अंततः उनमें से कोई भी कहीं नहीं दिखाई पड़ा था।

जब सरकार माफियाओं के द्वारा शासित है, भ्रष्ट राजनीतिज्ञ एवं निगमित कार्यपालक अलोकतान्त्रिक तथा असंवैधानिक प्रक्रिया के लिए मार्ग बना रहे हैं, तो आवाज़ उठाने का मार्ग कहाँ है ?



राज्यपद ने आदिवासियों को क्या दिया?

आदिवासी अधिकार और आकांक्षाओं के संदर्भ में
झारखंड तथा छत्तीसगढ़ का व्यक्ति अध्ययन

इक्वेशन्स



राज्यपद और आदिवासी की आकांक्षाएं

बिहार से 15 नवंबर 2000 को अलग हुए झारखंड का जन्म प्राकृतिक संसाधनों पर अपने अधिकारों को बनाए रखने के आदिवासियों के चिरकालिक संघर्ष का परिणाम था। झारखंड आंदोलन सन् 1921 में स्थापित छोटानागपुर उन्नति समाज (छोउस/सीयूएस) और फिर सन् 1939 में स्थापित आदिवासी महासभा (आगे चलकर झारखंड पार्टी) की सांगठनिक गतिविधियों से शुरू हुआ। छोउस ने सन् 1928 में ही अलग झारखंड राज्य की मांग को लेकर साइमन कमीशन को एक ज्ञापन सौंपा था। यह मांग देश की आजादी के बाद सन्

1953 में झारखंड पार्टी के नेता जयपाल सिंह के द्वारा इसे संसद में पेश किए जाने के समय दृढ़तर होती गई। आरंभ में आंदोलन की मांग दक्षिण बिहार के छोटानागपुर और संथाल परगना क्षेत्र के 16 जिलों के साथ एक राज्य की थी। यह आसान नहीं था क्योंकि बिहार को इसके खनिज-समृद्ध दक्षिणी क्षेत्र से दो तिहाई राजस्व प्राप्त होता था। झारखंड पार्टी भी पश्चिम बंगाल के तीन पड़ोसी, जनजाति बहुत जिलों के साथ-साथ उड़ीसा के दो और मध्य प्रदेश के दो जिलों को शामिल करना चाहती थी। किंतु, आगे चलकर झारखंड पार्टी विधान सभा चुनावों में पराजित होती गई और अंततः अलग-थलग होकर रह गई।

राज्यपद की चर्चा ने सन् 1973 में झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के गठन के बाद पुनः जोर पकड़ा। सन् 1985 में हुए बिहार विधान सभा चुनावों में झामुमो को 13 सीटें मिली। सन् 1986 में अखिल झारखंड छात्र संघ (ऑल झारखंड स्टूडेंट्स यूनियन/एजेएसयू) तथा सन् 1987 में झारखंड समन्वयन समिति (झारखंड को-ऑर्डिनेशन कमिटी/जेसीसी) का गठन हुआ। संघर्ष के सात दशकों के बाद आखिरकार अलग राज्य का सपना साकार हुआ जब 2 अगस्त 2000 को भारत की संसद ने बिहार पुनर्गठन विधेयक (बिहार रीऑर्गेनाइजेशन बिल) पारित किया। झारखंड को 15 नवंबर 2000 को बिरसा मुंडा की वर्षगांठ के अवसर पर एक अलग राज्य घोषित कर दिया गया - इसका गठन छोटानागपुर, संथाल परगना और सिंहभूमि के आदिवासियों के लिए एक महान उपलब्धि थी।¹

छत्तीसगढ़ के संघर्ष की कहानी भी लगभग समान है। झारखंड की तरह ही, अलग छत्तीसगढ़ राज्य की मांग पहली बार सन् 1920 के दशक में उठाई गई। झारखंड के विपरीत जिसका कि एक सुसंगठित आंदोलन था, छत्तीसगढ़ में संघर्ष को जनता का समर्थन तो प्राप्त था, पर ये संघर्ष सीमित और छिटपुट थे। छत्तीसगढ़ की मांग सन् 1954 में राज्य का पुनर्गठन आयोग के गठन के बाद रखी गई। सन् 1990 के दशक के दौरान राज्यपद की मांग ने जोर पकड़ा और राज्यस्तरीय राजनीतिक मंच छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण मंच का गठन हुआ। स्व. चंदूलाल चंद्राकर इस मंच के अगुआ थे जिन्होंने क्षेत्रस्तरीय कई बंदों और रैलियों का सफल आयोजन किया जिन्हें कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) समेत प्रमुख राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त था।² वर्ष 1994 में 18 मार्च को अलग छत्तीसगढ़ की मांग को लेकर एक प्रस्ताव रखा गया जिसे मध्य प्रदेश विधान सभा ने सर्वसम्मति से मंजूरी दे दी। छत्तीसगढ़ का गठन कई कारकों की एक जटिल पारस्परिक

क्रिया है जिसने एक अलग राज्य का मार्ग प्रशस्त किया। उत्तराखंड और झारखंड की चिरकालिक मांग और आंदोलन ने, जिसके फलस्वरूप इन दो क्षेत्रों में अलग-अलग राज्य अस्तित्व में आए, अलग छत्तीसगढ़ की मांग के लिए एक संवेदनशील माहौल तैयार कर दिया। मध्य प्रदेश की दो विधान सभाओं और संसद के सदनों में मसौदा विधेयक पेश और मंजूर किए गए। भारत के राष्ट्रपति ने 25 अगस्त 2000 को मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम (मध्य प्रदेश रीऑर्गेनाइजेशन एक्ट) 2000 को मंजूरी दे दी और तदन्तर भारत सरकार ने छत्तीसगढ़ को एक अलग राज्य घोषित कर दिया।

आज जबकि वर्ष 2007 में बिहार और छत्तीसगढ़ राज्यपद प्राप्त होने के सातवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, इस उत्सव के अवसर पर एक बुनियादी सवाल ज्यों का त्यों खड़ा है- राज्यपद ने आदिवासियों की आकांक्षाओं को कहां तक पूरा किया? क्या इसने उनके घावों पर मरहम लगाया है? क्या इसने उन्हें और अधिकार दिए हैं? क्या इसने उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया है और उनके प्रभुत्व में वृद्धि की है ?



झारखंड - छोटी मुंडा की उलझन

"पुर्ती अपनी घर वाली और बच्चों को लेकर चाइबासा से पलामू आ गया, वहां जंगल को साफ कर एक घर बनाया। एक दिन अचानक कई तरह के लोग - सफेदपोश बंगाली-बिहारी - उपस्थित हुए और उसे घर से बेदखल कर दिया। उसका दिल पूरी तरह से टूट गया। जब वह जमीन तोड़ता है तो कोयला और अभ्रक क्यों निकलते हैं? ये सफेदपोश-बंगाली - बिहारी- क्यों टपक पड़ते हैं? क्या वजह है? वह जिस किसी भी पिछड़े इलाके में जाए, जमीन के पेट से कुछ न कुछ निकल आएगा, रातों-रात वहां कोई बड़ी बस्ती बस जाएगी। उसकी मुंडारी दुनिया सिमट जाएगी। फिर भी उसे कुछ नहीं चाहिए। एक छोटा सा गांव।"

महाश्वेता देवी की कृति का अंग्रेजी अनुवाद 'छोटी मुंडा ऐन्ड हिज ऐरों,' वर्ष 2002 में प्रकाशित

झारखंड भारत के खनिज समृद्ध क्षेत्रों में से एक है। यहां देश का 35 प्रतिशत कोयला, 90 प्रतिशत खाना पकाने का कोयला, 40 प्रतिशत तांबा, 22 प्रतिशत लौह अयस्क, 90 प्रतिशत अभ्रक और बॉक्साइट, स्फटिक (क्वार्ट्ज) और सिरैमिक के असीम भंडार पाए जाते हैं। झारखंड में बाहरी लोगों अथवा गैर आदिवासियों के द्वारा जिन्हें स्थानीय भाषा में दिकू कहा जाता है, इन संसाधनों के शोषण का एक लंबा इतिहास रहा है। ऐसे कई क्षेत्र जो आज झारखंड में शामिल हैं, बहुत पहले उन्नीसवीं सदी के आरंभ में प्राकृतिक संसाधनों पर दिकुओं के कब्जे और आदिवासियों को उनके संसाधनों और लाभांशों से वंचित किए जाने के गवाह हैं। आज उपनिवेशवादी शक्तियों और साहूकारों की जगह उद्योगों तथा आधारभूत संरचना परियोजनाओं ने ले ली है जो शोषण करते हैं, नष्ट करते हैं और आदिवासियों को आधुनिक विकास का मौहताज़ करते हैं।

झारखंड में प्रमुख परियोजनाओं द्वारा विस्थापन और भूमि अधिग्रहण

परियोजना	गांवों की संख्या	विस्थापितों की संख्या	अधिग्रहीत भूमि (एकड़ में)
नेतरहाट फील्ड फाइरिंग क्षेत्र	245	235000	625000
कोयल कारो परियोजना (बांध)	250	250000	66000
शंख बांध	208	46694	19000
चांडिल्य बांध	120	6773	43500
इचा बांध	5600 परिवार	28000	21000
मयूरबोली, माझन और मदिरा बांध	18936	94680	37645
मध्य कोयला क्षेत्र (सेंट्रल कोल फील्ड्स)	32751 परिवार	163755	120300

पूर्वी कोयला क्षेत्र (ईस्टर्न कोल फील्ड्स)			80000
टिस्को	7000 परिवार	35000	338496
एचइसी	12990 परिवार	64950	9200
बोकारो इस्पात संयंत्र (बोकारो स्टील प्लांट)	12487 परिवार	62435	34224
स्वर्णरेखा बांध और जल विद्युत	68400 परिवार	342000	85000
तेनूघाट परियोजना	76300	381500	97843
कुल		17,10,787	15,77,208

स्रोत : बीरसा रांची द्वारा 2004 में प्रकाशित 'बड़े खदान बड़ा चोर'।

झारखंड को राज्य का दर्जा मिलने के पूर्व ऊपर वर्णित अधिकांश परियोजनाएं प्रगति पर थीं। नवगठित राज्य ने इसकी प्रक्रिया को गति दी। लोगों को विस्थापन की राह दिखाने वाली 13 प्रमुख परियोजनाओं में से 12 परियोजनाएं या तो केंद्र सरकार के स्वामित्व में हैं या फिर झारखंड सरकार के।

झारखंड की आरंभिक नीतियों में से एक झारखंड उद्योग नीति (दि झारखंड इंडस्ट्रियल पॉलिसी) 2001 में घोषणा की गई है कि "राज्य सरकार तीव्र आर्थिक विकास और रोजगार के अवसर जुटाने के लिए राज्य में अधिक से अधिक पूंजी निवेश करना चाहती है। राज्य सरकार राज्य में उद्योग के विकास के लिए एक अनुकूल परिवेश के निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध है।"³ नीति में भू-अधिग्रहण प्रक्रिया में होने वाले विलंब को दूर करने के लिए सक्षम निवेशकों को आवश्यक भूमि मुहैया कराने हेतु हर जिले और औद्योगिक क्षेत्रों में भूमि बैंको की स्थापना जैसी अनुशंसाओं पर जोर दिया गया है।

राज्य में इस उद्योग-नीति का असर दिखाई देने लगा है। इस नीति के लागू होने के बाद पंजाब राज्य बिजली बोर्ड और ईस्टर्न मिनरल्स एण्ड ट्रेडिंग एजेंसी के साझा उपक्रम को

पैनएम (पीएनईएम) नाम के वेंचर कम्पनी के माध्यम से जमीन उपलब्ध कराना राज्य का पहला प्रमुख कदम था। केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित इस परियोजना को संथाल परगना जिले की पछवाड़ा पंचायत के 9 गांवों की 13 वर्ग किलोमीटर जमीन मुहैया कराने का प्रस्ताव है। इस परियोजना ने 50,000 रुपये मुआवजे की पेशकश की है। यह संथाल परगना काश्तकारी कानून (संथाल परगना टेनेंसी एक्ट) का खुला उल्लंघन है, जिसमें ग्राम सभा की अनुमति के बगैर गैर-आदिवासियों को जमीन बेचना या मुहैया कराना वर्जित है। ऐसे में केंद्रीय कानून भू-अधिग्रहण (लैंड एक्विजिशन एक्ट) के तहत घन प्रयोजन का उल्लेख किए बगैर जमीन अधिग्रहीत कर ली गई।⁴ इस निर्णय को चुनौती देते हुए सक्रियतावादियों और राजनीतिक नेताओं के एक वर्ग ने वर्ष 2003 में रांची उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की।

झारखंड ग्राम गणराज्य परिषद के सक्रियतावादी सिद्धेश्वर कहते हैं, "विभिन्न खनन तथा औद्योगिक घराने वर्ष 2000 से अब तक 45 सहमति पत्रों (एमओयू) पर दस्तखत कर चुके हैं। ऐसी आशंका है कि आदिवासियों की लगभग 55,000 हेक्टेयर जमीन छीन ली जाएगी।" मित्तल, जिंदल और एस्सार जैसी बड़े नामों वाली कंपनियों समेत विभिन्न लोहा और इस्पात कंपनियों और सरकार द्वारा हस्ताक्षरित लगभग 170,000 करोड़ वाले इन 45 सहमति पत्रों (एमओयू) के विरुद्ध झारखंड बड़े पैमाने पर कदम उठाने को उद्वेलित दिखाई दे रहा है। उदाहरण के लिए झारखंड के सिंहभूमि क्षेत्र के 85,000 हेक्टेयर वाले सरंडा वन प्रमंडल (सरंडा एशियन का सबसे बड़ा साल वन है) में से 9,300 हेक्टेयर वन भूमि खनन पट्टे की भेंट चढ़ाई जा चुकी है। मित्तल स्टील ने 40,000 करोड़ के प्रस्तावित निवेश के लिए इसी वन की 8,000 हेक्टेयर और टाटा ने 4,800 हेक्टेयर भूमि हेतु आवेदन कर रखा है। तात्पर्य यह कि इस समृद्ध वन की लगभग 21,000 हेक्टेयर भूमि खनन कंपनियों को दे दी जाएगी।⁵

ऐसा नहीं कि खनन पट्टों के मैदान में केवल देशी विदेशी निजी खिलाड़ी ही हों। झारखंड में ऐसी मिसालें हैं जहां सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों ने गैर जिम्मेदाराना हरकतों की हैं और वन संसाधनों पर कब्जा जमाया है। हजारीबाग पूर्वी वन अवन प्रमंडल की 21 खानों वाले मध्य कोयला क्षेत्र (सेंट्रल कोल फील्ड्स/सीसीएल) ने लगभग 2077 हेक्टेयर वन भूमि

अपने कब्जे में कर रखी है। सर्वोच्च न्यायालय ने सीसीएल को इस वन क्षेत्र में कार्य रोक देने का आदेश (202/95 वर्ष 1996) दिया है, पर वन विभाग के अनुसार सीसीएल द्वारा अवैध खनन अभी भी जारी है।⁶



छत्तीसगढ़ आदिवासी राज्य - छत्तीसगढ़ की खनिज संपदा

छत्तीसगढ़ की खनिज संपदा - हीरा, सोना, लौह अयस्क, कोयला, कुरुंड (कोरंडम), बॉक्साइट, डोलोमाइट, चूना, टिन और ग्रेनाइट - पर सरकार और निजी कंपनियों की आंखें हमेशा से लगी रही हैं। समस्त भारत के वनों के 12 प्रतिशत भाग वाले इस राज्य की 44 प्रतिशत भूमि पर वन छाया हुआ है।

छत्तीसगढ़ में औद्योगिकीकरण, बाँध और खनन आदिवासियों से उनकी जमीन छिन जाने के प्रमुख कारण हैं। बस्तर क्षेत्र की बैलाडिला लौह अयस्क परियोजना (दि बैलाडिला आइरन और प्रॉजेक्ट बीआइओपी) कई आदिवासी समुदायों को प्रभावित करने वाली पहली प्रमुख परियोजना थी। इस परियोजना ने गौर मारिया तथा हिल मारिया आदिवासियों को जिले के अधिक पिछड़े इलाकों में चले जाने को विवश किया, जबकि छत्तीसगढ़ में बाहर से आनेवालों की संख्या में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त खनन प्रयोजनों के लिए जल के उपयोग, जल स्रोतों के प्रदूषण और वन के झाड़-झंखाड़ के नाश से प्राकृतिक संसाधनों बुरी तरह प्रभावित हुए। औद्योगिकीकरण के कारण उत्पन्न बिजली की जरूरतों को पूरा करने के लिए इंद्रावती और बोधघाट जल विद्युत परियोजना के निर्माण तथा पर्यावरण संरक्षण के बहाने कोतू वन्य जीवन अभयारण्य की घोषणा ने 16,000 माना गोंड परिवारों को उनके पुश्तैनी घरों से बेघर कर दिया।⁷

बस्तर के एक गोंड फागू राम बत्ती का कहना है

"अपने तीर और कमान लेकर जंगल मत जाओ। सभी जानवर सरकारी हैं। वे डर जाएंगे। हां मेरे लोगों एक और बात सुनो। जंगल सरकार का है, नीचे चट्टानें सरकार हैं, इसलिए सरकार से पूछे बगैर मिट्टी न खोदो। मरने के पहले अपनी कब्र की खुदाई के लिए अर्जी दो। वरना तुम्हारी मौत के बाद भी वे तुम्हें चैन से नहीं रहने देंगे। तुम्हारे आसपास की हर चीज सरकारी है। सिर्फ आदिवासियों के हाथ खाली हैं और असल मालिक भिखारी हो चुके हैं।"

झारखंड की तरह ही, वर्ष 2000 में राज्य के गठन के तुरंत बाद छत्तीसगढ़ सरकार ने भी जो पहली नीति अपनाई वह उद्योग नीति 2004-2009 थी। इसका मुख्य लक्ष्य था "राज्य में औद्योगिक निवेश के लिए निवेशकों को आकृष्ट करना। विनेश के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना मुहैया कराना, निवेशकों के लिए उत्पादन पर आने वाली लागत को कम करना तथा उनके अनुकूल प्रशासन सुनिश्चित करना नीति का प्रयास है।"⁸

मध्य प्रदेश सरकार ने उत्खनन के लिए मार्ग पहले ही प्रशस्त कर रखा था और जिंदल स्टील एण्ड पावर लिमिटेड (जेएसपीएल) को वर्ष 1996-97 में ही पट्टेदारी दे दी थी। वर्ष 2000 में नमनार कोयला क्षेत्र में उत्खनन शुरू हुआ जो जेएसपीएल के स्वामित्व में था। तमनार (जिला/क्षेत्र), जो अनुसूचित क्षेत्र 5 के अधीन आता है, के 52 गांवों की जमीन अधिग्रहीत कर ली गई। 52 ग्रामसभाओं के प्रस्ताव की अनदेखी और पीइएसए अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए राज्य सरकार ने भू-अधिग्रहण कार्यक्रम पूरी आक्रामकता के साथ चालू कर दिया। 'जन प्रयोजन' के तहत, सरकार ने निजी लाभ के लिए निजी पार्टी पर अपना स्नेह बरसाया। जेएसपीएल अब रायगढ़ में अपना पांव पसारने की तैयारी कर रहा है। जेएसपीएल ने आरंभ में 100 करोड़ रुपये का निवेश किया था। अब इसकी योजना 10 गुणा अधिक निवेश की है जो लगभग 1260 करोड़ का होगा।

"विकास की ये योजनाएं" उस राज्य में लागू की जानी हैं जिसकी 32 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की है - इसमें दंतेबाड़ा जिले में अनुसूचित जातियों की आबादी सबसे अधिक 79 प्रतिशत उसके बाद बस्तर, जशपुर, सरगुजा, कांकेर और महासमुंद जिलों में क्रमशः

67, 65, 57, 56 और 28 प्रतिशत है। आदिवासी परिवारों की तुलना में दंतेबाड़ा में गरीबी रेखा से नीचे की परिवारों का अनुपात 79 प्रतिशत है।

वर्ष 2000 में गठन के कुछ वर्षों के भीतर छत्तीसगढ़ राज्य ने देशी और विदेशी कंपनियों के साथ 53 सहमति पत्रों (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 9,620 हेक्टेयर (23,774 एकड़) भूमि पहले ही अधिग्रहण प्रक्रिया के अधीन है।⁹

एवी बिड़ला समूह (ग्रासिम इंडस्ट्रीज), अल्ट्राटेक सिमको, गुजरात अंबुजा सीमेंट, एसीसी और लाफार्ज समेत सीमेंट के सभी बड़े उत्पादकों की राज्य में मौजूदगी उल्लेखनीय है। एस्सार स्टील, जिंदल स्टील एंड पावर लि., साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स तथा कई अन्य कंपनियां राज्य में धातु तथा उत्खनन व्यापार के मैदान में हैं। स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया (सेल), जिंदल स्टील, मोनेट इस्पात लि., विजा इंडस्ट्रीज लि., भूषण लि., सनविजय रॉलिंग एंड इंजीनियरिंग लि., बालको (बीएएलसीओ), वेदांत रिसोर्सेज ग्रुप का एक अंग, बजरंग पावर एंड स्टील इंडस्ट्रीज लि., एस के एस स्टील लि., रायपुर एलॉयज एंड स्टील लि. और इंड सिनर्जी लि. ने नए अथवा विस्तृत इस्पात और एल्युमिनियम संयंत्रों की घोषणा की है जिनके लिए भूमि अधिग्रहण की जरूरत होगी।¹⁰

विशाल अमेरिकी एडएस कॉर्पोरेशन की सहायक कंपनियां छत्तीसगढ़ में एक कोयला आधारित विद्युत संयंत्र स्थापित कर रही हैं और ईंधन के लिए कोयला खनन का कार्य भी अपने हाथों में लेंगी। एडएस युगांडा से पनामा के बीच (युगांडा में बजागाली प्रपात और पनामों में वर्षा-वन का सुनियोजित विनाश) पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाली अपनी परियोजनाओं को लेकर खासा बदनाम रही है। एडएस दावा करती है कि अर्जेंटीना में वहां की एक पूर्ववर्ती सरकार के साथ अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत हुआ उसका एक "मनभावन" (और अब विश्वस्तर पर बदनाम) सौदा राष्ट्र के कानून को रद्द करता है।

एक रिपोर्ट के अनुसार छह कंपनियों की नजर राज्य की हीरा संपदा पर है जिनमें डीबीयर्स और रियो टिटों जैसी बड़ी कंपनियां भी शामिल हैं। इनमें से अधिकांश योजनाओं के लिए पट्टी खनन की जरूरत होगी।¹¹



आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा ? पेसा की उपेक्षा

24 अप्रैल 1993 को लागू 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम स्थानीय स्वशासन के लिए एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। इसने पंचायतों को संवैधानिक रूप दिया और त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू की। किंतु अधिनियम अनुसूचित क्षेत्रों में लागू नहीं हो सका क्योंकि संविधान के अनुसार स्थानीय स्वशासन को आदिवासी क्षेत्रों के आदिवासियों की जरूरतों, रिवाजों, परंपराओं आदि के अनुरूप होना चाहिए। भूरिया कमिटी की अनुशंसाओं पर आधारित पेसा अधिनियम, 1996 लागू किया गया। अनुसूचित क्षेत्रों वाले सभी राज्यों को एक वर्ष के भीतर अर्थात् 24 दिसंबर 1997 तक पेसा प्रावधानों को समाविष्ट करते हुए तत्कालीन अधिनियम में संशोधन करने का आदेश दिया गया।

पेसा के प्रावधानों का मुख्य लक्ष्य आदिवासी क्षेत्रों में ग्राम सभाओं को उनके अपने संसाधनों के प्रबंधन और उन पर नियंत्रण का अधिकार देते हुए प्रजातांत्रिक प्रणाली में भागीदारी सुलभ कराना था। आदिवासी समुदायों को उनकी संस्कृति के साथ सामंजस्य रखते हुए उनके अपने विकास में प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ग्राम सभाओं को कार्यमूलक अधिकार तथा दायित्व दिए गए ताकि प्राकृतिक संसाधनों पर उनका अधिकार बना रहे। अधिनियम ने भूमि, जल, वन तथा खनिजों समेत प्राकृतिक संसाधनों पर प्राथमिकता नियंत्रण लौटा दिया और ग्राम सभाओं को गौण वन्य उत्पादों पर मालिकाना अधिकार दे दिया। किंतु इस पर सहसा विश्वास नहीं होता कि झारखंड राज्य पंचायती राज अधिनियम ने गौण वन्य उत्पादों पर आदिवासियों के अधिकार भी ग्राम सभाओं के अधिकार-क्षेत्र से छीन लिए हैं, जो उन्हें केंद्रीय अधिनियम में दिए गए थे।²

रांची उच्च न्यायालय के अधिवक्ता रत्नाकर भेंगरा कहते हैं:

"पेसा कोई आदर्श अधिनियम नहीं है। किंतु झारखंड सरकार ने 2001 के अपने राज्य पी आर आई अधिनियम के बुनियादी प्रावधानों को भी कमजोर कर दिया है। हम चाहते

हैं कि अधिनियम माधराज मानकी, मुंडा, डकलो, सहार जैसे हमारे पारंपरिक प्रधानों और प्रथागत अधिकारों को मान्यता दे। मौजूदा अधिनियम बिहार पंचायत राज अधिनियम की नकल मात्र है।"

राज्य में इसके गठन से अब तक पंचायत चुनाव नहीं हुए हैं। पेसा के लागू और चुनावों के नहीं होने तथा सरकार के औद्योगिकीकरण पर जोर के फलस्वरूप खनन कंपनियों, उद्योगों तथा अन्य आधारभूत संरचना परियोजनाओं के लिए झारखंड में आदिवासियों की जमीन अधिग्रहीत करना सहज हो गया है। 'झारखंड आंदोलन', जैसा कि राज्य के दर्जे के लिए जारी संघर्ष को कहा जाता था, अब नए चरण में प्रवेश कर चुका है, जहां संघर्ष राजनीतिक पहचान के लिए नहीं, बल्कि यह नए दिक्कों से वन, खनिज, भूमि तथा जल संसाधनों का अधिकार वापस लेने की एक तात्त्विक लड़ाई है।

छत्तीसगढ़ ने पंचायत अधिनियम में संशोधन कर पेसा के प्रावधानों को शामिल किया। राज्य ने नियमित रूप से पंचायत चुनाव कराए हैं। किंतु ऐसे अनेक मामले हैं जहां उसने पेसा के प्रावधानों की उपेक्षा की है। चरतंगर में जिंदल का कारोबार, कुरकुट नदी बांध, रायपुर के समीप चौरंगा गांव में स्पंज लौह कंपनी सभी ऐसे मामले हैं जहां ग्राम सभा के स्पष्टतः लिखित प्रस्तावों की उपेक्षा की गई है। ग्राम सभाओं के अनापत्ति प्रमाण "प्राप्त" करने के लिए छल-कपट, गलत सूचना, फरेब और बल सभी अपनाए जाते हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों में आने वाले अधिकांश क्षेत्रों में सरकार पेसा की अनदेखी करती है जो ग्राम सभा तथा स्थानीय पंचायतों को योजना बनाने, निर्णय लेने और नियामक शक्तियों की अनुमति देता है। एकता परिषद के एक सक्रियतावादी कार्यकर्ता रमेश शर्मा कहते हैं : "छत्तीसगढ़ उद्योग नीति के अनुसार जनजातीय क्षेत्रों में पट्टा आदिवासियों को दिया जाएगा। हम इसे खुली चुनौती देते हैं। एक भी आदिवासी को पट्टा नहीं मिला है। 90-95 प्रतिशत पट्टे बाहरी लोगों की कंपनियों को दिए गए हैं .. एक भी कंपनी छत्तीसगढ़ स्थित नहीं है।"

बस्तर जिले में जगदलपुर शहर के निकट टाटा द्वारा एक इस्पात संयंत्र के निर्माण के लिए 24 जून 2005 को छत्तीसगढ़ के उद्योग एवं खनिज संसाधन विभाग और टिस्को के बीच एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। सहमति पत्र में एक दस्तावेज गुप्त रखा गया है

जो सरकार के साथ टाटा का करार हो जाने और सहमति पत्र में वर्णित सभी अधिकार मिल जाने तथा अड़चनों के दूर हो जाने के बाद ही प्रकाशित किया जाएगा। छत्तीसगढ़ सरकार ने एक अनुसूचित क्षेत्र में प्रभावित लोगों का विचार लिए बगैर टाटा को प्रस्तावित इस्पात परियोजना के लिए जमीन मुहैया कराने का वचन दिया है। पांच हजार तीन सौ एकड़ पर स्थापित संयंत्र 10 गांवों के 1900 परिवारों को प्रभावित करेगी।

कथाएं चलती हैं। इनमें जो समानता है वह यह कि आदिवासियों की जमीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है जिसके निवेशकों में ललक चरम पर है। इन सभी राज्यों में वन उत्पादों पर आदिवासियों के अधिकारी की मांग को लेकर तथा भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध और उनकी भू-जीविका तथा वनों की संरक्षा के लिए आंदोलन जारी है। विकास तथा निजी लाभ की लालच में सरकार ने इस संघर्षों को नक्सल आंदोलन कहकर खारिज कर दिया है और उनका हरजाना दे दिया है और वस्तुतः राज्यों के लोगों के विरुद्ध सरकारी बलों का उपयोग भी किया है। ये राज्य यह मानने को तैयार नहीं हैं कि उन्होंने आदिवासियों को धोखा दिया है, कि उनके साथ अन्याय हुआ है, कि आतंक और हिंसा ने उनके जीवन को तहस-नहस कर डाला है।

टिप्पणियाँ

1. राज्य का गठन पुराने बिहार के इक्कीस जिलों - रांची, गुमला, लोहरदंगा, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, हजारीबाग, गिरीडीह, कोडरमा, चतरा, धनबाद, बोकारो, पलामू, गढ़वा, दुमका, जामतारा, देवघर, गोड्डा, पाकुड़, सरायकेला और साहिबगंज को मिलाकर हुआ है। इसका क्षेत्र 74,677 वर्ग किलोमीटर है।
2. छत्तीसगढ़ सरकारी वेबसाइट <http://chhattisgarh.nic.in/profile/corign.htm>
3. झारखंड राज्य उद्योग नीति, 2001 <http://jharkhand.nic.in/governance/indopolicy.htm>
4. रत्नाकर भेंगरा का व्यक्तिगत साक्षात्कार, मार्च 2006
5. डाउन टू अर्थ, सितंबर 2006
6. बाबूलाल सिंघू "सरकारी कंपनियां कर रही हैं अवैध उत्खनन"

7. रिजवी, बी.आर. "ए विज़न इन दिसऐरे : दि नेहरुवियन मॉडल ऑफ ट्राइबल डेवलपमेंट"
8. छत्तीसगढ़ उद्योग नीति 2004-2009 [http://chhattisgarh.nic.in/govtpolicy/industrial - policy](http://chhattisgarh.nic.in/govtpolicy/industrial-policy)
9. एनैलिटिकल मंथली रिव्यू जून 2007 - एडिटोरियल
10. वही
11. वही
12. संजय मौलिक "हल टू राज : 150 इयर्स ऑफ क्राइम अगेंस्ट इकॉलॉजी इन झारखंड," 2006


जीवन के प्रादुर्भाव का वरलियों द्वारा व्याख्या

बाज भी वरलियों की तरह शिकारी और खाद्य संग्राहक संग्रह करने वाले थे। जब वरली धीरे - धीरे व्यवस्थित हुए तो कृषि कार्य एवं घरेलू मुर्गीपालन आदि कार्य करने लगे। बाज यदा-कदा तेजी से आते एवं एक-दो चूजे उठा ले जाते। बदलते हुए समय के साथ वरलियों ने उत्पादन का तरीका बदला, परन्तु बाज ने ऐसा नहीं किया। कहानी एक परिवार से शुरू होती है जिसमें सात बेटे एवं बहुएँ हैं। छः बड़ी बहुएँ गर्भ धारण नहीं कर पायीं, जब कि सबसे छोटी गर्भवती हो गई। बड़ी छः बहुएँ बहुत दुखी थीं एवं छोटी बहू के गर्भ में पल रहे बच्चे से ईर्ष्या करती थीं। जब छोटी बहू के प्रसव का समय नजदीक आया तो सभी बड़ी बहुएँ एक दिन मिलकर उसे जबरन जंगल में ले गईं और बच्चे का जन्म करवा कर बच्चे को मरने के लिए कंटीली झाड़ियों में फेंक दिया।

एक बाज ने आकाश से यह सारा दृश्य देखा। जब औरतें चली जाती हैं तो बाज बच्चे को उठाता है और पहाड़ी की चोटी पर ले जाता है। बाज बच्चे को खिलाता है और उसकी सुरक्षा करता है। और इस प्रकार बच्चा बड़ा हो जाता है। जब बच्चा बाज से पूछता है, "क्या तुम मेरी माँ हो?" बाज कहता है, युवक! तुम्हें घर पहुँचाने का समय आ गया है। परिवार बच्चे को पाने के लिए उत्सुक है। वे जाकर बाज से कहते हैं कि आपने हमें जीवन का उपहार दिया है। इस कर्ज को हम कैसे चुका सकते हैं? तब बाज उनसे कहता है, "मैंने पारितोषिक पाने के लिए ऐसा कुछ नहीं किया, मैंने सिर्फ अपना कर्तव्य निभाया है और मेरा कर्तव्य है जीवन की सुरक्षा। सिर्फ वह बुजुर्गों की तरफ जाता है और कहता है कि मैं बहुत भूखा हूँ। क्या मैं जमीन से एक चूजा उठा सकता हूँ? इसीलिए आज भी पुरानी पीढ़ी के लोग बच्चों से कहते हैं कि बाज को चूजा उठाने दो। उसे पत्थर मत मारो क्योंकि हम मनुष्य अपने जीवन का एक पुराना कर्ज चुका रहे हैं।

यह सद्भाव मानव जीवन के विषय में है जो कि पूरे संसार की व्याख्या है और पुनर्व्याख्या की सतत प्रक्रिया है। और इसीलिए यह सद्भाव एक गतिशील प्रक्रिया है और देशीय समुदाय इस गतिशील प्रक्रिया के अंग है।

कथाकार : **प्रदीप प्रभु** - एक व्यक्तिगत साक्षातकार, 2004



भाग 3

निजी कार्यकर्ता

यह 5600 वर्ष पुराना शैलशिल्प कर्मगढ़ सुरक्षित वनक्षेत्र छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिला में स्थित है। पास ही के राज्य उड़ीसा के अनुसूची V के तीन जिलों सुन्दरगढ़, मूयरभंज और क्यॉझर में 130 से भी उपर स्पंज आयरन उद्योग चल रहे हैं। स्पंज आयरन उद्योग विश्व का सबसे गंदा और सर्वाधिक प्रदूषित उद्योग है और भारत को विश्व में सबसे अधिक मात्रा में स्पंज आयरन उत्पादक का दर्जा प्राप्त है।



'जड़ से उखड़े'

विशाखपट्टनम,¹ आंध्र प्रदेश में खनन के विरुद्ध आदिवासी संघर्ष

इक्वेशन्स

भारत के दक्षिणवर्ती राज्यों में आंध्र प्रदेश में आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक है। यहाँ लगभग 33 देशज समूह हैं जिनकी आबादी 2001 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या का 6.59 प्रतिशत है। आंध्र प्रदेश के उत्तरी तथा पूर्वी भाग के जिलों यथा आदिलाबाद, मेहबूबनगर, वारंगल, खम्माम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, श्रीकाकुलम, विजयनगरम तथा विशाखापट्टनम आदि में आदिवासियों की अच्छी खासी आबादी है और इन जिलों के कई गाँव 5वीं अनुसूची क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।



संघर्ष के आयाम

आंध्र प्रदेश में आदिवासियों की जमीन को खनन कंपनियों को पट्टे पर देने की परम्परा 1950 के दशक के पूर्वार्द्ध से शुरू हुई। लगभग इसी काल में बिहार (वर्तमान झारखंड),

उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश (वर्तमान छत्तीसगढ़) में भी खनन संबंधित गतिविधियाँ तेजी से विस्तार ले रही थीं। आंध्र प्रदेश का विशाखापट्टनम् जिला, अपने यहाँ की बॉक्साइट, कैल्साइट, लाइमस्टोन तथा माईका जैसी बहुमूल्य खनिज सम्पदा भंडार के कारण इस राज्य में खनन कम्पनियों का पहला निशाना था।

वर्ष 1950 से अबतक, अकेले अनन्तगिरि मंडल में 2000 एकड़ से अधिक जमीन (जिसमें बोर्ना सुरक्षित वन क्षेत्र² की भी जमीन शामिल है) निजी खनन कम्पनियों को पट्टे पर दी जा चुकी है। इसके कारण आदिवासी अपनी वैसी जमीन से हाथ धो चुके हैं जिसपर वे सैकड़ों वर्षों से खेती करते आ रहे थे। वर्ष 1987 तक राज्य ने यूनिरॉक मिनरल्स प्रा. लि., कल्याणी मिनरल्स, एम. सीताराम स्वामी तथा आर. के. देव जैसे कुछ ही खनन व्यवसायियों को खनन पट्टा दिया था जो कि इस क्षेत्र³ में खनन गतिविधियों में संलिप्त थीं। इन्डियन रेयन एन्ड इन्डस्ट्रीज की अनुशांगिक कम्पनी बिड़ला पेरिक्लेज, पहली ऐसी बड़ी कम्पनी थी जिसे 1987 में पहली बार नीम्मलपाडु में 120 एकड़ जमीन कैल्साइट के खनन हेतु पट्टे पर दी गई। यह पट्टा कैल्साइट के दोहन के लिये दी गई थी जो कि कम्पनी के विशाखापट्टनम्⁴ जिले में भीमूनिपट्टनम के निकट स्थित समुद्री जल मैग्नेसियम संयंत्र का मुख्य कच्चा माल है। न केवल खनन के पट्टे अपितु इसके साथ राज्य सरकार द्वारा खनन गतिविधियों को सुगम बनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त संरचनात्मक सुविधाओं ने भी आदिवासियों में खतरे की घंटी बजा दी। राज्य सरकार ने सड़क मरम्मत के कुल व्यय का 50 प्रतिशत भाग वहन किया और लोक प्रयोजन के नाम पर वास्तविक कार्य स्थल हेतु, 25 से 90 फीट तक चौड़ी तथा 22 कि. मी. लम्बी सड़क के लिये भूमि अधिग्रहण करने में सुगमकर्ता की भी भूमिका निभाई।

लगभग 40 वर्षों तक निजी खनन कम्पनियाँ राज्य सरकार की सलाह से विधिक प्रावधानों का उल्लंघन करती रहीं और आदिवासी समुदायों के भोलेपन का जम कर लाभ उठाया। बिड़ला पेरिक्लेज की गतिविधियों से प्रभावित नीम्मलपाडु गाँव के एक पीड़ित व्यक्ति कहते हैं "हमारे पूर्वज अनभिज्ञ थे और ठेकेदारों ने इसका पूरा फायदा उठाया। उनके लिये हमारे पूर्वजों से अंगूठे के निशान लेना बहुत आसान था। हमें इस गलती का पता तब चला जब बाहर से लोग अपना बोरिया बिस्तर लेकर आये और हमारी ही जमीन को खोदना शुरू कर दिया।"

अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासियों के अधिकारों के संरक्षण के लिये निर्मित पेसा (अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज - PESA) अधिनियम के अतिरिक्त आंध्र प्रदेश में आदिवासी समुदाय के हितों व अधिकारों की रक्षा के लिये अन्य कानून भी हैं। जो इस प्रकार हैं -

- खनन व खनिज (विकास व नियमन) अधिनियम, 1957 जो केन्द्र सरकार द्वारा संघ सूची में 54वीं प्रविष्टि के अन्तर्गत निर्धारित है। आंध्र प्रदेश सरकार ने 1991 में संशोधन के द्वारा इस अधिनियम में एक नई धारा 11(5) को जोड़ा जो कि राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों में खनिज गवेषणा हेतु अनुज्ञापत्र अथवा खनन पट्टा किसी भी गैर अनुसूचित जनजाति व्यक्ति को देने का निषेध करता है। वहीं दूसरी ओर अधिनियम के अनुसार ये प्रतिरोध राज्य अथवा केन्द्र सरकार के उपक्रमों पर लागू नहीं होते हैं।
- आंध्र प्रदेश भूमि स्थानान्तरण नियमन अधिनियम, 1959 (1970 में संशोधित) अनुसूचित क्षेत्रों से अजनजाति लोगों के लिए भूमि के स्थानान्तरण को रोकती है।



समता निर्णय

जनजातियों के भूमि हस्तांतरण संबंधित मुद्दों पर कार्यरत गैर सरकारी संगठन 'समता' ने अनुसूची V तथा इसके अन्तर्गत वर्णित प्रावधानों के उल्लंघन में दो तरह के बेदखली को रेखांकित किया है - पहला, गैर जनजाति व्यक्तियों द्वारा तथा दूसरा राज्य के द्वारा। उपरोक्त उल्लंघनों के आधार पर समता ने 1995 में सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन दाखिल किया और इसपर सर्वोच्च न्यायालय ने अनुसूची V क्षेत्र की जनजातियों के पक्ष में जुलाई, 1997 में ऐतिहासिक निर्णय दिया, जो 'समता निर्णय' के रूप में लोकप्रिय है।

यह निर्णय स्थापित करता है कि अनुसूचित क्षेत्रों में सरकारी भूमि, जनजाति भूमि तथा वन भूमि को गैर जनजातियों अथवा निजी कम्पनियों को खनन या औद्योगिक संचालन के लिये पट्टे पर नहीं दिया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप तथा पूर्वव्यापी प्रभाव से राज्य सरकार द्वारा पाँचवी अनुसूची क्षेत्र में निर्गत सभी खनन पट्टे अवैध हो गये। सर्वोच्च न्यायालय ने 1997 में अपने आदेश में कहा कि ऐसे क्षेत्रों में खनन गतिविधियाँ सिर्फ राज्य खनिज विकास निगम अथवा आदिवासी सहकारी समितियों द्वारा ही संचालित की जा सकती हैं बशर्ते वे वन संरक्षण अधिनियम तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम में वर्णित प्रावधानों का पूर्णतः अनुपालन करती हों। संविधान के 1994 में हुए 73वें संशोधन एवं 1996 में बने पेसा अधिनियम की भावना के अनुरूप न्यायालय ने व्यवस्था दी कि ग्राम सभा सामुदायिक संसाधनों के संरक्षण व देखरेख के लिये सक्षम हैं, और आदिवासियों के स्वशासन के अधिकार को पुनः दुहराया।



प्रचुर उल्लंघन

1997 जुलाई से ही आंध्र प्रदेश राज्य तथा केन्द्र सरकार सर्वोच्च न्यायालय में परिप्रेक्ष्य से आदेश को लागू करने पर संशोधन के लिये अपील हेतु प्रयासरत थे परन्तु तीन वर्ष के बाद मार्च 2000 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस अपील को योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया। इसमें अड़ंगा लगाने पर राज्य तथा केन्द्र सरकार ने समता निर्णय के विधिक आधार को ही हटाने का प्रयास किया ताकि जनजातियों की भूमि खनन तथा अन्य औद्योगिक गतिविधियों के लिये निजी तथा बहुराष्ट्रीय निगमों को दिया जा सके। सजग नागरिक समाज के दबाव के कारण सरकार को इस प्रयास को भी रद्द करने के लिये विवश होना पड़ा। आंध्र प्रदेश सरकार ने अलोकतांत्रिक ढंग से आंध्र प्रदेश भूमि का स्थानान्तरण अधिकार अधिनियम, 1959 में संशोधन का प्रयास किया और और खनन तथा खनिज (नियमन व विकास) अधिनियम, 1975 की धारा 11(5) में संशोधन हेतु जनजाति

सलाहकार समिति पर भी अनुशंसा प्रस्ताव देने के लिये दबाव डाला ताकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की खनन गतिविधियों के लिये जनजाति क्षेत्रों को खोला जा सके।

समता वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को एक दशक भी नहीं बीते थे कि अनन्तगिरि के पहाड़ी इलाके पुनः खनन गतिविधियों का निशाना बन गये। हाल के वर्षों में उड़ीसा, छत्तीसगढ़ आदि पड़ोसी राज्यों में बहुतायत में विदेशी पूँजी निवेश ने भी राज्य सरकार को आंध्र प्रदेश में भी ऐसे निवेश के लिये बड़ी खनन कम्पनियों को बेहतर सुविधायें देने के लिये प्रेरित किया है।

राज्य सरकार ने निजी क्षेत्र की कम्पनी जिंदल समूह के साथ 9500 करोड़ रुपये के बॉक्साइट खनन व स्मेल्टर परियोजना के लिये 1 जुलाई 2005 को एमओयू पर दस्तखत किये। इस बार राज्य सरकार ने समता निर्णय में वर्णित शर्त "अनुसूचित क्षेत्रों में खनन कार्य केवल राज्य खनिज विकास निगम अथवा आदिवासी सहकारी समितियों के द्वारा ही किया जा सकता है" को अपनी सुविधनुसार मोड़ने के लिये आंध्र प्रदेश खनिज विकास निगम की स्थापना की और इसके द्वारा जिन्दल समूह के साथ एम ओ यू किया। आंध्र प्रदेश खनिज विकास निगम एजेन्सी क्षेत्रों⁵ में खनन के लिये उत्तरदायी होगी और जिंदल स्मेल्टर प्लांट को कच्चा माल उपलब्ध करायेगी।

लेकिन इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार इस प्रकार के निवेश को आदिवासियों की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं की अपेक्षा अधिक तरजीह दे रही है जिससे इनकी जीविका ही संकट में पड़ गई है।

आंध्र प्रदेश में पेसा के कानूनी प्रावधानों का भी काफी उल्लंघन किया गया है। पेसा के धारा 4 (घ) के अनुसार "हरेक ग्रामसभा अपनी परम्पराओं, लोक मान्यताओं, सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधनों तथा विवाद निपटारे के परम्परागत माध्यमों के संरक्षण व संवर्द्धन के लिये सक्षम होगी।" यह ग्राम सभा को विकास योजनायें स्वीकृत करने के लिये सशक्त बनाती है। इसके साथ ही सामाजिक क्षेत्रों में उत्तरदायी लोगों और प्रक्रियाओं के नियंत्रण के साथ-साथ इन क्षेत्रों में कार्यक्रमों और नीतियों पर भी नजर रखती है। ग्राम सभा का लघु वनोत्पादों, लघु जल संरचनाओं और लघु खनिज सम्पदा पर भी नियंत्रण है

और संबंधित पंचायत द्वारा अनापत्ति प्रमाणपत्र निर्गत किये जाने के बाद भी ऐसे क्षेत्र में खनन का काम किया जा सकता है।

विशाखापट्टनम् जिले के जनजाति क्षेत्रों में बॉक्साइट खनन पर बढ़ते प्रतिरोध के स्वरों के बावजूद राज्य सरकार परियोजना को लागू करवाने की जिद पर अड़ी हुई है। इसी प्रकार के प्रयासों के अन्तर्गत जिला प्रशासन ने बीसपुरम गाँव के लोगों का उड़ीसा के कोरापुट जिले में दामनजोड़ी गाँव में प्रदर्शन पर्यटन आयोजित करवाया। यहाँ एक सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी 'नाल्को' खनन का काम कर रही है। बीसपुरम ग्राम सभा में लोगों को विशाखापट्टनम् के जिला समाहर्ता द्वारा नोटिस दिया गया कि वे प्रस्तावित खनन गतिविधियों के संबंध में अपनी ओर से अनापत्ति प्रमाणपत्र समर्पित करें। लोगों की हताशा यहाँ के एक बुजुर्ग नायडू की बातों से उजागर होती है "हम अपने खेती और कॉफी के बागानों पर आश्रित हैं। हमारी समस्या यह है कि खनन से उत्पन्न कचरा हमारे खेतों में जमा हो जायेगा और हम साल में एक फसल लेने लायक भी नहीं बचेंगे। बेहतर होता यदि सरकार खनन को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा हमारे कृषि उत्पादों के विपणन हेतु सुविधायें प्रदान करवा पाती।"

2005 में जिंदल दक्षिण पश्चिम ने तय किया था कि छह माह के अन्दर पर्यावरण तथा अन्य विभागों से स्वीकृति हासिल कर लेंगे। नवम्बर 2006 में इनके द्वारा पर्यावरण संबंधित अनापत्ति पर जन सुनवाई विशाखापट्टनम् में आयोजित की गई जिसके कारण अधिकांश प्रभावित आदिवासी इस महत्वपूर्ण बैठक में भाग नहीं ले सके। प्रभावित लोगों को इस जन सुनवाई में भाग लेने से रोके जाने तथा करीब 50 किसानों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने की भी सूचना है।⁶

भूमि अधिग्रहण विवाद के कारण संयंत्र को विशाखापट्टनम् जिले के सुब्बैयाराम से हटा कर विजियानगरम जिले श्रृंगावरपुकोटा में स्थापित करने का निर्णय लिया गया है। इस अध्ययन के छपते समय यह सूचना मिली है कि समता⁷ ने राज्य सरकार तथा आंध्र प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के समक्ष जिंदल द्वारा चलाये जा रहे जन सुनवाई को तब तक स्थगित करने की अपील की है जब तक पर्यावरण प्रभाव द्रुत आकलन से संबंधित महत्वपूर्ण दस्तावेज़ तेलगु में उपलब्ध नहीं हो जाते जिसे पढ़ कर परियोजना से प्रभावित लोग पूरे तथ्यों को समझ सकें,, और जब तक एस कोटा परिशोधक संयंत्र हेतु प्रयुक्त जलस्रोतों

को स्पष्ट नहीं किया जाता है, तथा अन्तिम किन्तु सबसे महत्वपूर्ण, जब तक राज्य सरकार विशाखापट्टनम् जिले के एजेन्सी क्षेत्रों में बॉक्साइट खनन हेतु आवश्यक अनापत्ति और अनुमति प्राप्त नहीं कर लेती है। जिंदल्स के साथ हस्ताक्षरित एमओयू के अनुसार आंध्र प्रदेश खनिज विकास निगम बॉक्साइट खनन का काम जारी रखेगी और जिन्दल एल्यूमिना परिशोधक संयंत्र को आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध करायेगी।

अराकू तथा अनन्तगिरि मंडल में आदिवासियों के संसाधनों, अधिकारों व आजीविका के संरक्षण के लिये लड़ाई का अगला दौर शुरू हो चुका है।

टिप्पणियाँ

1. यह केस अध्ययन इक्वेशन्स् द्वारा माइन्स, मिनरल्स एन्ड पीपुल्स तथा समता, आंध्र प्रदेश से प्राप्त सहायक सामग्रियों के सहयोग से तैयार किया गया है।
2. बोरा सुरक्षित वन क्षेत्र से विस्थापित 250 परिवारों को पुनर्वास हेतु मात्र 436 एकड़ जमीन दी गई थी।
3. समता बनाम आंध्र प्रदेश राज्य निर्णय 11 जुलाई 1997
4. समता निर्णय 1997, हैदराबाद
5. कृषि विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय फंड (IFAD) आंध्र प्रदेश सरकार को आदिवासी क्षेत्रों में विकास हेतु सहयोग प्रदान कर रही है और यह परियोजना क्षेत्र राज्य के उत्तर पूर्वी भाग में स्थित है। यह परियोजना चार पड़ोसी समन्वित आदिवासी विकास एजेन्सियों (ITDAs) में लागू की जा रही है जहाँ पोडू (झूम) खेती करने वाले परिवार काफी अधिक संख्या में हैं। इन क्षेत्रों को प्रायः एजेन्सी क्षेत्र के नाम से जाना जाता है।
6. साउथ एशिया अपडेट, वेबसाइट <http://www.minesandcommunities.org> पर उपलब्ध है।
7. "NGO wants hearing on Jindal unit postponed," The Hindu-Business Line, 1st June 2007.



उड़ीसा: महत्वाकांक्षी योजनाएं और उनसे होनेवाली क्षति

इक्वेशन्स

उड़ीसा की गिनती देश के उन राज्यों में होती है जिन राज्यों में सबसे अधिक मात्रा में खनिज संपदा मौजूद है। पूरे देश में मौजूद लौह अयस्क का करीब 33%, बॉक्साइट का 60%, कोयले का 25%, मैंगनीज़ का 32% और क्रोमाइट का 95% से अधिक हिस्सा यहीं मौजूद है।¹ इतनी बड़ी मात्रा में मौजूद खनिज संपदा के आधार पर प्रदेश सरकार ने अल्यूमीनियम, स्टील, ऊर्जा, शोधन और बंदरगाह क्षेत्रों में की भारी निवेश को आमंत्रित किया है। विश्व स्तर पर स्टील और अल्यूमिनियम की बढ़ती मांग के चलते प्रदेश में पूंजी-निवेश तेजी से हो रहा है। उड़ीसा के स्टील और खनन विभाग के अनुसार प्रदेश में करीब 137156 करोड़ का निवेश हुआ है, जो कि स्टील क्षेत्र में किसी भी दूसरे राज्य में हुए निवेश की तुलना में सबसे अधिक है। हालांकि, इस निवेश का अधिकांश भाग प्रदेश के उन उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी हिस्से में हुआ है जहां आदिवासियों की बहुलता है... और प्रदेश की जनसंख्या में एक-चौथाई हिस्सेदारी आदिवासियों की ही है।



उड़ीसा में खनन और औद्योगीकरण

आज़ादी के बाद जल्दी ही उड़ीसा के आदिवासी इलाकों में भारी मात्रा में औद्योगीकरण की शुरुआत हो गई। टाटा समूह ने जब पड़ोसी राज्य बिहार के जमशेदपुर में देश का पहला स्टील प्लांट लगाया, तब कंपनी की सर्वे टीम को तत्कालीन रियासत मयूरभंज के गोरूमहीसानी, बादामपड़ाह और सुलेपाथ में भारी मात्रा में लौह अयस्क का पता चला, जहां से करीब 56 वर्षों (1911 से 1967) तक इसकी खुदाई होती रही। 1953-54 में सार्वजनिक निकाय के तौर पर सुंदरगढ़ जिले में राउलकेला स्टील प्लांट की स्थापना इसलिए की गई क्योंकि इसके आसपास के इलाके में आयरन, मैंगनीज़, डोलोमाइट और लाइमस्टोन (चूना पत्थर) के अयस्क की प्रचुरता थी ... जो कि लोहे और स्टील के निर्माण के लिए मूलभूत सामग्री हैं। प्रदेश में औद्योगीकरण के विकास के लिए आधारभूत ढांचे को विकसित करने के साथ ही सरकार की ये भी प्राथमिकता रही कि बड़े पैमाने पर धातु-आधारित उद्योग का विकास किया जाए। 1960, 70 और 80 के दशक में देश में चल रही औद्योगीकरण की प्रक्रिया में राज्य के उत्तरी और पूर्वी भागों में हो रहे औद्योगिक विकास मूलतः उड़ीसा माइनिंग कार्पोरेशन जैसे सरकारी प्रतिष्ठानों के जरिए हुए।

1993 में केंद्र सरकार का खनन के क्षेत्र से अपना नियंत्रण हटाना बहुत असरदार रहा। इस नियंत्रण के खत्म होते ही पूरे उड़ीसा में खनन का काम बहुत तेजी से फैला और इस क्षेत्र में बड़े-बड़े घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय निगम आने लगे।

अगर नवंबर 2005 के सरकारी आंकड़ों को देखें तो मात्र ढाई वर्ष के समय (मई 2002 से नवंबर 2005) के बीच उड़ीसा सरकार ने 43 स्टील कंपनियों के साथ सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए।³ मीडिया में आए हालिया रिपोर्ट के मुताबिक उड़ीसा सरकार ने स्टील और खनन की 46 कंपनियों के साथ सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं, जिनमें 42 कंपनियां सीधे तौर पर लौह-अयस्क के खनन के पट्टे से जुड़ी हैं, जबकि बाकी का संबंध

लौह-अयस्क के खनन से नहीं है।⁴ प्रदेश में बड़े और मध्यम दर्जे के स्टील प्लांट में निवेश करने वाली अधिकांश स्टील और माइनिंग कंपनियों ने लौह-उत्खनन के क्षेत्र में भी या तो प्रवेश कर लिया है या फिर इसके लिए उन्होंने आवेदन दे रखा है। साउथ कोरिया की स्टील कंपनी पॉस्को, जिसने पारादीप बंदरगाह के नजदीक 12 मिलीयन टन इस्पात उत्पादन करने के संयंत्र के जरिए देश में अभी तक के सबसे बड़े विदेशी निवेश (52,000 करोड़ रुपए) का प्रस्ताव रखा है, उसने भी क्योन्नर और सुंदरगद जिले में खनन के दो पट्टों के लिए आवेदन कर रखा है। टाटा स्टील 6 मिलियन टन की उत्पादन क्षमता वाले एक प्लांट में 15,400 करोड़ रुपए के निवेश की योजना बना रही है। उड़ीसा में निवेश करने वाले दूसरे बड़े निवेशकों को देखें तो इनमें 12,500 करोड़ रुपए के निवेश के साथ वेदांता ग्रुप, 10,000 करोड़ रुपए के साथ रुझा समूह का एस्सार स्टील और 6,000 करोड़ रुपए के निवेश के साथ मुरुगप्पा समूह का टीआई साइकिल्स शामिल है। इसके अलावा 6 बिलियन डॉलर की एक जापानी कंपनी, मित्सुई एंड कंपनी से भी बात चल रही है, जो 12,500 करोड़ रुपए के निवेश के साथ 5 मिलियन टन के उत्पादन क्षमता वाले प्लांट के लिए विचार कर रही है। आर्सेलर-मि्तल ने भी 10 मिलियन डॉलर की लागत से एक और बहुत बड़े स्टील प्लांट लगाने की घोषणा की है। रूस की कंपनी, मैगनिटोगोर्स्क आयरन एंड स्टील कंपनी (एमएमके) भी 10 मिलियन टन की उत्पादन क्षमता वाले एक प्लांट पर विचार कर रही है। यहां होने वाला निवेश कितने बड़े पैमाने का है इसका इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि फिलहाल प्रदेश सरकार के पास खनन के पट्टे की स्वीकृति के लिए 455 आवेदन पड़े हैं।



आदिवासियों का विस्थापन

उड़ीसा में बड़े पैमाने पर आदिवासियों के विस्थापन की शुरुआत 1953-54 से होती है जब 'आधुनिक भारत के पहले मंदिर' के तौर पर राउलकेला में स्टील प्लांट की स्थापना की गई।⁵ उड़ीसा राज्य के गजट के अनुसार इस प्लांट की स्थापना के लिए स्टील

अथॉरिटी ऑफ इंडिया (SAIL) ने सुंदरगढ़ जिले के 33 गांवों को अधिगृहीत किया। इस अधिग्रहण के चलते इलाके के 4,251 आदिवासी परिवारों को अपनी रिहायश छोड़नी पड़ी, लेकिन इन तमाम वर्षों में केंद्र और राज्य सरकारें उनका समुचित पुनर्वास करने में असफल रही।⁶ पिछले पचास सालों में उड़ीसा में तीस लाख से ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं, जिनमें से अधिकांश आदिवासी और दलित हैं।⁷ बड़े पैमाने पर होने वाले इस विस्थापन में मुख्य भूमिका खनन और खनिज पर आधारित उद्योगों और साथ ही बड़े बांधों के निर्माण की रही है। खनन को हमेशा विकास का पर्याय समझा जाता रहा इसलिए हमेशा बड़े स्तर पर होनेवाले विस्थापन को उड़ीसा सरकार और औद्योगिक घरानों ने नजरअंदाज किया, लेकिन इस पर पुनर्विचार की जरूरत है। खनन एक ऐसा उद्योग है जो बहुत लंबे समय तक एक ही जगह पर नहीं चल सकता, क्योंकि इसमें खनिज और धातु को धरती के अंदर से खोदकर निकाला जाता है और एक बार ये स्रोत खत्म हो गया तो हम उसे वहां दोबारा नहीं पा सकते। खनन का काम कहीं भी बहुत लंबे समय तक नहीं चल पाता, इसलिए इसके आधार पर पूरे इलाके के विकास की योजना नहीं बनाई जा सकती। उदाहरण के तौर पर राज्य में विभिन्न कंपनियों को खनन के पट्टे आमतौर पर 20 से 25 साल के लिए दिए जाते हैं, लेकिन कुछ मामलों में, (जैसे पॉस्को को दिया गया पट्टा) ये तीस साल तक का होता है। इसलिए हमारा सवाल है कि "जब पट्टे की अवधि खत्म हो जाएगी और कंपनियां इलाके से चली जाएंगी, तो वहां के उन स्थानीय निवासियों का क्या होगा जो खनन उद्योग पर निर्भर हैं?" जिस मात्रा में और जिस तेजी से कंपनियां खनिजों को निकाल रही हैं, उससे अनुमान है कि अगले 25 वर्षों में प्रदेश में मौजूद क्रोमाइट की कुल मात्रा का 41%, लौह अयस्क का 26% और मैंगनीज का 20% खपत कर लिया जाएगा।⁸ खनन के कारण जब आदिवासी अपने पुश्तैनी जमीन और आजीविका के परंपरागत साधनों से हटते हैं तो वे अपने भरण-पोषण के लिए खनन उद्योग पर ही निर्भर हो जाते हैं, लेकिन जब पट्टा खत्म हो जाएगा और कंपनियां इलाके से चली जाएंगी तो स्थानीय लोगों के पास न तो खनन क्षेत्र में ही रोजगार रहेगा और न ही उनके पास आजीविका का कोई परंपरागत साधन बचेगा।

विस्थापन के चलते अपनी पैतृक जमीन से अलग होना तो औद्योगीकरण का प्रत्यक्ष परिणाम है लेकिन इसके अलावा कई अप्रत्यक्ष परिणाम हैं जो काफी सूक्ष्म हैं और जो

साफतौर पर नहीं दिखते। जमीन के बदले आदिवासियों को पैसा दे देना हमेशा से एक आसान उपाय रहा है। बफलीमहल इलाका, जहां बॉक्साइट का खनन हो रहा है, वहां की एक महिला ने कहा:

"कोडीकमली और छमामली के पहाड़ी इलाकों में हम लोग हर साल फूल पूजा करते हैं। दीपावली के दौरान हम सब वहां जाते हैं और उन पहाड़ों के बीच 'सोलह सिंगो सत्रह लाल' मनाते हैं। मैं अपने बचपन से ही इस पूजा को देख रही हूं, लेकिन अब वे वहां पहाड़ खोदकर बॉक्साइट निकालेंगे और हमें अब वहां फिर से कभी पूजा नहीं करने देंगे।"

सरकार और औद्योगिक घरानों ने हमेशा आदिवासियों की उस सांस्कृतिक विरासत को दबाने की कोशिश की है जिसके जरिए वे बहुत नजदीकी तौर पर प्रकृति और अपने आसपास के परिवेश से जुड़े हैं। प्रकृति और परिवेश से ये जुड़ाव उनके अस्तित्व की गहरी पहचान है। उन करोड़ों आदिवासियों को आखिर मुआवजे के तौर पर मिलता क्या है जिन्हें सांस्कृतिक तौर पर उनकी जड़ों से काट दिया जाता है?

अगर आर्थिक मापदंडों की ही बात करें तो खनन से होने वाला फायदा उस कीमत की तुलना में बहुत कम है जो आदिवासियों को चुकानी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर कालाहांडी ज़िले के लंजीगढ़ में वेदांता एल्यूमीनियम रिफाइनरी ने इलाके के हर परिवार के एक सदस्य को नौकरी देने का वादा किया था। ठीक ऐसा ही वादा 2000 एकड़ में फैले कलिंगनगर इंडस्ट्रियल प्रोजेक्ट लगाने के समय टाटा स्टील ने भी किया था जब उसने मुख्यतौर से आदिवासियों से जमीन का अधिग्रहण किया था। हालांकि उन आदिवासियों को किस तरह का रोजगार दिया जाएगा, ये न तो उन कंपनियों ने और न ही सरकार ने कभी स्पष्ट किया। पिछले कई सालों में खनन के क्षेत्र में रोजगार के अवसर नहीं बढ़े हैं। आनेवाले दिनों में खनन का काम जिस तरीके से उन्नत तकनीकी पर आधारित होता जा रहा है, वैसे में तकनीकी रूप से कम प्रशिक्षित लोगों के लिए रोजगार के अवसर की संभावना लगातार कम होती जा रही है।⁹

उड़ीसा सरकार दावा करती है कि जो लोग खनन के चलते परिवार विस्थापन का शिकार हुए हैं, उनके मुआवजे और पुनर्वास की उचित व्यवस्था की गई है। लेकिन अगर काशीपुर,

लंजीगढ़, कलिंगनगर और सुंदरगढ़ के लोगों की दास्तान सुनें तो पता चलता है कि उनके साथ कितना अन्याय हुआ है। कलिंगनगर की एक महिला बताती है, "अपनी एक एकड़ जमीन के बदले हमें 37,000 रुपए मिले जबकि सरकार ने इस जमीन को 350,000 लाख रुपए प्रति एकड़ के हिसाब से टाटा के हाथों बेचा। इस मामले में जब हमने उचित मुआवज़े की मांग की तो सरकार हिंसक हो उठी और हमारे कई लोगों को मार डाला।"



पर्यावरण से समझौता

इस सारी प्रक्रिया का पर्यावरण पर बहुत नकारात्मक असर पड़ा है। खनन की कई कंपनियों को पट्टे के तौर पर वन की भूमि दी गई है। वेदांता को अपने एल्यूमीना रिफाइनरी और खदान के तौर पर नियमगिरी पहाड़ के बीच क्रमशः 723.34 और 723.32 हेक्टेयर जमीन की जरूरत थी। एल्यूमीनियम रिफाइनरी के लिए सरकार ने 58.94 हेक्टेयर वनभूमि को स्वीकृति भी दे दी। लेकिन नियमगिरी पहाड़ के बीच खुदाई के पट्टे के लिए फिलहाल स्वीकृति नहीं मिली है जहां प्रस्तावित भूमि की 93% भूमि वनभूमि है। वनभूमि पर अतिक्रमण ने न सिर्फ इलाके के पारिस्थितिकी को बिगाड़ दिया है, बल्कि बड़ी संख्या में रहने वाले यहां के उन आदिवासियों की आजीविका पर भी असर डाला है जो जंगल पर निर्भर हैं। नियमगिरी पहाड़ों के मूलनिवासी डोंगरिया कोंड अपनी आजीविका के लिए जंगलों में मिलने वाले फल, कंद, चारे और दूसरी सामग्रियों पर निर्भर रहते हैं। अगर वेदांता को इन पहाड़ों में खनन का पट्टा मिल जाता है तो तीस गाँवों के करीब 6,000 लोग यहां से विस्थापित हो जाएंगे।

खनन के चलते प्रदूषण, पर्यावरण को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाता है। प्रदेश में सबसे अधिक जल और वायु प्रदूषण खनन, खनिज से जुड़े उद्योग, स्टील संयंत्र, स्मेल्टर संयंत्र, प्रसंस्करण/शोधन इकाइयों और स्पाँज आयरन इकाइयों (एसआईयू) से हो रहा है। वर्ष 2000-2005 के दौरान भारत में स्पाँज आयरन के उद्योग का तेजी से विकास हुआ और

भारत दुनिया का सबसे बड़ा स्पाँज आयरन उत्पादन करने वाला देश बन गया। एसआईयू (SIU) एक बेहद प्रदूषण फैलाने वाला उद्योग है। प्रतिदिन 100 टन स्पाँज आयरन उत्पादन करने वाले एक प्लांट से 24 टन प्रदूषणकारी तत्व निकलता है, अर्थात्, कुल उत्पादन की एक चौथाई मात्रा में प्लांट से प्रदूषणकारी तत्व निकलता है। उन उत्पादन इकाइयों में भी, जहां प्रदूषण नियंत्रण करने के आधुनिकतम उपाय अपनाए जाते हैं, करीब 200 किलोग्राम प्रदूषणकारी तत्व निकलता है। पांचवीं अनुसूची में शामिल प्रदेश के तीन जिलों सुंदरगढ़, मयूरभंज और कर्घोझर में स्पाँज आयरन की करीब 130 इकाइयां काम कर रही हैं।¹⁰ एसआईयू यूनिट से फैलने वाले प्रदूषण के चलते लोगों के दबाव को देखते हुए उड़ीसा सरकार ने अब नई इकाइयों को स्वीकृति नहीं देने का फैसला किया है। हांलाकि जो इकाइयां मौजूद हैं वे अभी भी काम कर रही हैं और उनसे फैलने वाले जल और वायु प्रदूषण से कई आदिवासी इलाकों में लोगों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ रहा है।

सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी, नेशनल एल्यूमीनियम कंपनी लिमिटेड (NALCO) का उड़ीसा के दम्नाजोड़ी, कोरापुट जिले में बॉक्साइट खनन और शोधन का काम है और साथ ही अंगुल जिले में स्मेल्टर की इकाई है। राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड¹¹ के लिए किए गए एक अध्ययन के मुताबिक अंगुल में NALCO के एल्यूमीनियम प्लांट से जो अवशिष्ट बहकर निकलता है, उससे पीने के पानी के स्रोतों, खासतौर पर कुंओं और तालाबों में फ्लोराइड प्रदूषण हो रहा है जबकि दम्नाजोड़ी में स्थित कैपटिव पावर प्लांट से निकलने वाले प्रदूषणकारी तत्व फ्लाई ऐश में क्रोमियम, लेड और आयरन जैसे भारी धातु मौजूद होते हैं जो पानी के स्रोतों में जाकर जम जाते हैं। नादिरा नदी फ्लाई ऐश के इस जमाव से सबसे ज्यादा प्रदूषित हुई है।

इसके अलावा इस्टर्न घाट में खनन से सबसे बड़ा असर इलाके के जल संसाधनों पर पड़ा है। बॉक्साइट में बहुत अधिक छिद्रता होती है और वो काफी मात्रा में पानी को अपने में सोखकर रख लेता है। इस्टर्न घाट में बॉक्साइट की परतें प्राकृतिक जलाशयों के तौर पर काम करती हैं और इसकी पहाड़ों से उड़ीसा और आंध्रप्रदेश में कई स्थायी धाराएं निकलती हैं। कालाहांडी जिले का नियमगिरी हो या फिर रायगढ़ का बाफलीमहल पहाड़, दक्षिण उड़ीसा के लाखों आदिवासी और गैर-आदिवासी इन पर निर्भर रहते हैं। अपने उद्योगों को

चलाने के लिए कंपनियां इन पहाड़ों से भारी मात्रा में पानी निकालती हैं, जबकि स्थानीय लोग जीवन की इस मूलभूत जरूरत से भी वंचित हैं।

उड़ीसा के कई बड़े-बड़े बांधों और जलाशयों का एल्यूमीनियम उद्योग से गहरा संबंध है। ऊपरी इंद्रवती परियोजना में सात बांध शामिल हैं और उसके कुछ हिस्से कालाहांडी जिले के कसिंगा के नजदीक तेल नदी से भी जुड़ते हैं। वेदांता ने अपने लांजीगढ़ शोधन संयंत्र तक पानी लाने के लिए कसिंगा के नजदीक तेल नदी से 50 किलोमीटर पाइप लाइन का निर्माण किया है। कसिंगा में 500 एचपी के 10 मोटरों को नदी से पानी खींचने के लिए लगाया गया है। इतनी ज्यादा मात्रा में लगातार नदी से पानी निकालने से इलाके में भूजल का स्तर गिर गया है।

पानी के लगातार हो रहे संदोहन के साथ ही खनन और उद्योगों से हो रहे प्रदूषण पर नियंत्रण लगाने की बजाय प्रदेश सरकार पर्यावरण की रक्षा के लिए बनाए गए अपने ही दिशा-निर्देशों को कमजोर कर रही है। उदाहरण के तौर पर 1992 में उड़ीसा सरकार ने पेड़ काटने पर पाबंदी लगा दी थी, लेकिन 2005 में सरकार ने ये पाबंदी हटा दी।¹² भारत सरकार का पर्यावरण और वन मंत्रालय (MoEF) भी इसमें दोषी है। वेदांता के मामले में MoEF ने सितंबर 2004 में नियमगिरी के संरक्षित पहाड़ों के बीच एल्यूमिना रिफाइनरी प्रोजेक्ट की अनुमति इस बात की अनदेखी करते हुए दे दी कि ये रिफाइनरी प्रोजेक्ट बॉक्साइट उत्खनन के प्रोजेक्ट का अभिन्न अंग है।

वर्ष 2006 की उड़ीसा के पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति पर अगर नज़र डालें तो ये साफ है कि औद्योगीकरण और विस्थापन का लोगों के जीवन और संस्कृति पर जो स्पष्ट असर पड़ता है, उसके बारे में पुनर्वास की व्यवस्था में कहीं कोई गुंजाईश नहीं होती है। नीति-निर्धारकों के लिए नगद राशि और रोजगार के वादे ही बतौर मुआवजा और पुनर्वास काफी हैं। उनके लिए इस बात का कोई मतलब नहीं कि वन, जल और इलाके के समूचे पर्यावरण और परिवेश की जो अपूरणीय क्षति होती है, उसके मुआवजे और उसकी भरपाई की कोई व्यवस्था की जाए।



किसको मिला लाभ?

इस अनियंत्रित विकास की कीमत यहां के आदिवासी चुका रहे हैं। प्रदेश का खनिज संपन्न अधिकांश इलाका पांचवीं अनुसूचि के क्षेत्र¹³ में आता है और इसी क्षेत्र में प्रदेश में मौजूद कुल आदिवासियों की दो-तिहाई से अधिक आबादी रहती है। पीईएसए अधिनियम की धारा 4 (h)¹⁴ के मुताबिक अनुसूचित क्षेत्र में औद्योगिक योजनाओं को तभी अनुमति मिल सकती है जब ग्राम सभा या पंचायतों से जमीन अधिग्रहण के पहले उचित ढंग से संपर्क किया जाए। पीईएसए अधिनियम ग्राम सभा और गांव की परंपरागत संस्थाओं को ये अधिकार देता है कि अनुसूचित क्षेत्र के जमीन के अधिग्रहण को रोके और साथ ही ये भी कि अगर गैर कानूनी तरीके से अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की जमीन ले ली गई हो तो उसे जमीन वापस दिलाने के लिए उचित कार्रवाई करे।¹⁵

लेकिन उड़ीसा ग्राम पंचायत अधिनियम, 1997 के जरिए ग्राम सभाओं को दी गई जिम्मेदारी और शक्तियों को कम कर दिया गया। पीईएसए अधिनियम से अलग, उड़ीसा अधिनियम में कुछ शर्तों को जोड़कर इसे सीमित कर दिया गया "जैसा कि उल्लेख कर दिया जाएगा, ग्राम सभा अपनी शक्तियों और अपने कार्यों का उसी ढंग से इस्तेमाल करेंगी"। इसके अलावा उड़ीसा अधिनियम में जिलाधिकारी या उसकी ओर से अधिकृत किए गए किसी अधिकारी को ये शक्ति दे दी गई कि वह ग्राम पंचायत और उसके प्रतिनिधि के काम के साथ ही अभिलेखों और दस्तावेजों की जांच कर सके और पंचायत की कार्यवाही को रोक सके। इस तरह ग्राम सभा को पूरी तरह से जिला प्रशासन के अधीन कर दिया गया।¹⁶ जिलाधिकारियों के एक दो दिवसीय सम्मेलन में राज्य सरकार ने उनसे कहा कि "उद्योगों की विभिन्न समस्याओं को दूर करने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँ और तीव्र औद्योगीकरण के लिए उचित वातावरण बनाएँ"।¹⁷

हिंदुस्तान एल्यूमीनियम कार्पोरेशन (आदित्य बिड़ला समूह) और एएलसीएएन (कनाडा) का संयुक्त उपक्रम¹⁸ उत्कल एल्युमिना इंटरनेशनल लिमिटेड (यूएआईएल) के मामले से इसे समझा जा सकता है। रायगढ़ जिले में स्थित एल्यूमीनियम उत्खनन और संशोधन की जिस परियोजना का जिक्र किया जा रहा है वो शत-प्रतिशत निर्यात के लिए बनाया गया है। इस परियोजना के लिए बॉक्साइट को बाफलीमहल के पहाड़ से निकाला जाता है जबकि इसके शोधन का काम काशीपुर प्रखंड के नजदीक कुचिपाडर गांव में होता है। इलाके के आदिवासी पिछले 15 वर्षों से विस्थापन और यूएआईएल के द्वारा जबरन अपनी जमीन के छीने जाने का विरोध कर रहे हैं। पांच पंचायतों के ग्राम सभाओं ने इस प्रखंड में यूएआईएल द्वारा किए जा रहे खनन और औद्योगिक गतिविधियों के खिलाफ प्रस्ताव पारित किया है। काशीपुर के एल्युमिना संशोधन संयंत्र के विस्तार के लिए तिकरी में ईआईए का आयोजन किया गया। तिकरी में पुलिस मुख्यालय है लेकिन न तो वो संयंत्र के ही पास स्थित है और न ही प्रभावित गांवों के समीप। लेकिन कंपनी के निर्देश पर अमल करते हुए अक्टूबर 2006 में हुए सार्वजनिक सुनवाई की प्रक्रिया में पुलिस ने लोगों को शामिल नहीं होने दिया।¹⁹

दिसंबर 2000 में पहली बार सरकार की ओर से हिंसा की खबर तब आई जब काशीपुर के कुचिपाडा गांव में पुलिस फायरिंग में तीन लोग मारे गए। ये लोग यूएआईएल के विरोध की योजना बनाने के लिए मैकंज में इकट्ठा हुए थे। वर्ष 2004 में यहां हिंसा काफी बढ़ गई और आज भी जारी है। 15 जून 2005 की शाम पुलिसबल ने काशीपुर के नजदीक गुगुपुत गांव में ग्रामीणों पर जमकर लाठियां बरसाई और आँसू गैस का इस्तेमाल किया। ग्यारह ग्रामीणों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। कुचिपाडर गांव के जोड़ी साहु बातते हैं :

"मैं घर के लिए कुछ सामान खरीदने तिकरी जा रहा था। पुलिस ने मुझे देखा और फिर थाने ले जाकर मुझसे उलटे-पुलटे सवाल किए। पुलिस अत्याचार के तमाम किस्से हमें सुनने को मिलते हैं। हम लोग वकील को या प्रभावशाली लोगों को नहीं जानते हैं। इसके चलते हमारी समस्याएं और बढ़ जाती है"।

नियमगिरी में वेदांता के प्रस्तावित खनन काम का विरोध कर रहे शुक्ला मांझी को कंपनी के एक वाहन ने कुचल दिया जिससे उनकी मौत हो गई। जनवरी 2006 में कलिंगनगर

में 13 आदिवासी पुलिस की गोली का शिकार हो गए जब वे अपनी अधिग्रहीत जमीन के बदले सरकार की ओर से मिले बहुत ही मामूली मुआवजे का विरोधा कर रहे थे।



विकासोन्मुख उदारीकरण - खनन कंपनियों का जबर्दस्त स्वागत

भारत सरकार ने 1994 की नई खनन नीति में 13 खनिजों के अन्वेषण और उनके उपयोग के लिए निजी निवेश (घरेलू और विदेशी दोनों) को अनुमति दे दी। इस क्षेत्र में निजी निवेश और आधुनिकतम तकनीकी तेजी से आ सके और साथ ही निजी कंपनियों को अनुमति मिल सके, इस उद्देश्य से 1999 में खनिज (नियंत्रण और विकास) अधिनियम, 1957 का संशोधन किया गया। पहले 13 खनिजों के लिए केंद्र सरकार की अनुमति की जरूरत थी जबकि 1999 में ये संख्या घटकर मात्र 10 रह गई। हालांकि उत्खनन के पट्टे के नवीनीकरण के लिए केंद्र सरकार की अनुमति की जरूरत नहीं रह गई थी। जनवरी 1997 में खनन क्षेत्र में एफडीआई की नीति को और भी उदारीकृत कर दिया गया। इसके तहत उत्खनन के जिन निवेशों में विदेशी पूंजी की भागीदारी 50% और उत्खनन से जुड़े दूसरे औद्योगिक निवेशों में ये भागीदारी 74% तक की थी, उनके लिए "स्वतः स्वीकृति" की नीति अपनाई गई। वर्ष 2000 में अन्वेषण और उत्खनन दोनों ही से जुड़ी उन सभी परियोजनाओं के लिए स्वतः स्वीकृति की नीति अपनाई गई जिसमें विदेशी पूंजी की भागीदारी 100% तक की थी। जुलाई 2005 तक भारत के विदेशी निवेश विकास बोर्ड (एफआईपीबी) ने उत्खनन से जुड़ी 73 परियोजनाओं को मंजूरी दे दी थी। उन राज्यों में उड़ीसा सबसे ऊपर था जिन राज्यों ने केंद्र सरकार के सुझाए गए रास्ते पर चलते हुए अपने यहां पूंजी निवेश को आमंत्रित करने के लिए सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर करने शुरू किए।

सरकार ने खनन और औद्योगिक नीतियों को बहुत अधिक महत्वता दी और खुद उन कानूनों का उल्लंघन किया जिनमें आदिवासियों के अधिकार और पर्यावरण के संरक्षण और नियंत्रण की बात कही गई थी। 2004 में बनाई गई राज्य सरकार की औद्योगिक नीति

पूंजीनिवेश की प्रक्रिया को सरलीकृत करने, प्रदेश में निजी कंपनियों को निवेश के लिए बढ़ावा देने, विदेशी कंपनियों को विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) की स्थापना के लिए आकर्षित करने और प्रदेश में विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा देने के उद्देश्य पर केंद्रित थी। हालांकि इसका जिक्र कहीं नहीं किया गया कि ये नीतियां लोगों को और खासकर आदिवासियों को कैसे फायदा पहुंचाएंगी।

नियमगिरी और लांजीगढ़ में काम करने वाले एक कार्यकर्ता ने कहा:

"ग्राम सभा और पीइएसए के प्रावधानों का अब हमारे इलाके में कोई अर्थ नहीं बचा है। अब ग्राम सभा के फैसले आमलोग नहीं बल्कि जिलाधिकारी और पुलिसबल की ओर से तय किए जाते हैं। ये कानून अब कागजों पर ही अच्छे लगते हैं और हमारे मन में इनके लिए इज्जत भी है। लेकिन क्या सरकार भी इन्हें मानती है?"

सारी क्रूरताओं के बावजूद उड़ीसा के आदिवासी अपनी लड़ाई छोड़ने वाले नहीं हैं और ये निजी कंपनियों के गले नहीं उतर रहा क्योंकि जब उन्होंने उड़ीसा सरकार के साथ करार किया था तो इतने कड़े प्रतिरोध की उन्हें कतई आशंका नहीं थी। और इन सारी बातों का निचोड़ कुचिपादर के एक व्यक्ति के कथन में परिलक्षित होता है- "हमलोग अपनी जमीन, अपनी धरती मां को छोड़कर चले जाने से बेहतर यहां मर जाना पसंद करेंगे।"

टिप्पणियाँ

1. उड़ीसा माइनिंग कार्पोरेशन लिमिटेड
2. जिन क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है वे हैं उत्तरी इलाके (क्योंझर, मयूरभंज, सुंदरगढ़ जिला), पूर्वी, दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी भाग (कालाहांडी, कोरापुट, रायगढ़)
3. डिपार्टमेंट ऑफ स्टील एंड माइन्स, गवर्नमेंट ऑफ उड़ीसा, (<http://orissagov.nic.in/steel&mines/mous.htm>)
4. हिंदू ऑनलाइन, 30 मार्च 2007
5. उड़ीसा स्टेट गज़ेटियर, 1991
6. जोसेफ मैरियानस कुजूर, 'डेवलेपमेंट नॉट फॉर ट्राइब्स', पॉयोनियर, 18 जून 2005

7. सरोज मोहंती, 2005
8. देबरंजन सारंगी, 2006
9. इंटरव्यू रवि रेवाप्रगाडा, कन्वीनर, माइन्स, मिनरल्स एंड पीपुल, 2006
10. "ए रिपोर्ट ऑन स्पाँज आयरन इंडस्ट्री": स्टडी डन बाई मानशी असेर एंड रिफत मुमताज, एनसीएएस, पुणे
11. "वाटर पॉल्यूशन इन उड़ीसा", स्टडी डन बाई डॉ एस. के. साहु, डी. सारंगी एंड के.सी. प्रधान, जनवरी 2006
12. रुकसान बोस, "द ऐक्स इफेक्ट" डाउन टु अर्थ, 2005
13. उड़ीसा में पांचवी अनुसूची में शामिल इलाकों में - मयूरभंज, सुंदरगढ़, कोरापुट, रायगढ़, नबरंगपुर और मलकानगिरी जिले का पूरा इलाका, संभलपुर जिले का कुचिंदा तहसील, क्योझर जिले का क्योझर, तेलकोइ, चम्पुआ और बारबिल तहसील, खोंडामल जिले का खोंडामल, बल्लीगुडा और जी. उदयगिरी तहसील, गंजम जिले का आर. उदयगिरी तहसील, परलेखेमुंडी सब-डिवीजन के परलेखेमुंडी तहसील का गुम्मा और रायगढ़ प्रखंड और घुमसर सब-डिवीजन का सुरुदा तहसील, कालाहांडी जिले का थुआमुल रामपुर और लांजीगढ़ प्रखंड और बालासोर जिले का नीलागिरी प्रखंड।
14. 24 दिसंबर 1996 को लागू पीईएसए एक केंद्रीय कानून है। ये आदिवासी/बहुल इलाके की ग्राम सभाओं को वहां के लिए निर्णय लेने और योजनाएं बनाने का अधिकार प्रदान करता है।
15. पेसा, सेक्शन एम, क्लॉज iii
16. http://agragamee.org/newinitiatives_pesa.htm
17. 24 नवंबर 2004 को जारी उड़ीसा सरकार की प्रेस विज्ञप्ति, <http://orissagov.nic.in/news/archive/newsarchive.htm>
18. 1993 में मूलरूप से जिन कंपनियों ने मिलकर संयुक्त उपक्रम की शुरुआत की उनमें एलसीएएन (कनाडा), टाटा (भारत), नॉर्स्क हाइड्रो (नॉर्वे) और हिंडाल्को (भारत) शामिल थीं। लेकिन बाद में जनविरोध को देखते हुए राजनीतिक दबाव के तहत टाटा और नॉर्स्क हाइड्रो पीछे हट गए।
19. डाउन टु अर्थ, सितंबर 2006



औद्योगीकरण बनाम् विकास

सरोज मोहंती

"पूंजीवाद का विकास तभी संभव है, जब गैर-पूंजीवाद अथवा अग्र-पूंजीवाद क्षेत्र अथवा समाज बाह्य बाजार के समान पूर्ववत् रहे।" रोजा लक्सेमबर्ग।

इसके पूर्व हम किसी औद्योगीकरण के संबंध में चर्चा प्रारंभ करें, यह महत्वपूर्ण है कि हम औद्योगीकरण के बारे में किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह को, अपने जेहन से निकाल दें।

तीव्र औद्योगीकरण से विकास की गति आती है। अमेरिका, ब्रिटेन, और यूरोपीय देश की अर्थव्यवस्था में विकास दर के तेजी होने के कारण ये विकसित देशों के श्रेणी में आते हैं। अगर किसी भी देश में विपूल खनिज भंडार है तो वहां की विकास की दर तीव्र होने की संभावना ज्यादा होती है।

हम सभी जानते हैं कि आधुनिक युग के प्रारंभ से ही अनेक प्रकार की खोज एवं अन्वेषण के कार्य हुए हैं, इनमें जेम्स मिल के द्वारा भाप के इंजन का आविष्कार प्रमुख है। लेकिन विकास से संबंधित सभी भ्रांतियों के बारे में विस्तृत चर्चा कार्ल मार्क्स की कालजयी रचना 'दास कैपिटल' में की गयी है। पश्चिमी देशों में विकास की अवधारणा में औद्योगीकरण

का योगदान अत्यंत कम है, साथ ही यहां के देशों में विकास की महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में तीसरी दुनिया के सस्ते श्रम, सस्ती कच्ची धातुएं, बाजार, परंपरागत उद्योग पर उपनिवेशिक शोषण आदि का सर्वाधिक योगदान रहा है। जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपने पैर पसारना शुरू किया, उन दिनों भी भारतीय बाजार संपूर्ण यूरोप के विदेश व्यापार के समकक्ष था (लगभग 22 फीसदी के बराबर)। भारतीय और चीनी कपड़ों के आयात और व्यापार पर, 1701-1702 के दौरान, ब्रिटेन में पूर्णरूप से प्रतिबंध लगा हुआ था। यह भी सत्य है कि औपनिवेशिक देशों के द्वारा अपनायी गई तकनीक विकास वहां के विकास में अग्रणी भूमिका निभायी। इस तकनीक का प्रयोग इन्हीं देशों ने प्रकृति और मानव के शोषण के खिलाफ किया। जिसकी वजह से स्थानीय अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा और यह व्यवस्था तहस-नहस हो गयी।

औद्योगिक क्रांति के कारण, इंग्लैंड के श्रमिकों और किसानों ने, अपने ऊपर हो रहे अन्याय और शोषण के खिलाफ बगावत की, लेकिन उनके सभी प्रकार के विद्रोह को निर्ममतापूर्वक दबा दिया गया। उद्योगी और इंग्लैंड की सरकार उनके विद्रोह को दबाने में इसलिए सफल हुई क्योंकि वे दूसरे देशों में अपने औपनिवेशिक क्षेत्र में सस्ते श्रमिक भेजकर, अपनी जड़ें जमा चुकी थी। प्रारंभिक स्तर से ही उनके क्रूरतम कार्यवाही और फिर उपनिवेशिक क्षेत्र में रोजगार सृजन और शोषण, उनकी सफलता के प्रमुख कारण माने गए। विकास की इस अवधारणा ने एक नए निराशपूर्ण विश्व का निर्माण किया है; जिसमें विकसित देश और अधिक अमीर तथा विकासशील देश और अधिक गरीब होते चले जा रहे हैं। दुर्भाग्यवश, शिक्षित लोग संपूर्ण रूप से इस भ्रामक सत्य के प्रति भी पूर्वाग्रह से नहीं बच पाए और हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी इसके लिए दोषी है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर शिक्षा के सिलेबस में, भ्रामक सत्य के प्रति पूर्वाग्रह साफ तौर पर झलकती है और इसे ही सत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी संदर्भ में, घरेलू और बहुराष्ट्रीय कंपनियां दोनों ही, अपनी नीतियों पर चलते हुए, औद्योगीकरण और विकास के संबंध में उसी प्रकार के विचार को बढ़ावा दे रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर, एक इशतहार में इस बात को प्रचारित किया गया है कि काशीपुर और इसके आस-पास के इलाकों में उत्तकल एल्युमिना के विकास होने के साथ ही, यह पिछड़ा क्षेत्र भी अमेरिका और ब्रिटेन की तरह विकसित हो जायगा। रायगढ़ के जिला

प्रशासन ने इन्हीं बातों को मीटिंग, व्याख्यानो और विडियो डॉक्यूमेंट्री के द्वारा बड़े जोर-शोर से प्रचारित किया। वास्तविकता यह है कि ना ही कंपनियों और ना ही जिला प्रशासन ने भी स्थानीय लोगों के द्वारा उठाए गए मुद्दों के बारे में किसी प्रकार का स्पष्टीकरण देने की जरूरत समझी। स्थानीय लोगों ने सवाल उठाए थे कि क्यों नहीं इंद्रावती, सूनावेदा, और दमनजोड़ी के लोग अमीर बनते जा रहे हैं? दमनजोड़ी परियोजना के प्रारंभ होने से पहले, 100 में से 60 लोग जनजातीय समाज से आते थे, लेकिन वर्तमान समय में यह संख्या 100 में महज 12 तक पहुंच चुकी है। उन लोगों की जमीन, नदी और प्राकृतिक संसाधन तक को छीना जा चुका है। अब, उन लोगों का कहना है कि 'अगर हमारी फरियाद की सुनवाई नहीं होती है तो, हम बांध को नष्ट कर देंगे'। हमारे साथ ही ऐसा क्यों होता है? झारसुगुड़ा कॉलेज के एक सेमिनार में विशेषज्ञों ने खुलासा किया कि अधिकांश लोगों के जान की कीमत पर सिर्फ मुट्ठी भर लोगों का फायदा निहीत होता है और इसे ही बढ़ावा दिया जा रहा है। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी चीजों में कोई बदलाव नहीं आया है। लाइकेरा और किरिमिया ब्लॉक में उद्योग धंधे बंद होने से आज हजारों लोग बेरोजगार हो चुके हैं। आज यह स्पष्ट हो चुका है कि झारसुगुड़ा और संबलपुर जिलों में कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे स्पांज व लौह अयस्कों के उद्योग घराने, भूषण स्टील, ताप संयंत्र परियोजनाएं, वेदांत परियोजना और आदित्य परियोजना आदि से किस प्रकार की चीजें सामने निकल कर आने वाली हैं। इन सभी परियोजनाओं से कुछ लोग अमीर हो गए हैं तथा बाकी लोग गर्त में चले गए हैं।



प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता और स्थानीय विकास

अधिकांश लोग गर्व से कहते हैं कि उड़ीसा में इतनी विशाल खनिज संपदा, जंगल और जल संसाधनों की प्रचुरता है कि यह राज्य गरीब हो ही नहीं सकता। जो लोग अलग कोशल राज्य के पक्ष में हैं उनका कहना है कि प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के कारण पश्चिमी उड़ीसा धनी है और कुछ लोग यहां के संसाधनों का उपयोग कर धनी बन सकते हैं। लेकिन

इतिहास बताएगा कि जो लोग यहां संसाधनों का उपयोग कर धनी बनें हैं, उनकी गिनती आज भी पिछड़ों में होती है। बात शुरूआत से करे तो अमेरिका के रेड इंडियन, नाइजीरिया के ओगोनिंस, अफ्रीका की जनजातियाँ, लांजीगढ़ और रायगढ़ आगे भी पिछड़े रहेंगे। जाने माने समाजवादी चिंतक और आलोचक किशन पटनायक का मानना था कि "इराकी बच्चों पर दैवीय अभिशाप है, क्योंकि वहां तेल का विपुल भंडार है, जो व्यक्ति प्राकृतिक संसाधनों के कारण धनी बनें हैं, वे कंगाल अथवा गुलाम बन जाते हैं"। इन इलाकों में जब पुंजीवादी और औपनिवेशिक कॉलोनियों का निर्माण होना प्रारंभ हो जाय, तो उस स्थिति में यहां की प्राकृतिक संसाधनों का संदोहन होना तय है। इन वस्तुस्थितियों को समझने के लिए हमें अफ्रीका जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे सामने झारखंड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के सैंकड़ों उदाहरण सामने हैं।



हमारी व्यवस्था और विकास किस प्रकार की हो?

हम ऐसी व्यवस्था चाहते हैं जो प्रत्येक मनुष्य, धर्म, जाती तथा क्षेत्र विशेष को अपना अनिवार्य हिस्सा समझे और जहाँ स्वस्थ जीवन और शिक्षा के समान अवसर मिलें। इन सभी की प्राप्ति विकास का प्रथम पैमाना हो सकता है और हमारे सामने यह प्रश्न भी उठने चाहिए कि हम किस प्रकार से जमीन, जंगल, जल और खनिज पदार्थों का उपयोग करें और इसमें कंपनियों की भूमिका किस प्रकार की होनी चाहिए? अगर वास्तविकता में सभी प्रकार की योजनाएं, परियोजनाएं, और औद्योगीकरण में उन तमाम प्रकार के प्रश्नों पर सोच विचार कर फिर विकास के पैमाने तय किए जाए, तभी सही मायनों में पूर्ण विकास की अवधारणा संभव है।

इस प्रकार का औद्योगीकरण तभी संभव है, जब हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था उन सभी पहलुओं पर व्यापकता से सोच विचार कर, उसे आर्थिक नजरिए से देखते हुए, फिर नीति का निर्धारण करे।

जब देश आजाद हुआ था, तब गांधीजी के मन में आशंका थी कि विकास का रोल मॉडल कैसा हो और इसकी रचना किस प्रकार से की जाय? गांधीजी एक ऐसा आर्थिक समाज बनाने की कोशिश में लगे हुए थे जिसमें आधुनिक उच्च-तकनीक का कोई स्थान ना हो। वे ग्रामीण मूलक, कृषि आधारित, और श्रम प्रधान समाज के पक्षधर रहे थे।

देश की आजादी के बाद, गांधीजी के इन्हीं विचारों को अप्रासंगिक माना गया। गांधी मॉडल के बदले हम लोगों ने पश्चिमी विकास मॉडल बनाने पर विशेष जोर दिया जिससे भारत में समानता आने के बजाए गरीबी और असमानता बढ़ी। नेहरू ने सत्ता संभालने के बाद ही ऐसी नीतियों को अपनाया जिससे देश में पूंजी व्यवस्था बढ़े और इसका वितरण सभी लोगों के बीच स्वतः हो जाय। केवल उन लोगों ने भारत पर शासन किया जो पश्चिमी व्यवस्था से प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप, वे लोग नगरीकरण के विजेता कहलाए जाने लगे। इस प्रकार से, भारत में समाजवाद के बदले, पूंजीवाद आया। पूंजीनिवेश होने लगी, लेकिन इसका समान वितरण नहीं हो पाया, जिससे पूंजी मुट्ठीभर लोगों के पास चली गयी। बड़े बांध, बड़ी औद्योगिक घराने, और आधुनिक तकनीक तेजी से बढ़ने लगे। परिणामस्वरूप, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले संपूर्ण विश्व के अधिकांश लोगों का निवास स्थान भारत में है। ऐसे लोगों को जीवन जीने के लिए आधारभूत सुविधाएं भी नहीं मिलती है। लघु और कुटीर उद्योगों को नजरअंदाज किया जा रहा है। राऊरकेला, दूर्ग, भिलाई, हीराकुड, और भाखरा नांगल को विकास का मंदिर कहा जाता है। निजी उद्योगकर्मी 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' के नाम पर प्रोत्साहित थे।

अगर हम ऐसा सोचते हैं कि विकास की इसी अवधारणा के सहारे, या फिर पश्चिमी तकनीक का प्रयोग कर, हम उड़ीसा अथवा भारत को विकसित बना सकते हैं, उस स्थिति में हमें निर्णय लेना पड़ेगा कि कौन सा देश अथवा राज्य अथवा क्षेत्र हमारी औपनिवेशिक कॉलोनी बन सकती है। भारत में ऐसा ही हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप यहां गरीबी, अशिक्षा और कुपोषण विकराल रूप धारण कर रही है। देश की आबादी के लगभग 40 प्रतिशत लोग भूखमरी के शिकार हैं। स्थिति तो यहां तक बन गयी है कि सरकार गरीब लोगों को साल के 100 दिनों तक की रोजगार की गारंटी देने में भी सक्षम नहीं है। अमीर और गरीब लोगों के बीच की खाई 74 गुना बढ़ चुका है। 1947 के दौरान, आंतरिक

उपनिवेशवाद का बोलबाला रहा, लेकिन 1980 के बाद के दशक में, भारत में अंतरराष्ट्रीय उपनिवेशवाद के दौर की शुरुआत हुई। वर्तमान दौर में, हम बहुमुखी और बहुस्तरीय शोषण के शिकार हो रहे हैं।



पिछले 70 वर्षों के उड़ीसा के औद्योगिक विकास का दृश्यावलोकन

किसी भी देश के विकास के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है, क्योंकि हम पुर्वपाषाण युग में निवास नहीं कर रहे हैं। सिर्फ कृषि और वन आधारित उत्पादन से ही हम विकास नहीं कर सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि औद्योगिक विकास हो, लेकिन साथ यह भी आवश्यक है कि इसकी भूमिका कैसी हो इसका सही-सही निर्धारण हो। औद्योगिक विकास आवश्यकता और आय पर आधारित होना चाहिए या फिर इसका निर्धारण निजी कंपनियों के फायदे के लिए होना चाहिए? क्या इसका उपयोग समाज के लोगों के विकास के लिए होना चाहिए या फिर इसका निर्धारण शासक वर्ग और उद्योगकर्मी के हितों के लिए हो? इन उद्योग धंधों के लिए किस प्रकार की तकनीक का प्रयोग होना चाहिए, क्या ये मजदूरों के हितों के लिए बनाए जाय या फिर सिर्फ व्यापारिक हितों के लिए? क्या इन उद्योगों में उत्पादन की प्रक्रिया का नियंत्रण सामान्य लोगों के हाथों में हो या फिर इसका नियंत्रण सरकार के पास हो या फिर इसका स्वामित्व पूर्णरूप से निजी हाथों और बहुराष्ट्रीय कंपनी के हाथों में हो? क्या उत्पादन का स्तर लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर तय किए जाय या फिर हमारे सीमित संसाधनों का उत्पादन अंतर्राष्ट्रीय बाजार की आवश्यकतानुसार किया जाय? क्या यह ठीक है कि हम अपने सीमित खनिज पदार्थों को सिर्फ विदेशी विनिमय अथवा सिर्फ मुद्रा को अर्जित करने के लिए प्रयोग में लाएं? क्या यह उचित है कि सिर्फ कंपनी के फायदे के लिए अस्वच्छ परिस्थितियों में भी मजदूरों को काम करने के लिए बाध्य किया जाए? अगर हम मानव को महत्व देंगे तो इन पश्नों के उत्तर स्वतः मिल जाएंगे।

हमारे जेहन में, यह बात बैठी हुई है कि, सिर्फ वही कंपनियां अच्छी है जो खनिज संसाधनों का उपयोग कर रही हो; वैसी कंपनियां नहीं, जो कपड़ा और हस्तकरघा उद्योग अथवा पारंपरिक व्यवसाय में लगी हो जिसमें मजदूरों की संख्या अधिक हो और साथ ही प्रदूषणरहित भी हो। उद्योग सिर्फ आय के लिए स्थापित किए जाते हैं, इसलिए हम उसी आधार पर इसका विश्लेषण करें। पिछले 70-80 वर्षों में सिर्फ खनन के लिए 15,000 करोड़ रुपए खर्च किए गए। 2,000 करोड़ की लागत पर 324 बड़ी और मध्यम आकार के उद्योग स्थापित किए गए। 1,550 करोड़ रुपयों की लागत पर 66,000 छोटे उद्योग स्थापित किए गए जबकि इसके विपरीत 15,00,000 कुटीर उद्योग के लिए महज 600 करोड़ रुपए खर्च किए गए। अगर हम 1 करोड़ रुपए को प्रत्येक बड़े, मध्यम और छोटे कुटीर उद्योग में लगाते हैं तो हम क्रमवार 7,40,287 और 4475 लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार दे सकते हैं। हमारी सरकार इस प्रकार के निवेश और औद्योगिक नीतियों के विश्लेषण से किसी भी प्रकार की सीख नहीं लेना चाहती है।



विस्थापन

बड़े बांधों, खदानों और उद्योग लगाए जाने की वजह से लगभग 30,00,000 लोग विस्थापित हुए हैं जिसमें अधिकांश जनजातीय समुदाय से आते हैं। इसके बाद किसान और दलितों का पलायन हुआ है। जंगलों की लगातार कटाई होने के कारण यहां निवास करने वाले लाखों लोगों को विस्थापित होना पड़ा है। उड़ीसा के कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं और 30 प्रतिशत लोग निम्न मध्यम वर्ग के हैं। इनमें से 80 फीसदी लोगों को बुनियादी सुविधाएं भी नसीब नहीं हैं। औद्योगिक उत्पादन के बारे में उनकी मांगें काफी कम हैं। उड़ीसा की कुल आबादी के 20 फीसदी लोग, जो मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग से संबद्ध हैं, अमीर हैं। लेकिन 80 फीसदी आबादी के आय में वृद्धि हुए बिना औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि नहीं की जा सकती। इसलिए उड़ीसा के औद्योगीकरण

का आशय सिर्फ वहां के निवासी से ही नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र में 20 फीसदी लोग और सेवा क्षेत्र में 5 फीसदी लोग काम करते हैं जबकि बड़े और मध्यम आकार के औद्योगिक घरानों में 5 फीसदी लोग कार्यरत हैं। उड़ीसा के पिछले 27 वर्षों का यह लेखा-जोखा है।

अब आय के ओर अपना रुख करते हैं। उड़ीसा की गिनती भारत के अत्यंत पिछड़े राज्यों में होती है। पिछले 70 वर्षों का इतिहास गवाह है कि बड़े और मध्यम आकार के उद्योग रोजगार और आय के साधन उपलब्ध कराने में असफल साबित हुए हैं। लघु और कुटीर उद्योग ने ज्यादातर रोजगार और आय के साधन उपलब्ध कराए हैं। पिछले 70 वर्षों में उड़ीसा सरकार के द्वारा अपनायी गई औद्योगिक नीतियां वहां के लोगों के रोजगार और आय के नियमित साधन उपलब्ध कराने में विफल रही हैं, साथ ही कृषि, जंगल और कुटीर उद्योगों के विकास करने में वह नीतियां कारगर साबित नहीं हुईं।



90 के दशक के बाद की औद्योगिक नीतियां

90 के दशक के बाद औद्योगिक नीतियां के नीति निर्धारण निजी हाथों के हितों को ध्यान में रखते हुए किया गया, विशेषकर, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापारिक हितों की रक्षा की गई, और उन्हें व्यापार करने के लिए तमाम प्रकार के प्रोत्साहन दिए गए, राष्ट्रीय औद्योगिक इकाइयों की समस्याओं को सुलझाने के बजाए, उन्हें बंद कर दिया गया और निजी हाथों को औने-पौने दाम में लाभ देने वाली उन इकाइयों को बेच दिया गया, जिससे सिर्फ बड़े, मझौले और निजी औद्योगिक घरानों को फायदा हुआ, अंतर्राष्ट्रीय मानद को देखते हुए इन कंपनियों के लिए उच्च-तकनीकी मशीनों के आयात पर खासा जोर दिया गया, श्रम कानून, औद्योगिक विवादास्पद कानून, जमीन पट्टेदारी कानून में अपने सुविधानुसार बदलाव किया गया, जमीनों के पट्टेदारी की सीमा बढ़ायी गयी, लोगों को स्वैच्छिक संवानिवृत्ति के लिए विवश किया गया, साथ ही घरेलु और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को काफी रियायत दी गई। 1992 के बाद, औद्योगिक नीतियों में उदारवाद और निजीकरण तेजी से बढ़ा। 1992,

1996 और 2001 की औद्योगिक नीतियों में उदारवाद और निजीकरण को बढ़ावा देने के स्पष्ट संकेत हमें मिलते हैं। 2004 की औद्योगिक नीति में कुछ बदलाव किए गए हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. पूंजीनिवेश की प्रक्रिया को और अधिक सरल बनाना,
2. राज्य सरकार निजी उद्योगों को प्रोत्साहित करे और उन्हें पूंजीनिवेश करने के लिए आमंत्रित करे,
3. विशेष आर्थिक क्षेत्र को स्थापित करने के लिए विदेशी पूंजीनिवेश के लिए आमंत्रण दिया जाय,
4. सरकार उद्योगों की स्थापना के लिए विदेशी पूंजीनिवेश को बढ़ावा देगी,
5. सरकार विदेशी पूंजीनिवेश को सुविधा प्रदान करने के लिए 'विदेशी पूंजीनिवेश बोर्ड' का गठन करे और नयी दिल्ली में इसके लिए एक उड़ीसा विदेशी पूंजीनिवेश के नाम से कार्यालय खोला जाय,
6. निजी क्षेत्र के साथ मिलकर सरकार नयी तकनीकी संस्थान की स्थापना करे। संक्षेप में, यह उनके लिए कम निवेशी पर अधिक लाभ के अवसर खोला देगी।



उद्योगों के लिए रियायत

1. जमीन के लिए बीमा किस्त भरने की जरूरत नहीं।
2. नये उद्योगों को 100 के.वी. बिजली मुफ्त मिलेगी।
3. जिस उद्योग के पास निजी बिजली प्रदाय है वह अपनी अधिशेष बिजली को बेच सकती है।
4. नये उद्योगों को आगामी 4 वर्षों तक कुल पानी के खर्च का सिर्फ 35-40 प्रतिशत पानी का ही भुगतान करना पड़ेगा।

5. बड़ी कंपनियों को आगामी 15 वर्षों तक 2 प्रतिशत केंद्रीय शुल्क से अधिक भुगतान नहीं करना पड़ेगा।
6. बड़ी कंपनियों को आयतित कच्चे माल पर कोई शुल्क नहीं देना पड़ेगा,
7. इन कंपनियों को आगामी 10 वर्षों तक व्यापारिक करों में 50 फीसदी की रियायत मिलेगी। जिन कंपनियों को इससे ज्यादा व्यय कर की आवश्यकता है उनके लिए यह शर्त लागू नहीं होती।



इस नीति से कौन लाभान्वित होंगे?

अगर उक्तलिखित रियायत को कंपनियों को दिया गया, तो ये कंपनियां उन रियायतों और छूट का लाभ उठाकर, अपनी कुल लागत पूंजी को महज 5-10 वर्षों में वसूल कर लेगी। इसका मतलब यह है कि बिना किसी पूंजीनिवेश किए ही ये कंपनियां हमारे संसाधनों का उपयोग करके हमारा ही शोषण करेगी, उदाहरणस्वरूप जिंदल ने 5000 करोड़ रूपए का निवेश कर, 1 वर्ष में 1000 करोड़ रूपयों की सरकारी रियायत पा चुकी है। इस प्रकार, 5 वर्ष के भीतर ही कंपनी अपनी पूरी पूंजी को प्राप्त कर लेगी और अगर इसी प्रकार उन्हें 20 वर्षों तक सरकारी रियायत मिलती रही तो एक अनुमान से वे, 300 प्रतिशत मुनाफा कमाने में सक्षम होंगी। ठीक इसी प्रकार की स्थिति काशीपूर, लांजीगढ़ और पारादीप आदि जगहों में उत्कल एल्युमीना के साथ होगी - जो व्यक्ति इस परियोजना की आलोचना करते हैं, उन्हें प्रशासन और उड़ीसा सरकार के कोपभाजन का शिकार होना पड़ सकता है - क्योंकि सरकार ने ऐसी घोषणा पहले से ही कर रखी है। किसी भी स्थिति से निबटने के लिए राज्य सरकार ने स्थानीय पुलिस, सी.आर.पी.एफ और सुरक्षित बैटालियन को तैनात कर रखा है।

आइए हम उड़ीसा सरकार की 10वीं पंचवर्षीय योजना के संबंध में चर्चा करें जिसमें उन्होंने उद्योगों के लिए सभी प्रकार की रियायत की घोषणा कर रखी है। उड़ीसा सरकार की 10वीं

पंचवर्षीय योजना में सामाजिक कल्याण हेतु 5,589 करोड़ रूपयों का आवंटन किया है। इसके शब्दार्थ में जाएं तो पता लगता है कि यह आवंटन औद्योगिक घरानों को दिए जा रहे कुल आवंटन के समान है। सरकार इन कंपनियों की सब्सिडी में क्यों नहीं कमी कर पा रही है और सरकारी कल्याण की योजनाओं की राशि को इन कंपनियों को खैरात में बांटकर, खाली खजाने का रोना रो रही है? अगर सभी प्रस्तावित परियोजनाओं को सरकार के तरफ से मंजूरी मिल जाती है, तो इसमें 3,00,000 करोड़ रूपए की कुल लागत आएगी और अगर सरकार सभी परियोजनाओं के लिए प्रस्तावित सब्सिडी को मंजूर कर लेती है तो सरकारी खजाने को 25,000 करोड़ रूपए की सालाना चपत लगेगी। इसकी वजह से आगामी 20 वर्षों में सरकार को 15,00,000 करोड़ रूपए के राजस्व के नुकसान उठाना पड़ेगा। साथ ही सरकार को इन खदानों से मिलने वाले हजारों करोड़ की रायल्टी से हाथ धोना पड़ेगा। सिर्फ कोयला की खदानों से ही वर्ष 1997-2000 की अवधि में राज्य सरकार को 1,200 करोड़ रूपयों की हानि हो चुकी है।

आखिरकार सरकार को इसकी सुध क्यों नहीं आ रही है? सर्वप्रथम यह कि, हमारा देश और हमारा राज्य सरकारें ऋणग्रस्त है। सबसे पहले राज्य सरकार की बात करें तो, वर्ष 1980-81 के राजकोषीय घाटे के अनुसार उड़ीसा राज्य पर कुल कर्ज 1277.05 करोड़ रूपया था जो 2002-03 के अंत तक आते-आते 23,733.99 करोड़ तक जा पहुँचा। हमें विकास कार्यों के लिए, राज्य सरकार के कर्मचारियों को वेतन देने के लिए और राजकोषीय घाटे एवं ऋण की ब्याज दरों को चुकाने के लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। इसलिए कर्ज देने वाली संस्थाएं जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, डी.एफ.आई.डी. और एशियाई विकास बैंक के इशारों पर हमें अपनी अर्थव्यवस्था और आर्थिक नीतियों में व्यापक बदलाव लाना पड़ता है। इन्हीं संस्थानों से संपूर्ण विश्व और कॉरपोरेट वर्गों के हित जुड़े हुए हैं। इसलिए सरकार भी इन कंपनियों को सब्सिडी और रियायत देने को बाध्य है। इसके पीछे दूसरा तर्क यह है कि इन कंपनियों द्वारा को राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिए चंदा भी देना पड़ता है। हम अपनी कर्ज के शर्त को अस्वीकार कर तथा कर्ज देने वाली इन संस्थाओं के किसी विकल्प का चुनाव कर इसके चंगुल से बाहर निकल सकते हैं, लेकिन वर्तमान समय में ऐसा करना संभव नहीं दिख रहा है, क्योंकि राजनीतिक दल सत्ता में हैं।



तीव्र औद्योगीकरण के परिणाम

आने वाले समय में, सिर्फ उड़ीसा में ही 3,00,000 करोड़ रूपयों का पूंजीनिवेश होने जा रहा है। इनमें, बॉक्साइट उद्योग में 53,000 करोड़, लौह-अयस्क उद्योग में 65,000 करोड़, स्टील उद्योग और कच्चे लोहे के उद्योग में 75,000 करोड़, बिजली उत्पादन के लिए 62,000 करोड़, बंदरगाह के विकास के लिए 18,000 करोड़, रेलवे, राजमार्ग और सड़कों के विकास के लिए 36,000 करोड़, और पेट्रोलियम उत्पादन के लिए 20,000 करोड़ रूपयों के पूंजीनिवेश होने वाले हैं। ठीक इसके दूसरी तरफ, उड़ीसा सरकार के सरकारी सूचना के अनुसार, इन परियोजनाओं के लिए आगामी आने वाले 10 वर्षों में 2,50,000 लोगों को विस्थापित करने की संभावना हो सकती है। लेकिन गैर-सरकारी सूत्रों के अनुसार आने वाले समय में उड़ीसा के विभिन्न परियोजनाओं से कुल 10,00,000 लोगों का विस्थापन हो सकता है।



आमदनी

एल्युमीनियम उद्योग में, 53,000 करोड़ रूपयों के पूंजीनिवेश करने के बाद भी सिर्फ 13,000 लोगों को रोजगार का साधन मुहैया कराया जा सकता है। स्टील उद्योग में, अगर 75,000 करोड़ रूपयों का पूंजीनिवेश किया जाय तब भी महज 75,000 लोगों को ही रोजगार दिया जा सकता है। पेट्रोलियम, बिजली और बंदरगाहों के ऊपर अगर 84,000 करोड़ रूपयों का पूंजीनिवेश किया जाय तब भी इसके लिए 42,000 लोगों को ही रोजगार दिया जा सकता है। अर्थात् काशीपुर, दसमानतापुर और लक्ष्मीपुर में प्रस्तावित एल्युमीनियम

परियोजनाओं में प्रति 4 करोड़ रूपयों के निवेश पर सिर्फ 1 व्यक्ति को रोजगार दिया जा सकता है। वह भी महज 25-30 वर्ष के लिए होगा। यहां 2,000 व्यक्तियों को ही रोजगार मिलेगा जबकि इसके लिए 50,000 परिवारों को अपना व्यवसाय छोड़ना पड़ेगा। पिछले 70 सालों में, औद्योगीकरण के लिए 30,000 करोड़ रूपयों का पूंजीनिवेश किया गया और सिर्फ 32,93,000 लोगों को रोजगार मिल पाया है। पिछले 25-30 सालों में, लांजीगढ़ के वेदांत परियोजना में 5,000 करोड़ रुपए निवेश किए गए जबकि सिर्फ 250 लोगो को रोजगार मिल सका। इसमें 10,000 लोगो को प्रत्यक्ष रूप से और 15,000 लोगो को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार से हाथ धोना पड़ा है। इसके ठीक विपरीत, पिछले 70 वर्षों में, लघु उद्योगों में 1,500 करोड़ रुपए एवं कुटीर उद्योग में 600 करोड़ रूपयों का पूंजीनिवेश किया गया और इससे 4,30,000 लोगो को रोजगार दिया गया है। सिर्फ उड़ीसा में ही, 20,00,000 लोग शिक्षित बेरोजगार की श्रेणी में आते हैं। महज पूंजीनिवेश करने से ही रोजगार का सृजन नहीं किया जा सकता है। किसी भी पूंजीनिवेश करने से पहले, सामाजिक कल्याण की भावना सर्वोपरि होनी चाहिए।



जन आंदोलन ही एक मात्र विकल्प है

हम लोगों को इस प्रकार के औद्योगीकरण का विरोध करना पड़ेगा, और इसकी शुरुआत हो चुकी है, चाहे वह काशीपूर का आंदोलन हो या फिर लांजीगढ़ या पारादीप का। इन सभी प्रकार की परियोजनाओं का, वहां रहनेवाली जनजातीय लोग, किसान, और विशेषकर महिलाएं जोरदार तरीके से विरोध कर रही हैं। लेकिन राज्य सरकार और कॉर्पोरेट जगत के द्वारा की जाने वाली दमनात्मक कार्यवाही का वे लोग सामना नहीं कर सकते हैं। विकल्प के रूप में आज की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के बदले में किसी प्रकार की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था कायम नहीं हो पायी है। भूमंडलीकरण की अर्थनीति एवं उनके व्यवहार से साफ दिखता है कि उनकी नीतियां देश की 90 फीसदी आबादी को ध्यान में रखकर नहीं बनायी गई है और उनसे किसी भी प्रकार के न्याय की उम्मीद नहीं की जा सकती।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज वामदलों की सोच भी बदल चुकी है और उनका मानना है कि तीसरी दुनिया के देशों में सामाजिक गैर-बराबरी और सामंतवादी व्यवस्था को, बजाए वहां की बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ता विस्थापन और पूंजी संकट आदि समस्याओं को हल किए बिना ही, सिर्फ उच्च-तकनीक औद्योगिक परियोजनाओं को स्थापित करने से ही दूर किया जा सकता है। इसके साथ यह भी सत्य है कि वामदलों के प्रभाव भी कुछ क्षेत्रों तक सीमित है। लगातार विद्रोह कर रहे इन दलों के साथ निरंतर संबंधों, संवादों, और सहयोग करने से ऐसी संभावना बन सकती है कि इन क्षेत्रों में एक नयी शक्ति उभर कर आए।



वैकल्पिक शक्ति का विकास

वामदलों, समाजवादियों, शिक्षित व संभ्रात लोग, और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं आदि में आपसी संबंध, परस्पर संवाद और सहयोग स्थापित होना चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियां भाकपा माले, माले न्यू डिमोक्रेसी, एन.ए.पी.एम. के बीच प्रारंभ हो चुकी है लेकिन उनके संबंध स्वास्थ्यकर, स्थायी, प्रजातांत्रिक समन्वय अभी तक संभव नहीं बन सके हैं। भाकपा पोस्को परियोजना का विरोध करने का मन बना चुकी है, गौरतलब है, इस परियोजना में, हीराकुड डैम से, वहां के औद्योगिक घरानों को पानी मुहैया कराने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसी आशा है कि आने वाले समय में वे लोग स्पष्ट सोच के साथ कंपनी के किसी भी प्रकार के औपनिवेशिक शोषण का विरोध करेंगे। प्रारंभ में, यह बिना किसी योजनाबद्ध तरीके के साथ हो सकता है। विपरीत परिस्थितियों में, अन्य लोगों के साथ समन्वय करने के बजाए, ये सभी संगठन निष्क्रिय हो जाते हैं, जो अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। जो शक्तियाँ इसका विरोध करना चाहती हैं वह भी किसी बैनर के तले, मन में महत्वाकांक्षा पाले हुए, और झूठे आत्मसम्मान के तहत करना चाहती हैं। चाहे उनकी आस्था हिंसा में हो अथवा अहिंसा में, बिना किसी जन आंदोलन के यह वर्ग संघर्ष कभी सफल नहीं हो सकता। जन आंदोलन और जन भागीदारी के रास्ते में कभी हिंसा की नीति रोड़े नहीं अटकाए और ना ही अहिंसा की नीति उन्हें भगोड़े बनाने के लिए मजबूर करे। इसलिए, हम सबको,

औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ लड़ाई लड़ने लिए एक बैनर के तहत एकजुट होना पड़ेगा और इसके लिए कुछ बिंदुओं पर चर्चा करना आवश्यक है जो निम्नलिखित हैं:-

1. राज्य की भूमिका पर हम एक स्पष्ट राय रखें। राज्य के किसी भी हिंसात्मक गतिविधियों के खिलाफ एकजुट होकर इसका विरोध करें।
2. वैकल्पिक विकास पर प्रकाश डालें।
3. हमें मानव-मशीन, वर्तमान तकनीक और सोच के उस राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझना पड़ेगा, जिसे पर्दे की ओट से चलाया जा रहा है और साथ ही इसके विकल्प भी तैयार करने होंगे।
4. हमें प्राकृतिक संसाधनों के संदोहन को रोकना पड़ेगा और इसके आर्थिक संरचना के प्रमाणिक विकास हेतु विकल्प को तैयार करना पड़ेगा।
5. हमें खदानों के विकल्पों के बारे में भी सोचना चाहिए।
6. अगले चरण के विकास की सीमित स्थिति को देखते हुए हमें इस पर चर्चा-परिचर्चा करनी चाहिए।
7. हमें जन आंदोलन के विकास एवं तकनीक के लिए योजना बनानी चाहिए।
8. संगठन के लिए चंदे इकट्ठे करने की प्रकृति और उसकी विधि पर विचार करनी चाहिए।
9. वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ जनमत तैयार करने के लिए हमें कार्यक्रम बनाने की दिशा में ध्यान देना चाहिए और इसी दिशा में पम्पलेट, पर्चे और साहित्य सामग्रियों को प्रचार के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

इन सभी के आलावा, विकास के मुद्दे को ध्यान में रखें। हमें आम लोगों के हित और संसाधनों की सीमित मात्रा को देखते हुए, इसके वैकल्पिक विकास, औद्योगिक, जल, और वन नीतियों के ऊपर चिंतन और विचार करना चाहिए। हमें दूसरी ताकतों के साथ संवाद की प्रक्रिया और समन्वय स्थापित करनी चाहिए और साथ-साथ संघर्ष करने पर बल देना चाहिए जिससे स्थानीय संगठनों को मजबूती प्रदान किया जा सके।

साभार : हम श्री मानस मोहंती के आभारी हैं, जिन्होंने इस लेख को मूल उड़ीया भाषा से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है।

वास्तविक विकास तभी संभव है,
जब **PM** अपने अधिकारों का प्रयोग करें।
दूसरों के फायदे के लिए
हमें अपने अधिकार नहीं देने होंगे।

यदि हमारे देसों **PM**, हमारे उत्सव,
हमारे पवित्रा पत्थर डूबा दिए जायेंगे
तो ऐसे अधिकारों का क्या लाभ?
हम उनके बिना नहीं रह सकते।

हमें चाहिए विकास, ना की विनाश।

निती माई, सुवर्णरेखा बांध परियोजना के खिलाफ, झारखण्ड।



भाग 4

भूदृश्य का विधान और आदिवासी अधिकार

यह 5600 वर्ष पुराना शैलशिल्प कर्मगढ़ सुरक्षित वनक्षेत्र छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिला में स्थित है। अकेले रायगढ़ जिला में 1740 हेक्टर कृषि भूमि औद्योगिक प्रयोजनों के लिये दी गई है। अधिकांश मामलों में पेसा तथा पर्यावरण कानून संबंधित प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है।



एक बंजारा जो चोर कहलाया

डॉ. जी. एन. देवी

भारत में अनुसूचित एवं बंजारा जीवन जीने वाले लोगों की आबादी करीब छः करोड़ है। इनमें से कुछ अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत आते हैं और कुछ अल्पसंख्यक अन्य पिछड़ी हुई जातियों के वर्ग में रखे जाते हैं। हालांकि इनमें बहुतेरे ऐसे भी हैं जो किसी भी सूची के अंतर्गत नहीं आते हैं। ऐसे अनुसूचित जनजातियों को जन्मजात अपराधी के नाम से जाना जाता है।

अनुसूचित जनजाति की कहानी उपनिवेशवाद के वर्ष में देखी जाती है। उस समय जो कोई भी ब्रिटिश उपनिवेश के विस्तार का विरोध करता था, उसे अपराधी प्रवृत्ति का माना जाता था। विशेषकर वैसा कोई भी प्रयास जो हथियारों के साथ उपनिवेशवाद का विरोध करता था, उसे आपराधिक प्रवृत्ति का माना जाता था। बहुत सारे घुमक्कड़ सन्तों को, फकीरों को, छोटे-मोटे व्यापारियों को, बोज़वाहक को एवं कुछ बेनाम सैन्य दलों को भी अंग्रेजों के द्वारा आपराधिक दल करार दिया गया था। उन्नीसवीं सदी के पूर्वाह्न में उत्तर-पश्चिम भाग के जनजातियों को आपराधिक जातियाँ घोषित कर दिया गया। आपराधिक वर्ग बाद में बढ़ता गया और 1871 ई. तक अंग्रेजों ने औपचारिक रूप से आपराधिक जातियों की एक सूची तय किया। इसी वर्ष आपराधिक जातियों को नियंत्रित करने के लिए एक अधिनियम

जारी किया गया। उदाहरणार्थ वे भील जाति के लोग जो खानदेश में एवं नर्मदा नदी के तटपर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े, उन्हें अपराधी जनजाति करार दिया गया और भारतीय पैनल कोड 110 के आधार पर उन्हें दोषी करार दिया गया। अपराधी जनजाति अधिनियम में सुधारात्मक प्रवास का प्रावधान बनाया, जहाँ आपराधिक आदिवासियों को बन्द रखा जाता था और उनसे कम मजदूरी पर काम करवाया जाता था उन्हें प्रतिदिन रक्षक कक्ष कई बार हाजरी लगानी पड़ती थी ताकि वे इस कष्टदायक प्रवासी जीवन से पलायन न कर जायें।

आपराधिक अनुसूचित जनजाति अधिनियम ने इन अपराधियों को जमीन एवं अन्य सम्पत्ति भी मुहैया कराया और इन्हें स्थायी जीवन जीने के लिए बाध्य किया। करीब दो सौ बंजारा समुदाय को आपराधिक जनजाति अधिनियम के दायरे में लाया गया और उनके प्रवास के लिए विशिष्ट क्षेत्रों का गठन किया गया। 1921 ई. तक आपराधिक अधिनियम का विस्तार मद्रास प्रेसिडेंसी, हैदराबाद और मैसूर के कई अन्य जनजातियों को दायरे में लाने के लिए किया गया। करीब यही समय था, जब भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के प्रादुर्भाव के बाद एक नवीन पृष्ठ खुला। जो स्वतंत्रता संग्राम के नेता के रूप में उभरे और मुल्क उसका साक्षात् गवाह है कि एक नये वर्ग के लोगों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें जन्मजात अपराधी कहा गया। स्वतंत्रता के पश्चात अत्यल्प सुविधा इन जातियों को राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकार के द्वारा प्रदान की गयी, क्योंकि उन्हें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग में वर्गीकृत कर दिया गया।

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद सूचित सम्प्रदाय, जिसे अपराधी आदिवासी कहा जाता था, उन्हें सरकार के द्वारा अनुसूचित करार दिया गया। ऐसा, अधिनियम की एक श्रृंखला का अनुकरण करके किया गया, जिसे सामान्यतः "आदतजन्य आपराधिक अधिनियम" (एच. ओ. ए.) करार दिया गया। हालाँकि इन कदमों ने निर्दिष्ट बंजारा जनजातियों को थोड़ा राहत प्रदान किया क्योंकि अपराधी जनजाति अधिनियम के तहत अधिकांश प्रावधान, उस प्रावधान को छोड़कर कि पूरा समुदाय जन्मजात अपराधी हो सकता है, वह 'आदतजन्य अपराधी अधिनियम' में अपरिवर्तित रह गया। अनुसूचित जनजातियों को अपराधी के रूप में देखने का प्रशिक्षण एवं आदत पुलिस बल एवं आम जनता के द्वारा औपनिवेशिक साम्राज्य से लेकर आज तक बरकरार है। इसके परिणामस्वरूप यदि आस-पड़ोस में कोई छोटी-मोटी चोरी हुई तो अनुसूचित जनजातियों को ही एक ही नज़रों से देखा जाता है। अनुसूचित

जनजातियों में से कितने लोगों को सजा मिलती है इसके अनुपात के विश्लेषण की जरूरत है, ताकि यह ज्ञात हो सके कि समाज की सुविधाओं से वंचित इन लोगों को पुलिस के द्वारा कितना प्रताड़ित किया जाता है। उपनिवेशवाद के दौरान इन्हें मुहैया कराये गये जमीनों से वंचित कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद भी इन्हें कोई ऐसा लाभ न मिला, जिससे वे फिर अपनी जमीन वापस ले सकें। अनुसूचित जनजातियों को खानाबदोश जिन्दगी के कारण उन्हें उपवर्जन और शोषण सहना पड़ता है क्योंकि वे स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और पोषण से वंचित रह जाते हैं जिससे निरक्षरता और कुपोषण दिखाई देता है।

निर्दिष्ट बंजारा जनजाति के लोग आसानी से पुलिस के पकड़ में आ जाते हैं और निरक्षर तथा भू-अधिकार कानून की जानकारी नहीं होने के कारण उन्हें प्रायः कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, वे नये वस्त्रों को धारण करने से पूर्व उनपर मिट्टी लगा लिया करते हैं। ऐसा वे इस कारण करते हैं, ताकि उन्हें लगता है कि कहीं नवीन वस्त्र पहने देखकर उन्हें चोरी के इल्जाम में न फँसा दिया जाये। वे जमायत बनाकर गाँव-गाँव भटका करते हैं, वे समस्त नागरिक सुविधाओं से सर्वथा वंचित रहते हैं, जीवन-जीविका की अनिश्चितता के कारण भुखमरी के शिकार होते हैं। भारत के निर्दिष्ट बंजारा जनजातियों का यही हाल होता है। उनके लिए स्वतंत्रता कोई अर्थ नहीं रखती।

बंजारा जनजातियों को सामान्य रूप से आपराधियों और समाज विरोधी के रूप में जाना जाता है तथा गुजरात का चारा समुदाय अपवाद नहीं है। चारानगर साबरमती आश्रम के पास परित्यक्त अवस्था में है, वह इस बात की दुःखद यादगारी दिलाता है कि देश को जनजातियों एवं बंजारा समुदायों को स्वतंत्रता संग्राम ने कितना कम प्रदान किया है। यह अव्यवस्थित अनियोजित घरों की एक अलाभकर गन्दी बस्ती है। जिसमें लगभग सात हजार आबादी पुराने आवासों में निवास करती है। घेरारहित जगह होने की वजह से यह अपराध प्रभावित क्षेत्र है। यह एक क्रूर मजाक है कि जो फैशन तकनीक की डिग्री लिए हुए है, शिक्षक हैं या उसी प्रकार के अन्य लोग हैं, वे लोगों के लिए कार्य का आश्वासन नहीं दे पाते। "यहाँ तक कि चारा के पास यदि प्रथम श्रेणी की डिग्री होती है, तो भी उसे रोज़गार नहीं मिल पाता। लोग हमपर विश्वास नहीं करते, इसलिए अंततः सबको मजबूर होकर अपने जीवन में वापस जाना पड़ता है,"। यह कथन अरबिन्द कोड़ेकर एक वकील की है। चारा अपने बच्चों को विशेष रूप से लड़कियों को बहुत ही कम उम्र में शराब बेचने के लिए

प्रशिक्षित करते हैं, जिसे कई बार वे अपने क्लॉक में छिपाए हुए गुब्बारों में भरकर तस्करी करते हैं। सरकारी दफ्तर में लिपिक के रूप में जो चारा काम करता है, अपनी पत्नी को अपनी साइकिल पर बैठाकर ले आता है ताकि वह दफ्तर के बाहर बैठकर भीख मांग सके, चारा लोग छोटी-छोटी चोरी करने में माहिर होते हैं। चारा लोग दुकान में चोरी करने वाले छोटे-मोटे माहिर चोर होते हैं। इसका रहस्योद्घाटन गुजरात विश्वविद्यालय के एक विद्वान ने किया है। गुजरात के चाराओं को पंजाब में साँसी और राजस्थान में कंजर कहा जाता है। वे अकेले नहीं हैं वे लगभग पूरे भारत में लगभग दो सौ बंजारा अनुसूचित जनजातियाँ हैं, और उनकी आबादी लगभग साठ मिलियन है। उनकी कुख्याती बंजारों के भाग्य की तरह गम्भीर है, क्योंकि सम्रान्त समाज में इन्हें हमेशा एक चोर की तरह ही देखा गया है। इतनी बड़ी संख्या के लोगों को इतने दिनों तक कलंकित करना भयप्रद है, यह उनके हाथों का कौशल और परिश्रम है जिसने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऐसी समृद्ध विरासत को चोर एवं अपराधी करार देते हुए फेंका जा रहा है।

यह बंजारों के साथ वर्षों से चलता हुआ दुर्व्यवहार का ही नतीजा है कि उन्हें चोर कहा जाता है। राज्य सरकार के द्वारा पूर्णरूपेण ऐसा कोई प्रयास नहीं है, जिससे उन्हें इज्जत की जिन्दगी दी जाये। एक हिजड़ा के द्वारा 2003 में गुजरात के कालेश्वरी मेले में वार्षिकोत्सव के दौरान पूछे गये प्रश्न उनके स्तर के संबंध में इस प्रकार है :-

महाशय! मैंने यह सुना है कि भारत अब एक स्वतन्त्र देश है, जिसके अपने नियम और कायदे हैं। क्या यह सही है?

टांडा या जहाँ बंजारे निवास करते हैं उस स्थान की विशेषताएँ हैं - अच्छी देखभाल वाले खेत, शिक्षा का प्रसार, आमोद-प्रमोद के लिए प्यार, यहाँ साठ से अधिक झोपड़ियाँ नहीं होती तथा कुछ झोपड़ी में ईंट और सीमेंट की दिवारें तथा पक्की फर्श है। विशेषताएँ एवं जीवन शैली सुस्पष्ट जाहिर करती हैं कि बंजारा भारत के अन्य गरीब घुमन्तू वर्गों से सर्वथा पृथक् नहीं है। बंजारे सेनादास, लोकनायक के प्रति बंधे महसूस करते हैं, जिसने नमक पर कर लगाने के विरुद्ध अंग्रेजों से संघर्ष किया। उनकी भाषा को 'गौड़ बंजारा' कहा जाता है। शायद यह 'गौड़ी' का अपभ्रंश है लेकिन 'रोमानी' भाषा से मिलती जुलती है जैसा की दसवीं शताब्दी के चिन्तक राजशेखर ने कहा है। दसवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक

के बंजारों के इतिहास पर पर्दा पड़ गया है, परन्तु जब वे सेनदास की बहादुरी के किस्से सुनते हैं तो उनकी याददाश्त जागृत हो उठती है। उनकी प्रथाओं एवं रिवाजों ने समुदाय में रहने को प्रेरित किया। बंजारा छः क्षेत्रों में फैले हुए हैं, जो कि हजारों टेन्डों में विभक्त थे, जो राजस्थान से मध्य भारत होते हुए आन्ध्र प्रदेश तक फैले हुए थे। वे दावा करते हैं कि उनकी आबादी लगभग बीस मिलियन है, यद्यपि यह गिनती अमान्य प्रतीत होती है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि लाखों यावातमाल के पास प्रतिवर्ष एक मेले में इक्ठे होते हैं।

जिस प्रकार ये अपने आपको संगठित करते हैं, जटिल सामाजिक परम्परा में अपना स्थान तलाशते हैं और नये अपनाये गये पेशों में चमकते हैं, यह सब प्रदर्शित करता है कि बंजारे कुशाग्र बुद्धि के हैं, जिसकी वजह से ये अपराधिक जनजाति अधिनियम के बावजूद जीवित हैं। उनके रहन-सहन की शोभा तथा प्राकृतिक प्रज्ञा साबित करती है की उनकी सभ्यता भारत के अन्य सभ्यताओं की तरह ही प्राचीन है।

महाराष्ट्र में बहुत वर्षों तक एक बंजारा मुख्यमंत्री रहे, जिन्होंने इन लोगों के पुनर्वास का प्रयास किया। उनके प्रयासों ने निस्सन्देह रंग लाया। हिन्दी फिल्मों में, पुरुष बंजारों का संपेरो के रूप में तथा औरतों का बहु पुरुषगामी स्त्री की जो लोकप्रिय छवि है, इस कारण उनके बीच जो महान क्रांति हुई है वह कहीं दब कर रह गई है।

केन्द्रीय मानवाधिकार आयोग ने 2000 ई. न्यायाधिश एन. वेंक्ताचलैया और न्यायाधिश जे. एस. वर्मा के निर्देशन में एक निम्नांकित अध्यादेश पारित किया -

1. एक सेवा निवृत्त वरिष्ठ पुलिस पदाधिकारी की नियुक्ति प्रत्येक राज्य में की जाये जो अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध हो रहे उत्पीड़न के मुकदमों को देख-रेख कर सकें।
2. पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण देनेवाली संस्थाएँ और नैशनल पुलिस अकादमी को अपने पाठ्यक्रम के पुनरविन्यास की सलाह दें।
3. आदतन अपराधी अधिनियम को निरस्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाएँ।

4. केन्द्र एवं राज्य सरकारों को निर्देशित किया जाये कि बंजारा अनुसूचित जनजातियों को समुचित पारिश्रमिक मिले और एक ऐसी कार्य योजना बनायी जाये, जिसके तहत शिक्षा, रोजगार एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान की जाय।
5. एक वृहत सुचना अभियान चलाया जाये, जिसका उद्देश्य बंजारा अनुसूचित जनजातियों के बारे में सामान्य अवधारणा में परिवर्तन लाती हो।
6. राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण को निर्देशित किया जाय कि बंजारा अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक आर्थिक अवस्थाओं पर विशेष सर्वेक्षण करें।

दुर्भाग्यवश पर्याप्त उदाहरण नहीं है, जहाँ पर बंजारा अनुसूचित जनजातियों पर सन्देह न किया गया है। मानव रूप में अपनी पहचान और इज्जत के लिए इनको काफी समय तक संघर्ष करना पड़ता है। प्रतिबंध विभाग द्वारा अपनी इच्छानुसार छापेमारी नित्य विषय है। ऐसे ही एक अवसर पर की गई छापेमारी कई दिनों तक चली तथा इस कारण चारानगर में आतंक फैला और गिरफ्तारियाँ हुई। चाराओं द्वारा समाज कल्याण मंत्री से मिलने का प्रयास विफल रहा, चितित नागरिकों और जाने माने लोगों, जैसा मल्लिका साराभाई द्वारा किए गए प्रयासों की आलोचना की गई, परन्तु ये सभी बातें चाराओं के एक युवक दल को एकजुट होने और सामाजिक परिवर्तन लाने से नहीं रोक सका।

बंजारा अनुसूचित जनजातियों में लोगों के सहयोग से आमूल चूल परिवर्तन लाने की जरूरत है तथा राज्य का यह नैतिक दायित्व बनता है कि उन समुदायों, को शक्तिशाली बनायें। यद्यपि इस संबंध में राज्य का काम कराना काफी कठिन है। 1998 ई में सामाजिक न्याय मंत्री के रूप में श्रीमती मेनका गाँधी ने एक वादा किया था कि बंजारा अनुसूचित जनजातियों के लिए कल्याणकारी योजना बनाई जायेगी, लेकिन कुछ कमी के कारण वह संचिका बंधी हुई है। इन सब वर्षों में बंजारा अनुसूचित जनजातियाँ सूची से गायब होती रही। एक मात्र सांत्वना जो उन्हें अनुसूचित होने के बाद प्राप्त हुआ है, वह है राष्ट्रीय मानवाधिकार के द्वारा पारित अध्यादेश। इस कदम एवं तथ्य के साथ अनुसूचित जनजातियाँ काफी संगठित एवं सकारात्मक हो रही है। लोग केवल आशा कर सकते हैं कि उनका दुख-दर्द जल्द ही खत्म हो जाएगा।

अनुसूचित समुदाय से निकलनेवाले लेखक जैसे लक्ष्मण गायकवाड़, आत्माराम राठौड़ तथा नाटकीय सृजन जैसे वुद्धानन्द तनुजा, इस समुदाय के अन्दर जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन का सूचक है लोगों को कल्पनाशील जीवन द्वारा मुख्य सामाजिक परिवर्तन होते हैं, यह सौभाग्य की बात है कि महान बुद्धिजीवी जैसे महाश्वेतादेवी, मल्लिका साराभाई, भूपेन खक्कड़, पी सच्चिदानंद एवं गायत्री स्पीवक अनुसूचित समुदाय से जुड़े कलंक को धो डालने के लिए सक्रिय हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने इस मुद्दे को राष्ट्रीय महत्व के रूप में ले लिया है, हमें आशा करनी चाहिए कि 1871 आपराधिक जनजाति अधिनियम के साथ शुरू होनेवाले निर्दोष की प्रताड़ना का 21वीं सदी में अंत हो जाए, बंजारे भी मानव ही है।



प्रायिक संदिग्ध?

गुजरात तथा राजस्थान की घुमक्कड़ तथा अनुसूचित जनजातियाँ

इक्वेशन्स

नोमेड हिन्दी भाषा में घुमन्तू या परिभ्रामक जनजातियाँ हैं जो अपने पृथक विश्वास, प्रथाओं और परम्परागत पेशों से जाने जाते हैं। भारत में आधिकारिक जनगणना संबंधित आंकड़ों उपलब्ध नहीं होने के कारण इनकी जनसंख्या का अनुमान कर पाना कठिन है। अनुमान के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में उनकी भागीदारी लगभग 7 प्रतिशत है। इनमें से कुछ समुदाय जनगणना में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध हैं परन्तु कई समुदायों पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। घुमन्तूओं को मोटे तौर पर पशुचारी तथा गैरपशुचारी घुमन्तू समुदायों में बाँटा जा सकता है। पशुचारी घुमन्तू, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कृषि एवं पशुपालन पर आश्रित हैं। इन पशुचारक घुमन्तूओं की जीविका कृषि उत्पादन चारे हेतु गोचर भूमि पर आधारित होती है। ये प्रायः हिमालय के क्षेत्र में तथा राजस्थान के कुछ भागों में पाये जाते हैं। गैर पशुचारी घुमन्तू स्थानबद्ध समुदाय पर जीविका हेतु आश्रित हैं तथा उन समुदायों को वस्तु तथा सेवायें उपलब्ध करवाते हैं।

इन घुमन्तू समुदायों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ उनकी आर्थिक गतिविधियों से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ी हुई हैं। अधिकांश गैर पशुचारी समुदाय परम्परागत रूप से पाँच से पच्चीस सदस्यों के समूह में एक वरिष्ठ सदस्य के नेतृत्व में भ्रमण करते हैं, जो समूह में

उत्पन्न होने वाले विवादों को निपटाने के लिये जिम्मेवार होता है। हरेक उपसमूह स्वतंत्र रूप से अलग अलग मार्गों में अपनी जीविका को पूरा करने के लिये साल के अधिकांश समय भ्रमण करते हैं तथा अपने स्वायत्त शासन प्रणाली को कायम रखते हैं। कुछ समुदायों में बैठक तथा वार्षिक शिविर का रिवाज है जहाँ पुनर्मिलन, विवाह तथा मवेशियों का व्यापार आदि सम्पन्न होता है।

इन समुदायों की घुमक्कड़ जीवनशैली उनके सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं के इर्द गिर्द व्यवस्थित है जिसमें उपस्कर तथा बर्तनों का निर्माण, मौलिक सामग्री जैसे नमक, ऊन आदि की आपूर्ति, दवायें तथा जड़ी - बूटियाँ तथा मनोरंजन प्रदान करना आदि शामिल है। गैर पशुचारी समुदाय मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब तथा हरियाणा राज्य में पाये जाते हैं।

अधिकांश घुमन्तू समुदाय "अनुसूचित जनजातियाँ (De Notified Tribes - DNT)" के अन्तर्गत आते हैं। ये जनजातियाँ वैसे समुदाय से हैं जिन्हें मूलतः "अपराधी जनजातियाँ अधिनियम, 1871" के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया था तथा स्वतंत्रता के पश्चात इन्हें अधिसूचना से हटा दिया गया था। इस अधिनियम के अनुसार ये समुदाय "व्यवस्थित रूप से असंज्ञेय अपराधों के आदि" के रूप में परिभाषित किये गये थे। एक बार यदि ये जनजातियाँ अपराधी के रूप में अधिसूचित हो जाती थीं तो इसके सभी सदस्यों के लिये स्थानीय दण्डाधिकारी के पास स्वयं को पंजीबद्ध करवाना आवश्यक था जिसका उल्लंघन करने पर उन पर भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत आरोप तय किया जाता था। 1952 में इस अधिनियम को वापस लेने के साथ ही गैर अधिसूचित करने की प्रक्रिया भी प्रभाव में आ गई। घुमन्तू तथा गैर अधिसूचित दोनों पदों को एक ही श्रेणी में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। जहाँ घुमन्तू एक पारिस्थितिक-जातीय तथा सांस्कृतिक पद है वहीं अपसूचित पद का राजनैतिक अर्थ है। चूँकि अधिकांश घुमन्तू राजनैतिक शब्द अनुसूचित के अन्तर्गत आते हैं तथा अनुसूचित जनजातियाँ भी प्रायः घुमन्तू हैं अतः दोनों का सामान्यतः उपयोग विनियम रूप में होता है।¹ 1871 अधिनियम के अन्तर्गत लगभग 160 समुदाय अपराधी के रूप में चिन्हित थे² और इस अधिनियम के रद्द होने के समय इनकी संख्या 190 थी।

यह केस अध्ययन अनुसूचित जनजातियों तथा घुमन्तू समुदायों के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय और एक सम्मानपूर्ण जीवन के लिये उनके संघर्ष को दर्शाता है।



अशक्तिकरण का इतिहास

उपलब्ध जानकारीयों यह संकेत करती हैं कि ये घुमन्तू समुदाय 19वीं शताब्दी के मध्य तक समाज तथा इसकी आर्थिक प्रक्रियाओं का अभिन्न अंग थीं। अपनी दक्षताओं तथा लम्बी दूरी तक अपने सम्बन्धियों के साथ भ्रमण करने की क्षमता के कारण ये स्थानबद्ध क्षेत्रिक समुदायों को आवश्यक वस्तु एवं सुविधा प्रदान करते थे। स्थानबद्ध तथा घुमन्तू जीवनशैली प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में सहअस्तित्व में सद्भावपूर्वक रह रही थीं। समाज में घुमन्तू जीवनशैली अस्वीकार्य नहीं थी और यहाँ के कई स्थावर समुदाय के लोग भी विशिष्ट अवसरों पर घुमन्तू शैली को अपनाते थे। उदाहरण के तौर पर भारतीय कृषि परम्परागत रूप से वर्षों आधारित रही है और मानसून के बाद तीर्थाटन पर जाना इनकी संस्कृति का अनिवार्य अंग था। भारत में राजा तथा शाही राज्य किसानों के बीच से सैनिकों को नियुक्त करते थे। ये स्थायी सेना नहीं होती थी। शासक प्रायः प्रजा को साल में 4 - 5 महीने भ्रमणशील रखने तथा शेष 6 - 7 महीनों में खेती में व्यस्त रखने को प्रोत्साहित करते थे।¹ एक दृष्टिकोण यह भी है कि घुमन्तू परम्परा सुखाड़ तथा बाढ़ जैसी प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न स्थितियों से निपटने के लिये विकसित हुई।

अधिकांश घुमन्तू तथा अनुसूचित जनजातियों के साथ हो रहे अपमान के बीज ऐतिहासिक प्रक्रिया में गहरे छिपे हैं। इनके शोषण तथा अशक्तिकरण पर इन्हें धकेलने का षड्यंत्र औपनिवेशिक काल में प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश इनकी जीवनशैली तथा इनके पेशों के स्पष्ट नहीं होने के कारण अधिक सशंकित रहते थे। जैसे छोटे व्यापारी, लोहे तथा हथियार बनाने के काम में लगे समुदाय, नट, फकीर, तथा साधुओं से ये विशेष सशंकित थे। समाज में स्थायी जीवनशैली की अधिक मान्यता हो जाने के कारण घुमन्तू समुदाय विलग हो गये। विशेषतः 1857 के बाद जब ब्रिटिश इस बात से बहुत आशंकित थे कि ये समुदाय आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त थे। 1857 के पहले तथा उसके उपरान्त गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, झारखण्ड तथा मध्य एवं पूर्वी भारत के कुछ भागों में प्राकृतिक

संसाधनों पर अपने अधिकारों की रक्षा के लिये आदिवासियों ने अनेक आंदोलन किए। ब्रिटिश प्रायः इन घुमन्तूओं द्वारा नाटक, गीत, नृत्य आदि माध्यमों के प्रदर्शन के कारण इन्हें विद्रोह को भड़काने वाले संचार का माध्यम अथवा गुप्तचर मानते थे तथा उन्होंने इसपर शिकंजा कसना प्रारम्भ कर दिया। 1857 एक ऐसा मील का पत्थर था जहाँ से औपनिवेशिक ताकतों ने इन घुमक्कड़ समुदायों के आंदोलन पर नकेल कसने के लिये कठोर उपाय लागू किये। अपराधी जनजातियाँ अधिनियम, 1871⁶ को ब्रिटिशों द्वारा लागू करना घुमन्तू जनों की जीवनशैली तथा आजीविका में परिवर्तन लाने वाला महत्वपूर्ण मोड़ था। देश की स्वतंत्रता तथा उसके पश्चात् 1952 में अपराधी जनजातियाँ अधिनियम, 1871 को रद्द कर इन्हें अनुसूचित⁷ करने के बावजूद आज भी ये घुमन्तू, समाज की आशंका तथा कलंक का दांड़ेल रहे हैं।



"अपराधिकता" को रोकने के लिये विधिक संरचना

1871 का अपराधी जनजातियाँ अधिनियम संभावित अपराधिक गतिविधियों की रोकथाम के लिये लागू किया गया था तथा इसे उन सैकड़ों जातीय समूहों पर लगाया जो कि ब्रिटिश साम्राज्य तथा समुदाय के लिये संभावित खतरे के रूप में माने जा रहे थे। इस विधिक संरचना ने कई सीमांत समूहों। मुख्यतः घुमन्तू तथा आदिवासियों को आदतन अपराधी के रूप में दागी कर दिया तथा उनकी निगरानी के लिये व्यापक प्रबंध किये गये। जब यह विधेयक 1871 में टी. वी. स्टीफन्स द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा था उस समय जातियों के संबंधित मूल सिद्धान्तों पर जोर दिया गया था जो कि पेशे, पालन पोषण तथा पृष्ठभूमि से जुड़े हुए थे।⁸

अधिनियम की धारा 2 के अनुसार "यदि स्थानीय शासन के पास ऐसा विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि कोई जनजाति, दल या लोगों का समूह व्यवस्थित रूप से असंज्ञेय अपराध करने का व्यसनी है तो वह ऐसी वाद अथवा घटना को गवर्नर जनरल की

काऊन्सिल में प्रतिवेदित कर सकेगी, तथा ऐसे जनजाति, दल या वर्ग को आपराधिक जनजाति घोषित करने संबंधित अनुमति के लिये अनुरोध कर सकेगी।" अधिनियम के अन्य सभी प्रावधान घुमन्तु लोगों के मौलिक अधिकारों को वश में करने के उद्देश्य से लागू किये गये थे। उदाहरण के तौर पर इस अधिनियम में सुधार बस्तियों का प्रावधान है जहाँ पर कि स्थानीय शासन अनुशंसा पर किसी भी अधिसूचित जनजाति को लाकर रखा जा सकता था।

अहमदाबाद में छारानगर एक ऐसी ही सुधार बस्ती थी जो कि छारा, भाट तथा कंजर समुदाय के घुमन्तु जनों के पुनर्वास तथा उन्हें सभ्य बनाने के लिये स्थापित की गई थी। इन समुदायों को अपने आप को स्थानीय दण्डाधिकारी के यहाँ सूचीबद्ध करवाना होता था तथा ऐसा नहीं होने पर उनके खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता के विभिन्न प्रावधानों के अन्तर्गत मुकदमें दायर किये जा सकते थे। ये समुदाय अपने मौलिक अधिकारों जैसे निवास की स्वतंत्रता, बच्चों के पालन पोषण, उपहार खरीदने एवं अपने नाच, गानों तथा अन्य कलाओं के प्रदर्शन से भी वंचित हो गये हैं। यदि ये अपनी निर्धारित निवास सीमा से बाहर बिना किसी अनुमति के पाये जाते थे अथवा सुधार बस्ती से बाहर भागने के क्रम में पकड़े जाते तो उन्हें बिना किसी वारन्ट के गिरफ्तार कर लिया जाता था। यह अधिनियम जो प्रारंभ में बॉम्बे प्रेसिडेन्सी क्षेत्र में ही लागू था 1924 में इसमें संशोधन कर मद्रास प्रेसिडेन्सी में भी लागू करने के लिये विशेष प्रावधान किये गये।



जन्मजात अपराधी

1947 में जब पूरा देश स्वतंत्रता का उल्लास मना रहा था इन समुदायों के हजारों लोग सुधार बस्तियों के अन्दर बन्द थे क्योंकि वे अपराधी के रूप में ही जन्म लिये थे। उनकी 80 वर्षों की सामूहिक कैद का अन्त अगस्त 1952 में हुआ जब अपराधी जनजातियाँ अधिनियम रद्द किया गया। तब तक स्वतंत्रता के पाँच वर्ष बीत चुके थे और भारत के अपने

लिखित संविधान को लागू हुए भी दो वर्ष व्यतीत हो चुका था। चारानगर के लोगों में आज भी उस दीर्घकालिक संघर्ष की याद इतनी प्रबल है कि वे अपना स्वतंत्रता दिवस 30 अगस्त 1952 को ही मनाते हैं।

मामूली रद्दोबदल तथा कुछ सुविधाओं के अतिरिक्त "आदतन अपराधी अधिनियम" अपने पुराने अवतार से जरा भी भिन्न नहीं है और इसका उद्देश्य लोगों को अधीन बनाना तथा उनके मूलभूत मानव अधिकारों का हनन करना है। हेबिचुल ओफेन्डर्स अधिनियम के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिसका पिछला आपराधिक रिकार्ड रहा है चाहे वह अधिनियम के लागू होने के पूर्व हो, पुलिस तथा जिला प्रशासन की बारीक छानबीन के अन्तर्गत आता है। 1952 में डीनोटिफिकेशन की प्रक्रिया ने इन समुदायों को किलेनुमा कैद से बाहर किया परन्तु वैसे समुदाय जिन्हें पूर्व में ही अपराधी के रूप में दागदार कर दिया गया था उनकी परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया। यह अधिनियम राज्य सरकार को जिला दण्डाधिकारी को निर्देश देने का अधिकार देता है कि वो अपने जिलों में आदतन अपराधियों को पंजीबद्ध करें। आंदोलनों पर प्रतिबंध तथा इन बस्तियों में सुधारात्मक प्रशिक्षण इस अधिनियम के कुछ मुख्य प्रावधान हैं। गुजरात की तरह भारत के अन्य राज्य सरकारों द्वारा भी आपराधिक जनजति अधिनियम के रद्द होने के बाद कई हेबिचुल ओफेन्डर्स अधिनियम पारित किये गये जो कि अपराधी जनजातियाँ अधिनियम की याद दिलाते हैं।

चारानगर के बुजुर्ग कहते हैं कि अहमदाबाद बस्ती से मुक्त किये जाने के बाद सरकार ने उनकी आजीविका हेतु कुछ भी नहीं किया। नाच, गाना तथा नाटक अतीत की बात हो चुकी थी तथा उन्हें इनमें से किसी भी विधा को बस्ती के अन्दर प्रदर्शित करने की अनुमति नहीं थी। बिना किसी कौशल या प्रोत्साहन के इन्हें शहरी समाज की उस मुख्यधारा में अपनी जगह बनाने के लिये बेसहारा छोड़ दिया गया, जहाँ कि परिस्थितियाँ बीच के 80 वर्षों (1871 से 1952 के दरम्यान) आधुनिकीकरण के प्रभाव से बहुत हद तक परिवर्तित हो चुकी थीं।

चारा पुरुष सदा से संदेह की दृष्टि से देखे जाते हैं। किसी भी बड़े त्यौहार जैसे गणेश चतुर्थी, दीवाली, नवरात्रि आदि के अवसर पर असामाजिक गतिविधियों को रोकने के नाम पर अधिकांश छारा पुरुषों को बन्दी बना लिया जाता है। प्रायः पुलिस अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के फेर में इनपर झूठे मुकदमे दायर करती है। अहमदाबाद, बड़ौदा तथा आसपास के

अन्य बड़े शहरों में रह रहे अन्य गैर अधिसूचित जातियों की भी कमोबेश यही कहानी है परन्तु अहमदाबाद का चारानगर समाज तथा कानून की नजर में सबसे अधिक कलंकित क्षेत्र माना जाता है।

देशभर में इन समुदायों को अपराधी घोषित करने के कई उदाहरण आज भी मौजूद हैं। 2001 में उत्तर प्रदेश में हत्याओं की श्रृंखला के बाद गृह मंत्री ने लोक सभा में अपने व्यक्तव्य में अनुसूचित जनजातियों को इन घटनाओं का अभियुक्त ठहराया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि "हत्या से संबंधित छानबीन के निष्कर्ष इस ओर साफ इशारा करते हैं कि इसके अभियुक्त वही लोग हैं जिन्हें ब्रिटिश शासन¹⁰ में अपराधी जनजाति घोषित किया गया था।" इन लोगों को सुधारने तथा सभ्य बनाने की उपनिवेशवादी सोच की झलक पुलिस तथा पशासन के व्यवहार से भी स्पष्ट होती है। साबरमती टोला के लोगों के अनुसार समाज कल्याण विभाग के कार्यकर्ता उनके बस्तियों में घूमते हैं और पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों को गाड़ी में भरकर उन्हें "सुधारने" के लिये ले जाते हैं।



योजनाबद्ध अपवर्जन

आजीविका, भूमि तथा निवास के लिये लड़ाई सभी धुमन्तू समुदायों में सामान्य है। स्थानीय गैर सरकारी संगठन इन समुदायों की सामुदायिक, पंचायती तथा विवादित सरकारी भूमि तक पहुँच बनाने में मदद करते हैं तथा इन विकल्पों को राजस्व विभाग के समक्ष अनुमति हेतु रखते हैं।¹¹ कई धुमन्तू समुदायों के परिवारों को ऐसी भूमि तक पहुँच मिली है तथा उन्हें घर बनाने के लिए पट्टा भी मिला है, वहीं अभी भी बहुत बड़ी संख्या में ये लोग अपने बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये संघर्षरत हैं।

जीवन तथा आजीविका के बुनियादी अधिकार¹² को सुनिश्चित करने के अतिरिक्त भारतीय संविधान अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को संरक्षण देने के लिये ऐसे समुदायों की दशा की पड़ताल के लिये राष्ट्रीय आयोग के नियुक्ति को आवश्यक निर्धारित करता है।

इसके अतिरिक्त संविधान कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन का आश्वासन देता है तथा अनुच्छेद 275 (1)¹³ एवं अनुच्छेद 243 के अन्तर्गत विधायिका तथा पंचायतों में विशेष आरक्षण प्रदान करता है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के लिये अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार प्रतिशोध) अधिनियम¹⁴ वर्ष 1989 में लागू किया गया था। कई घुमन्तू समुदाय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति वर्गों से बाहर रखे जाने के कारण इन कानूनी सुरक्षा तथा लाभ से वंचित हैं। निवास तथा अन्य बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित किये जाने के कारण इन समुदायों की आजीविका गंभीर रूप से दुष्प्रभावित हुई है। अपवर्जन के क्रम में समाज को आवश्यक वस्तुएँ तथा सेवायें उपलब्ध करवाने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को अनदेखा रह जाता है।

1998 में सहमना व्यक्तियों, शिक्षाविदों तथा सक्रिय कार्यकर्ताओं द्वारा अनुसूचित तथा घुमन्तू जनजातियों एवं समुदायों अधिकार हेतु कार्यदल के गठन के साथ ही स्वतंत्रता, सम्मान तथा आजीविका के संघर्ष की शुरुआत की गई। इस आन्दोलन को महाश्वेता देवी, डा. जी एन देवी ने नेतृत्व प्रदान किया जिसमें आत्माराम राठौर, लक्ष्मण गायकवाड़, अनिल कुमार पाण्डेय कांजी पटेल, रतन कात्यायनी आदि सक्रिय कार्यकर्ता भी जुड़े। पश्चिम बंगाल के पुरुलिया में बुधन साबर की पुलिस हिरासत में बर्बरतापूर्ण हत्या के बाद यह दल तुरन्त गठित हुआ। महाश्वेता देवी ने इस संबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर किया। घटना से संबंधित पुलिस अधिकार निलंबित किये गये तथा इस संबंध में सी बी आई की जाँच चल रही है। बुधन की विधवा को क्षतिपूर्ति के तौर पर एक लाख रुपये दिये गये। जब बड़ौदा में महाश्वेता देवी को वेरियर एल्विन मेमोरियल व्याख्यान के लिये कहा गया तो उन्होंने अहमदाबाद में अपसूचित छारा जनजातियों द्वारा बुधन नाट्य दल गठित किये जाने का उल्लेख किया। दक्षिण बजरंगी के प्रोत्साहन पर छारा बच्चों तथा युवा लामबन्द होकर जनजातियों, घुमन्तू समुदाय तथा अपसूचित जनजातियों से संबंधित समकालीन मुद्दों पर करतब दिखा रहे हैं। उनलोगों ने बाल व्यापार तथा अश्लीलता संबंधित मुद्दों को भी उठाया है। दक्षिण भाई कहते हैं "छारा लोग बहुत उर्जावान हैं। इस उर्जा को सकारात्मक दिशा देने की आवश्यकता है। नाटक हमारे प्रति समाज, युवाओं तथा पुलिस को संवेदनशील बनाने के लिये मंच प्रदान करता है।" परन्तु सभी

समुदायों के पास समाज तथा प्रशासन द्वारा दर्शाये एकरूपता को बदलने के अवसर नहीं हैं।

संविधान के विभिन्न प्रावधान यथा अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समानता), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध) तथा अनुच्छेद 21 (जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) लाखों घुमन्तू तथा अनुसूचित जनजातियों के लिये आज भी स्वप्न है। भारत नागरिक अधिकार पर विभिन्न अभिसमयों में एक पक्ष रहा है जिसमें से नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आई. सी. सी. पी. आर), आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र (आई. सी. इ. एस. सी. आर), तथा सभी प्रकार के जातीय भेदभाव के उन्मूलन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आई. सी. ई. आर. डी.) आदि मुख्य हैं। परन्तु अनुसूचित जनजातियों पर इन अभिसमयों को लागू करने को नजरअंदाज किया गया है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग ने आदतन अपराधी अधिनियम को समाप्त करने के लिये 2005 में अनुशंसा की थी परन्तु इस ओर केन्द्र तथा राज्य सरकारों के प्रयास अभी तक नहीं दिख रहे हैं।



क्या व्यवस्थापन इसका हल है ?

गत दो दशकों से घुमन्तू तथा अनुसूचित समुदायों को भूमि तथा पर्याप्त आवास के अधिकार द्वारा बसाने हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। मतदाता पहचान पत्र, राशन कार्ड तथा बी.पी.एल. (गरीबी रेखा के नीचे के लिये कार्ड) आदि के द्वारा नागरिक अधिकारों को मान्यता देना आदि भी इन समुदायों को विकास प्रक्रिया की मुख्यधारा में शामिल करने की ओर अन्य महत्वपूर्ण प्रयास है। परन्तु इन समुदायों द्वारा सहे जा रहे सामाजिक भेदभाव तथा हिंसा को नियंत्रित करने के लिये उपयुक्त विधिक तथा प्रशासनिक तंत्र का सर्वथा अभाव है। व्यवस्थापन के कारण कुछ समुदायों में स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आजीविका की सुविधाओं तक पहुँच बनी है परन्तु अधिकांश के लिये यह संघर्ष अब भी जारी है। जहाँ एक ओर उनकी घुमन्तू

जीवनशैली समाज की मुख्यधारा को स्वीकार्य नहीं है वहीं दूसरी ओर व्यवस्थापन की प्रक्रिया में भी सरकार तथा समाज सहयोग नहीं कर रहे हैं।

ऐसे अधिकांश समुदाय महसूस करते हैं कि अपनी परम्पराओं तथा पहचान को बनाये रखने के साथ साथ आजीविका तथा आश्रय उनकी सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं। इन समुदायों के अधिकारों तथा पहचान को संरक्षित करने की दिशा में पुनर्वास नीतियों एवं राष्ट्रीय तथा राज्य सरकार पर दिशानिर्देश का अभाव असमंजस की स्थिति को और भी बढ़ाता है। राष्ट्रीय पुनर्वास नीति, 2006¹⁵ तथा जनजाति नीति प्रारूप, 2006 में भी घुमन्तू समुदायों तथा उनसे संबंधित मामलों को दरकिनार किया गया है। इन समुदायों के आधिकारिक स्थिति में व्याप्त अन्तर भी भ्रम की स्थिति उत्पन्न करता है। इनमें से कुछ अन्य पिछड़े समुदाय एवं अनुसूचित जनजाति के अन्दर आते हैं, वहीं अधिकांश अनुसूचित जाति वर्ग में आते हैं और ऐसा कोई भी मंत्रालय या विभाग नहीं है जो कि इन समुदायों को अपने आदेश में समग्रता से सम्मिलित करता हो। अनुसूचित जाति तथा जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम), 1989 भी अनुसूचित जनजाति समुदायों पर लागू नहीं होता है, ऐसी स्थिति में वैसे समुदाय जो कि अपराधी जनजातियाँ अधिनियम, 1871 में सूचीबद्ध हैं पूर्वोक्त अधिनियम के अन्तर्गत अपने नागरिक तथा मानवाधिकारों की रक्षा के लिये योग्य नहीं हैं। सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय द्वारा फरवरी 2006 में अनुसूचित, घुमन्तू तथा अर्ध-घुमन्तू जनजातियों के लिये राष्ट्रीय आयोग¹⁶ के गठन के साथ इन समुदायों के चिरकालिक संघर्ष की परिणामस्वरूप बेहतर भविष्य की आशा का संचार हुआ है।



राजस्थान की घुमन्तू जातियाँ¹⁷

राजस्थान, जो कि क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य (342236 वर्ग कि.मी.)¹⁸ है, आदिवासी तथा घुमन्तू समुदायों के एक बड़े भाग का निवास स्थान है। यह

वैसे अनेक घुमन्तू समुदायों की भी मूल भूमि रही है, जो देश के अन्य भागों में पलायन कर गये हैं। भौगोलिक रूप से राजस्थान में काफी विभिन्नतायें हैं। पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में पहाड़ी तथा जंगल क्षेत्र हैं तो राज्य के पश्चिमी भाग में शुष्क मरुभूमि विस्तृत है। अरावली श्रृंखला अपने समृद्ध वनस्पति, प्राणिजाति तथा खनिज सम्पदा के साथ कई घुमन्तू समुदायों को आश्रय देती है। ये समुदाय अपने पारम्परिक व्यवसाय के नाम से जाने व पहचाने जाते हैं जैसे नमक तथा मवेशियों के व्यापारी *बंजारा* के नाम से, गीत तथा नृत्य द्वारा पौराणिक प्रस्तुति करने वाले *भोपा* के नाम से, शिकारी तथा खोजी *बावरिया* के नाम से, लोहे के व्यवसायी *गोड़िया लुहार* के नाम से, साँप का प्रदर्शन करने वाले *कालबेलिया* या *संपेरा* के नाम से तथा त्यौहार आदि में कलाबाजियों का प्रदर्शन करने वाले *नट* के नाम से जाने जाते हैं।



इतिहास तथा अवतरण

हरेक घुमन्तू समुदाय अपनी घुमन्तू जीवन शैली के साथ पारम्परिक व्यवसाय तथा सांस्कृतिक प्रथाओं की दृष्टि से विशिष्टता रखता है। अलवर जिले में अधिकांश समुदाय अनुभव करते हैं कि दिल्ली में मुगल शासन तथा राजस्थान में राजपूत शासन में उनका रूतबा अच्छा था। कुछ इस बात पर विश्वास करते हैं कि वे राजपूत (क्षत्रिय¹⁹) हैं जो राजपूतों पर मुगलों के अधिकार के बाद धीरे-धीरे समाज तथा अर्थव्यवस्था से विलग होते गये।

गड़िया लोहार (लुहार जो कि छकड़े से घुमते हैं) समुदाय अपने को चित्तौड़ के महाराणा प्रताप से संबंधित मानते हैं, जो कि 16वीं सदी के प्रतापी राजपूत राजा थे। खैरथाल गाँव से गड़िया लुहार समुदाय का एक सदस्य रोहतास कहते हैं "हम लोग चित्तौड़ के ठाकुर (राजपूत²⁰) थे और महाराणा प्रताप की सेना थे। हमारे पूर्वज बहुत हुनरमन्द थे और उन्होंने महाराणा की सेना की मदद लोहे के शक्तिशाली हथियार बना कर करते थे। एक दिन

हमारे परिवार के एक सदस्य ने एक ब्राह्मण और उसकी गाय को मार डाला। उस ब्राह्मण ने हमारे समुदाय को श्राप दे दिया और तब से हम घुमन्तू बन गये हैं।"

अन्य घुमन्तू समुदायों की भी कहानी ऐसी ही है। उदाहरण के रूप में बंजारा विश्वास करते हैं कि उनके पूर्वज राजपूत थे तथा वे मारवाड़ एवं जोधपुर के निवासी थे। बंजारा समुदाय की ऊन, रेशम, कीमती पत्थर तथा चीनी जैसी मूल्यवान वस्तुओं के व्यापार तथा परिवहन पर मजबूत पकड़ है। आम धारणा है कि जोधपुर के एक प्रसिद्ध संत बाबा रामदेवड़ा ने इस समुदाय के प्रमुख लक्खी बनजारा द्वारा ठगे जाने पर उन्हें श्राप दे दिया और उसके बाद से उनका मूल्यवान वस्तुओं का व्यापार घट कर नमक तथा निर्माण सामग्रियों को गधे पर ढोने में परिवर्तित हो गया। आज भी राजस्थान तथा गुजरात के बंजारा समुदाय अपने परिवार तथा समाज को विपत्ति तथा बीमारी से बचाने के लिये बाबा रामदेवड़ा की पूजा करते हैं।

अपवर्जन की तीव्रता का अभास बंजारा समुदाय की एक सदस्या सरदारी के अनुभव से होता है जो कि अलवर जिले के बनसूर गाँव में बसने का प्रयास कर रही है। बेहतर जीवन के लिये आवश्यक सभी भौतिक सुविधाओं जैसे कि जमीन तथा घर बनाने के लिये ऋण¹ आदि उपलब्ध होने के बावजूद उसकी अन्यथा व्यवस्थित जिंदगी समाज के असमान व्यवहार तथा तिरस्कार के कारण बिगड़ गई है। उसे गाँव के सामुदायिक चापानल का उपयोग करने की अनुमति नहीं है, उसके बच्चे स्कूल नहीं जा सकते हैं क्योंकि अन्य जातियाँ उन्हें अशुद्ध मानती हैं।

सुआ बावरिया की आपबीती स्थानीय प्रशासन की घुमन्तुओं के प्रति भावशून्यता को दर्शाती है। सुआ बावरिया और उसका बड़ा परिवार राजस्थान के जयपुर जिले में विराटनगर गाँव के बाहरी छोर पर निवास करता है और खेतों में मजदूरी तथा गाँव के खेतों की रात में रखवाली करता है। इस सहजीवी व्यवस्था में सुआ और उसके परिवार को ग्रामीणों का कोषभाजन बनना पड़ा और उनपर गाँव के सामुदायिक भूमि पर अतिक्रमण करने का आरोप लगाया गया। 1999 में जब उसका पूरा परिवार अपनी झोपड़ी के अन्दर सोया हुआ था, उसकी झोपड़ी में आग लगा दी गई। इस आग के कारण उसकी मात्र 6 दिन की बेटी की जान चली गई। इस घटना की नगरपालिका के कानून प्रवर्तक अधिकारियों द्वारा न तो जाँच

की गई और न ही प्रभावित परिवार को सरकार द्वारा किसी प्रकार की सहायता अथवा क्षतिपूर्ति दी गई। बल्कि इसके उलट सुआ को भूमि प्रशासन अधिकारी द्वारा 2000 में अवैध भूमि अतिक्रमण के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। आज भी उसका मुकदमा लम्बित है और सुआ एक स्वयंसेवी संस्था की मदद से न्याय की गुहार लगा रहा है।

अलवर जिला के थाना गाजी बाजार के निकट एक छकड़े पर रही महिला कमला लुहारन की कहानी घुमन्तुओं द्वारा सहे जा रहे भेदभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनकी तरह अन्य 20 परिवारों को भी घर बनाने के लिये सरकार से अनुदान प्राप्त हुआ है। परन्तु अनुदान कि किश्त मिलने में हो रहे विलम्ब के कारण उनके लिये घर को पूरा करना असम्भव हो गया है। वे खुले में रहने को विवश हैं तथा यह उन्हें और खासकर उनके परिवार की जवान लड़कियों को असुरक्षित बनाता है। स्टील, सिरामिक, प्लास्टिक आदि के उत्पादों को लोगों के अधिक तरजीह देने के कारण लोहे के बने उत्पादों को बेचना कठिन हो गया है। कमला कहती हैं "अब तो स्टील, सिरामिक और प्लास्टिक का जमाना है। हम और हमारे बर्तन किस काम के?"

इन समुदायों को आजीविका हेतु परम्परागत व्यवसायों को त्याग कर नये साधन अपनाने के लिये विवश कर दिया गया है। इनमें से अधिकांश दिहाड़ी मजदूर बन गये हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में "बेलदार" कहा जाता है। कुछ तो काम तथा मजदूरी की तलाश में दिल्ली जैसे बड़े शहरों की ओर पलायन कर गये हैं जहाँ वे अपनी घुमन्तू पहचान को छिपा कर रख सकते हैं। गाने बजाने में लगी परम्परागत जातियाँ अब अपनी जीविका चलाने के लिये अलवर में बन रहे नये होटलों²² का रुख कर रही हैं। कैलाश भोपा सारंगी बजाकर तथा बाबा रामदेवड़ा और बापूजी महाराज के भजन गाकर अपना जीवन बसर करते हैं। पर्यटकों के मौसम में वे तथा समुदाय के अन्य सदस्य अलवर में नीमराणा किले एवं अन्य पर्यटन आकर्षणों के पास अपने हुनर का प्रदर्शन कर रोजाना 100-200 रुपये कमा लेते हैं। परन्तु यह आय का स्थायी संसाधन नहीं है और जब वे गाते बजाते नहीं होते तो उन्हें दिहाड़ी मजदूरी का काम करना होता है।

वनों तथा वन्यजीवों पर जीविका हेतु आश्रित समुदायों की स्थिति सबसे खराब है। वन्य प्राणी (संरक्षण) अधिनियम, 1972 (भाग III धारा 4) किसी भी मानव द्वारा वन्य जीवों तथा

उनके ठिकानों पर शिकार को प्रतिबंधित करता है। दादर गाँव का संपेरा केसरनाथ अपने परम्परागत पेशों को बचाये रखना चाहता है और उसके मतानुसार आम धारणा के ठीक विपरीत संपेरा समुदाय विलुप्तप्राय सरीश्रृप प्रजातियों को कहीं अधिक संरक्षा व संरक्षण देता है। वे साँप तथा अन्य कीड़ों के जहर से लोगों को बचाने के लिये दवा बनाते हैं और उपचार भी करते हैं। वर्तमान में वन विभाग के नियमों के कारण समुदाय का कोई भी सदस्य संपेरे का परम्परागत पेशा नहीं अपना सकता है। यदि वे इस पेशे में लिप्त हैं तो बन्दी होने का अधिक खतरा है। इसके फलस्वरूप कुछ परिवार दिहाड़ी मजदूर के तौर पर दिल्ली पलायन कर गये हैं और कुछ अन्य फुटकर दुकानों में उत्पाद बेचकर अपना गुजारा चला रहे हैं।

बावरिया समुदाय तथा अन्य जो कि सीधे तौर पर वनों पर जीविका के लिये आश्रित हैं उनकी स्थिति और भी बदतर है। अपराधी जनजातियाँ अधिनियम तथा आदतन अपराधी अधिनियम²³ दोनों में सूचित समुदाय होने के कारण उनपर अपराधी होने का अब भी ठप्पा लगा हुआ है। बावरिया ख्यात शिकारी थे वन्य जातियों का शिकार कर उनके अवयवों को निजि उपयोग में लाते हैं अथवा स्थानीय बाजार में बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। इतिहास गवाह है कि जानवरों को खोज निकालने की अद्वितीय क्षमता के कारण ये राजघराने के सदस्यों को शिकार में मदद करते थे। शिकार के प्रतिबंधित हो जाने के कारण अब इन्हें पुलिस तथा वन विभाग द्वारा उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। भगवान सहाय बावरिया जो एक परम्परागत शिकारी हैं अब अलवर के पालडी गाँव में दैनिक मजदूरी पर चौकीदारी का काम करते हैं।²⁴ सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान में अनाधिकृत शिकार में संलिप्तता के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा है। हालांकि वे कहते हैं कि उन्होंने पिछले 20 वर्षों से कोई शिकार नहीं किया है।

अन्य घुमन्तू समुदाय भी चारे तथा जलावन के लिये वनों पर आश्रित हैं। वन विभाग के नियम लोगों के वनों तक पहुँच को प्रतिबंधित करते हैं। राजस्थान में इन समुदायों का न तो जनजातीय दर्जा रहा है और वनों में स्थायी रूप से निवास नहीं करने के कारण उन्हें अन्य वन्य निवासी समुदाय भी नहीं माना जाता है। इस कारण इन समुदायों के वन सम्पदा पर प्रथागत अधिकारों को सरकार नहीं मानती है। हाल ही में पारित अनुसूचित जनजाति एवं अन्य वन्य निवासी (वन अधिकार) अधिनियम 2006 में इन समुदायों के अधिकारों को

मान्यता देने की संभावना तथा प्रावधान हैं यदि इस अधिनियम में से संबंधित नियम बनाते समय इनके हितों को भी ध्यान रख जाय।



गुजरात के घुमन्तू :

फीकी पड़ती शिल्प विधायें, और आधुनिक विकास के खतरे²⁵

गुजरात में घुमन्तू अपनी परम्परागत शिल्प विधाओं गीत, नृत्य, करतब, जादू, सर्प विधा से परम्परागत उपचार एवं दवाओं के लिये ख्यात हैं। अहमदाबाद तथा बड़ौदा जैसे शहरों में परम्परागत पेशों के पर्याप्त अवसर नहीं होने के कारण ये कलाविधायें लुप्त होती चली गई हैं। छारा जनजाति के परम्परागत नाटक तथा नृत्य, बैजनियों की वाद्य यन्त्र में निपुणता, छद्म वेश बनाने में बहुरूपियों की दक्षता लुप्त होने के कगार पर है। लोक प्रचलन तथा माँग के आधार पर इन लोगों ने समय समय पर अपनी कलाविधाओं में परिवर्तन भी किया है। अहमदाबाद के कुबेरनगर में बाजेवाली की चाली में रह रहे नवल भाई बैजनिया समुदाय के हैं। ये ढोल²⁶ तथा शहनाई के वादन में निपुण हैं तथा इन्होंने सिन्धी लोक संगीत और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत अपने पूर्वजों से सीखा है जो कि सिंध (पाकिस्तान) से आकर यहाँ बसे थे। वे कहते हैं कि भारत में जन्मे तथा पली बड़ी पीढ़ी को इन कलाओं की शिक्षा नहीं दी गई और अब नई पीढ़ी इसे जीविका के स्थायी विकल्प के रूप में नहीं देखती है।

अधिकांश युवा दैनिक मजदूरी में व्यस्त हैं। जो सक्षम हैं उन्होंने अपनी जीविका चलाने के लिये ऑटो रिक्शा खरीद लिया है या चलाने के लिये किराये पर ले रखा है। वे कहते हैं "आज के समय में लोग बॉलीवुड के फिल्मी संगीत को शादी - त्यौहारों में अधिक पसन्द करते हैं। अहमदाबाद में कुछ सिंधी परिवारों को छोड़कर शायद ही कोई शास्त्रीय या सिंधी लोक संगीत को पसन्द करता है। मैंने भी अपने घर को चलाने के लिये फिल्मी संगीत बजाना शुरू कर दिया है।"

समाज में गीत, नृत्य तथा नाटक के द्वारा जीविका चलाने को सभ्य नहीं माना जाता है। दौरे गोसाईं समुदाय के नारायण भाई कहते हैं "उसी उच्चवर्ग के लोग फिल्मों के लिये पैसे खर्च करने को तत्पर हैं जिसमें प्रायः नाच तथा गाने होते हैं परन्तु वे हमारे प्रदर्शन के लिये पैसे नहीं दे सकते। आखिर अनुसूचित जनजातियों के कलाप्रदर्शन को सभ्य क्यों नहीं माना जाता?"

फीकी पड़ती इन लोक विधाओं पर दबाव आधुनिक विकास के खतरे के कारण है। शहरों के सौन्दर्यीकरण के नाम पर विस्थापन का खतरा गहराता जा रहा है। बड़ौदा नगर निगम की सड़क चौड़ीकरण की योजना में मंझलपुर की स्थिति योजना में बाधक होने के कारण वहाँ के बैजनिया बस्ती के लोगों को बड़ौदा नगर निगम की ओर से जगह खाली करने का नोटिस दिया गया है। मंझलपुर की तरह अन्य कई अनुसूचित बस्तियाँ भी विकास के नाम खाली कराई जा रही हैं।¹⁷ अहमदाबाद में छारा समुदाय की बस्ती साबरमती टोला को भी अहमदाबाद तथा गाँधीनगर में आने वाली वृहत्तर शहर परियोजनाओं के कारण खाली कराये जाने की आशंका है।

पंचमहल जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में घुमन्तू समूहों को अभी भी अपने परम्परागत पेशों में लिप्त देखा जा सकता है। परन्तु यहाँ पर चुनौती इनके परम्परागत रूप को बनाये रखने की है क्योंकि ये मौसमी प्रकृति के हैं। कुछ लोगों के पास निजि कृषि योग्य भूमि है तथा स्थायी निवासी अपने परम्परागत शिल्प विधाओं को बचाये रखने की बेहतर स्थिति में हैं। पंचमहल जिले के लूनावाडा के निकट नीमडा फलिया गाँव में गालाभाई नाथाभाई नट एवं उनके समुदाय के अन्य सदस्य इसका एक उदाहरण हैं। आज से 100 वर्ष पूर्व लूनावाडा के राजा वीरभद्र सिंह से उन्हें यह गाँव तथा खेती के लिये भूमि पारितोषिक के रूप में प्राप्त हुआ था। अभी गाँव के प्रत्येक नट परिवार के पास अपना स्थायी घर और खेती के लिये जमीन है। 15 वर्ष से अधिक आयु के सभी पुरुष नट समुदाय के पारम्परिक करतबों में प्रशिक्षित हैं और पूरा गाँव आठ कला समूहों में विभाजित है। सामान्यतः प्रत्येक समूह में 8 - 10 सदस्य होते हैं जो कि कला कि विभिन्न पक्षों में पारंगत होते हैं। इनमें से कुछ ढोल बजाते हैं, कुछ करतब में माहिर हैं तो कुछ 25-30 फीट की ऊँचाई पर दो खम्भों को जोड़ने वाली रस्सी पर चल कर अपनी कला दिखाते हैं। महिलायें इनमें भाग नहीं लेती हैं और वे खेती तथा घरेलू कामों में मदद करती हैं।

दीवाली के उपरान्त ये समूह विभिन्न दिशाओं में भ्रमण कर गाँवों में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। गुजरात में खेरा, पंचमहल, दाहोद, छोटा उदयपुर तथा राजस्थान में डूंगरपुर आदि कुछ ऐसे जगह हैं जहाँ वे प्रतिवर्ष जाते हैं। गालाभाई नट महसूस करते हैं कि टेलीविजन, फिल्म और मनोरंजन के अन्य आधुनिक साधनों ने इनकी कला की प्रासंगिकता को प्रभावित किया है परन्तु इसका असर अधिकतर शहरों में है। उनका समूह अहमदाबाद, सूरत और बड़ौदा में प्रस्तुति करता है परन्तु हाल के वर्षों में उन्होंने वहाँ जाना बन्द कर दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई लोग उनके कार्यक्रमों को देखने आते हैं। गालाभाई कहते हैं "आधुनिकता और अपनी कला को जिन्दा रखने की चुनौती के कारण हमने भी अपनी शैली में कुछ बदलाव लाया है। परम्परागत ढोल की जगह कैसियो कीबोर्ड ने ले ली है वहीं लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिये एम्प्लिफायर तथा वूफर का सामान्यतः प्रयोग किया जा रहा है। हम मनोरंजन का सबसे सस्ता और सर्वसुलभ माध्यम उपलब्ध करवाते हैं, विशेषतः ग्रामीण लोगों के लिये। हम किसी टिकट या पैसे की माँग नहीं करते, लोग जो भी खुशी से देते हैं, वही हमारे लिये बहुत है।"

दुर्भाग्यवश पंचमहल के अन्य कलाकार समुदायों की स्थिति भी ऐसी नहीं है। लोग, जिनके पास आजीविका के वैकल्पिक स्रोत नहीं हैं, अपना समय और ऊर्जा अपनी कलाओं को बचाये रखने में लगाने के इच्छुक नहीं हैं। इनमें से कई दूसरों के खेतों में काम करते हैं, दैनिक मजदूर के रूप में निर्माणस्थलों पर काम करते हैं अथवा आजीविका की तलाश शहरों की ओर रुख करते हैं।

नटों की तरह बिसपार²⁸ भी कलाबाजियों की कला में माहिर हैं और उनकी विशेषता खम्भे तथा रस्से पर अपने करतब दिखलाना है। पिछले पचास सालों से बिसपारा समुदाय पंचमहल जिले के खानपुर तालुक में लवना गाँव में रह रहा है। नीम फलिया के नटों के तरह वे भी अपने आप को राज नट कहते हैं परन्तु उन्हें स्थानीय राजाओं से कोई भी पारितोषिक नहीं मिला है अतः उनके पास खेती के लिये भूमि भी नहीं है। इस समुदाय के एक वरिष्ठ सदस्य जयन्ती भाई नट उन दिनों को याद करते हैं जब खेल तमाशा उनकी जिन्दगी का अभिन्न अंग हुआ करता था। लड़कों को ढोल बजाने की तालीम दी जाती थी और लड़कियों को कसरत के अभ्यास कराये जाते थे। वे गुजरात और राजस्थान के विभिन्न भागों में घूम घूम कर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। पुरुष खजूर की झाड़ से रस्से बनाने

में दक्ष थे और इसके लिये खजूर की झाड़ राजस्थान से लाते थे। अब दोनों ही गतिविधियाँ थम गई हैं। खजूर के झाड़ लाने में अब उन्हें 1500 रुपये से अधिक खर्च करना पड़ता है। जयन्ती भाई के मुताबिक करतबों के लिये बहुत अधिक ऊर्जा और क्षमता की आवश्यकता होती है। गरीबी के कारण लड़कियों और युवतियों में पोषण का स्तर बहुत ही नीचा है अतः वे करतब दिखाने में अक्षम हैं। पुरुष बेलदारी में लग गये हैं वहीं महिलाओं ने "छुट्टी भिक्षा" या अनियमित रूप से भीख भी माँगना शुरू कर दिया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पुलिस अत्याचार के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते हैं। परन्तु इन समुदायों पर जो कि साँप, भालू, बन्दर आदि वन्य जीवों पर अपनी कला के प्रदर्शन के लिये आश्रित थे वन्यजीवों के संरक्षण के लिये बने कठोर कानूनों के कारण बहुत असर पड़ा है। गुजरात में ऐसे समुदायों की कुल जनसंख्या लगभग 3 लाख है। ये घुमन्तू जीवन व्यतीत करती हैं और राज्य के विभिन्न भागों में छितराये हुए हैं जहाँ वे परम्परा तथा संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये हुए हैं। इन समुदायों की अपनी परम्परागत पंचायत है और जंगल में साँपों को पकड़ने, रखने, उनके साथ प्रदर्शन करने तथा जंगलों में वापस छोड़ने संबंधित इनके विशिष्ट नियम व प्रावधान हैं। कानूनन इन पेशों के गैरकानूनी होने के कारण कई लोग साधु या ज्योतिषी बन गये हैं। इन्हीं में से एक समुदाय के बाबा वीरमनाथ कहते हैं "मैंने साँपों को पकड़ना छोड़ दिया है। लेकिन पुलिस अभी भी हमारे प्रति सशंकित है। वे समझाते हैं कि हम इधर बढ़ रही बाल व्यापार की घटनाओं में संलिप्त हैं।"

55 वर्षीय रतन लाल मांगी बहुरूपी बहुरूपिया समुदाय के प्रमुख हैं। अपने समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ वे पिछले 10 वर्षों से अहमदाबाद - गाँधीनगर अतिव्यस्त तीव्रमार्ग के किनारे प्लास्टिक शीट से बने अस्थायी आवास में रहते हैं। रतनलाल मूलतः मध्य प्रदेश के उज्जैन जिले में सरसाना गाँव के निवासी हैं। वह 52 तरह के छद्मवेश धारण कर सकते हैं जिसमें पौराणिक पात्रों से लेकर फिल्म कलाकार, पुलिस, वकील आदि शामिल हैं। वे अपनी रोजी रोटी अहमदाबाद शहर की अट्टालिकाओं तथा स्थानीय त्यौहारों में अपनी कला का प्रदर्शन कर चला रहे हैं। रतन लाल अनुभव करते हैं कि लोगों में बहुरूपियों के प्रति कोई सम्मान नहीं रह गया है। पास पड़ोस में कोई भी चोरी की घटना होने पर वे प्रथम संदिग्ध होते हैं। मनोरंजन तथा अवकाश के नये रूप ने बहुरूपी कला को आधुनिक नागर समाज के लिये अप्रासंगिक बना दिया है। वह कहते हैं "मुझे राशन कार्ड और मतदाता

पहचान पत्र तक नहीं मिला है और वे मुझे जीविका देने चले हैं? पुराने समय में राजा हमें समय तथा जगह देते थे और हमारे प्रदर्शन पर पारितोषिक भी देते थे। यहाँ लोग सोचते हैं कि हमारा समुदाय उनके खुबसूरत उच्चमार्ग में गंदगी का ढेर है।"

बंजारा ऐसा समुदाय है जो परम्परागत रूप से शादियों तथा त्यौहारों में ढोल और शहनाई बजाता है। बड़ौदा के निकट चानी गाँव में बंजारा समुदाय की एक बस्ती है। यहाँ पर काम मौसमी प्रकृति का है क्योंकि शादी या त्यौहार साल के कुछ नियत महीनों में ही होते हैं। महिलायें उच्चजाति के घरों में दाई का काम करती हैं जबकि पुरुषों के पास आय का कोई नियमित स्रोत नहीं है। पुरुष प्रतिदिन प्रातः 6 बजे बस अड्डे के समीप जाते हैं जहाँ पर दिहाड़ी मजदूरी के काम के लिये बोली लगाई जाती है। यदि वे भाग्यशाली हुए तो उन्हें काम मिलता है अन्यथा खाली हाथ घर लौट आते हैं। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं के कोई भी साधन नहीं हैं।

78 वर्षीय प्रांची श्यामजी जिन्हें प्रांची दादी के नाम से बुलाया जाता है, याद करती हैं कि कैसे उनके पिता और पूरा परिवार को गिरफ्तार किया गया था, क्योंकि उनके पिता ने किसी की बकरी चुरा ली थी। उन्हें तथा उनके परिवार को महाराष्ट्र में धुले के निकट एक सुधार बस्ती में रखा गया था। पुलिस अधीक्षक ने उनकी शादी अहमदाबाद के श्यामजी बजरंगी से करवा दी और वो अहमदाबाद चली आईं। वह महसूस करती हैं कि बस्तियाँ उन्हें देश के अच्छे नागरिक बनाने के लिये बनाई गई थीं परन्तु इनके तरीके अमानवीय थे। जवान औरतों और लड़कियों को हमेशा यौन शोषण का खतरा बना रहता था और पुलिसवाले लगातार उनपर नजर रखते थे चाहे वह कितनी भी "निजि" गतिविधि हो।

आजीविका के विकल्पों और परम्परागत पेशों को अपनाने की स्वतंत्रता के अभाव में कुछ लोगों ने रोजी रोटी कमाने के लिये आधुनिक तथा सामाजिक रूप से मान्य तरीकों को अपनाने का प्रयास किया है। अच्छी शिक्षा तथा डिग्रियाँ हासिल करने के प्रयास से उन्हें अपनी पसन्द का जीवन बनाने में कोई मदद नहीं मिली है। उदाहरणतः साबरमती टोला नाम की एक अन्य छारा बस्ती में कई स्नातक तथा परास्नातक हैं। जय कुमार जडेगा उनमें से एक हैं। इनके पूर्वज राजस्थान के जोधपुर से पलायन कर यहाँ आये। जयकुमार के शब्दों में "बस्ती में मेरी तरह कई शिक्षित बेरोजगार युवक हैं। हम लोगों ने नौकरी पाने के लिये

अपनी ओर से हर संभव प्रयास किया, परन्तु छारा कभी ऐसी नौकरी नहीं पा सकते जो उन्हें सम्मान तथा आजीविका दोनों प्रदान करे। जहाँ भी हम गये, हमें किसी न किसी बहाने मना कर दिया गया। हममें से अधिकांश मजदूरों के रूप में काम करते हैं। हमारे पूर्वज निरक्षर थे। नई पीढ़ी शिक्षित तो हो गई है परन्तु इसका हमारे जीवन में कोई महत्व नहीं है।''

टिप्पणियाँ

1. भारत में गैर अधिसूचित जनजातियों और घुमन्तू जनजातियों के नाम से प्रायः जानी जानेवाली जातियों की कुल जनसंख्या लगभग 6 करोड़ है। इनमें से कुछ अनुसूचित जातियों में शामिल है तथा कुछ अन्य अनुसूचित जनजातियों के अन्तर्गत आते हैं तथा कुछ अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित हैं। परन्तु इनमें से कई जनजातियाँ ऐसी हैं जो इनमें से किसी भी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती हैं। जी एन देवी : भारत की कलंकित जनजातियाँ पी यू सी एल बुलेटिनए 1998.
2. गैर अधिसूचित तथा घुमन्तू जनजातियाँ : एक संदर्भ'' मिलिन्द बोकिल, इकोनॉमिक एन्ड पॉलिटिकल वीकली, जनवरी 12, 2002.
3. "आदिवासी : विधिक प्रावधान, भाषाएँ तथा क्षेत्र'' भाषा रिसर्च एन्ड पब्लिकेशन सेंटर, 2004
4. डा. जी. एन. देवी. व्यक्तिगत साक्षात्कार, सितम्बर 2005
5. यह संभवतः यूरोप के जिप्सियों की भावनाओं तथा रूढ़िवादिता के अनुरूप है। उनकी घुमन्तू जीवनशैली, गैर परम्परागत व्यवहार तथा रहस्यमय छवि ने पूर्व मध्य काल से ही शासकों को सशंकित कर रखा है। उन्हें प्रायः राज्यविहीन घुमन्तूओं के रूप में परिभाषित किया गया है जो समाज पर बोझ हैं और इसकी नैतिक व्यवस्था के लिये खतरा हैं।
6. ब्रिटिश शासकों द्वारा लागू अपराधी जनजाति अधिनियम, 1871 देशभर में 160 समुदायों को जन्मजात अपराधी मानता है जिनमें बावरिया, पारथी तथा सांसी शामिल हैं जो कि अपने जन्म से ही अपराधी माने जाते हैं। (संदर्भ : फ्रन्टलार्डन भाग 19 अंक 12 2002 "हमेशा से संदिग्ध, अनुसूचित जनजातियों के सदस्य पुलिस अत्याचार सहने को विवश'' एस. विश्वनाथन)
7. वैसे समुदाय जो कि अपराधी जनजाति अधिनियम 1871 के अन्तर्गत अधिसूचित थीं अधिनियम के रद्द किये जाने के साथ अनुसूचित कर दी गई हैं और तब से अनुसूचित जनजातियों के नाम से जानी जाती हैं। मद्रास प्राविन्स इस अधिनियम को 1949 में रद्द करने में सर्वप्रथम था। (है। (संदर्भ :

फ्रन्टलाइन भाग 19 अंक 12 2002 "हमेशा से संदिग्ध, अनुसूचित जनजातियों के सदस्य पुलिस अत्याचार सहने को विवश" एस. विश्वनाथन)

8. अपराधी जनजाति अधिनियम, 1871 अधिनियम XXVII
9. अनिल कुमार पाण्डेय 2001
10. जनसत्ता नई दिल्ली 3 अगस्त 2001
11. राजस्थान में भूमि की चकबनदी तथा अधिग्रहण राजस्व विभाग द्वारा संचालित होता है।
12. ओल्गा टेल्स बनाव मुम्बई नगर निगम 1985 AIR 1986 SC 180 भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः स्पष्ट किया है कि आश्रय तथा जीविका जीवन के अधिकार के अभिन्न अंग हैं।
13. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 275 (1) भारत के संघित निधि से प्रत्येक वर्ष अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को प्रोत्साहित करने तथा संवैधानिक दायित्वों की पूर्ति के लिये अनुदान की गारंटी देता है। आदिवासी मामलों से संबंधित मंत्रालय केन्द्रीय क्षेत्रवार योजना के द्वारा अनुच्छेद 275 (1) अन्तर्गत अनुदान सुनिश्चित करता है।
14. इस अधिनियम का उद्देश्य समाज में दलितों का समावेशन और अत्याचारों से उनकी रक्षा करना था।
15. राष्ट्रीय पुनर्वास नीति का प्रारूप ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा अक्टूबर 2006 में लागू किया था।
16. अनुसूचित, घुमन्तु और अर्ध घुमन्तु जनजातियों हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग ने फरवरी 2006 से बाँकुरा रेन्के की अध्यक्षता में काम शुरू कर दिया है। रेन्के महाराष्ट्र के शोलापुर में अनुसूचित जनजातियों के साथ काम कर रहे ख्यात कार्यकर्ता हैं।
17. यह केस अध्ययन राजस्थान के घुमन्तु जनजातियों एवं भूमि तथा आजीविका तक उनकी पहुँच में मौजूद चुनौतियों से संबंधित है। आज भी वे भेदभाव तथा मुख्यधारा समाज की एकाग्र प्रवृत्ति का दंश झेप रहे हैं। इक्वेशन्स का यह केस अध्ययन राजस्थान, अजमेर के मुक्तिधारा संस्थान से प्राप्त जानकारियों के सहयोग से बना है। मुक्तिधारा की स्थापना 1991 में राजस्थानी घुमन्तुओं के नागरिक अधिकार को सुनिश्चित करने के लिये की गई थी।
18. विकीपीडिया
19. हिन्दू वर्ण व्यवस्था में क्षत्रिय का अर्ध योद्धा जातियाँ थीं।
20. राजपूत (संस्कृत शब्द तत्पुरुष से निर्मित, अपभ्रंश राजपुत्र 'राजा का पुत्र') भारत, पाकिस्तान तथा नेपाल में हिन्दुओं की एक जाति है। वे स्वयं को भारत के योद्धा वंश क्षत्रियों का उत्तराधिकारी मानते हैं

और इनकी जड़ें राजपूताना में है जिसे स्वतंत्र भारत में गठित राज्य राजस्थान के रूप में भी जाना जाता है।

21. उसे जमीन के िये पट्टा मिा और घर बनाने के िये किश्त राशि भी।
22. अवर में तेजी से हो रहे पर्यटन विकास के कारण कई कि जैसे सिासेढ़, नीमराणा आदि होट के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।
23. अपराधी जनजातियाँ अधिनियम 1871 वर्ष 1952 में रद्द हुआ और उसके जगह पर आदतन अपराधी अधिनियम ागू किया गया। आदतन अपराधी अधिनियम के अनुसार आदतन अपराधी वह है जो कि आत्मगत तथा विषयगत प्रभावों का शिकार रहा हो और प्रकट रूप से ास्तार अपराध व्यवहार करता है तथा समाज जहाँ वह रह रहा है उसके िये खतरा उत्पन्न करता है। आदतन अपराधी प्रायः पके हुए अपराधी होते हैं जिनकी अधिकांश जिन्दगी जे में ही गुजरती है।
24. द फॉरगॉटेन पीपु : बहार दत्त तथा मुक्तिधारा, अगस्त 2003
25. गुजरात में घुमन्तू जनजातियों के केस अध्ययन संबंधित सामग्री भाषा के सहयोग से प्राप्त है। डा. जी. एन. देवी द्वारा संस्थापित भाषा घुमन्तू तथा आदिवासियों से संबंधित मुद्दों पर शोध तथा प्रकाशन में संिप्त है। यह अपसूचित जनजातियों, घुमन्तूओं तथा आदिवासी मुद्दों पर जनपैरवी के क्षेत्र में अग्रणी संस्था है।
26. ढे एक आघात वाद्य यन्त्र है और शहनाई फूँक वाद्ययन्त्र है।
27. बड़ौदा में अनुसूचित जनजातियों के साथ काम कर रहे स्वयंसेवी मनीश द्वारा दिया गया रेखाचित्र।
28. नट महिाये कप्रदर्शन नहीं करती हैं परन्तु बिसपारा समुदाय में महिाये करतब क में मुख्य भूमिका निभाती हैं।



वन और आदिवासी

प्रदीप प्रभु के साथ एक वार्ता

इक्वेशन्स और ग्रास रूट मीडिया

यह साक्षात्कार प्रदीप प्रभु के साथ इक्वेशन और ऐन ग्रास रूट मीडिया के दल के साथ दिसम्बर, 2004 में हुआ था। प्रस्तुत अंश उस वार्ता का एक हिस्सा है, जो निष्ठुर राज्य के विरुद्ध हुए आदिवासियों और वन निवासियों का अपने अधिकारों को लेकर संघर्षों के संदर्भ और मुद्दों के बीच से गुजरता हुआ तथ्य, अनुभव, दर्शन और इतिहास की प्रस्तुत करता है।

आदिवासी समुदायों के जंगल अधिकारों के ईर्द-गिर्द कौन से संघर्ष हैं?

3 मई, 2002 को वन विभाग के महानिरीक्षक ने एक आदेश सभी मुख्य सचिवों और प्रधान मुख्य संरक्षकों को जारी किया कि 30 सितम्बर, 2002 तक तीन मिलियन बंजारों को विस्थापित किया जाये, यह भी कहा कि उच्चतम न्यायालय ने अतिक्रमण सम्बन्धी समस्त मुद्दों को जब्त कर लिया और हस्तक्षेप आवेदन दर्ज कर दिया गया है। इसका प्रभाव यह

पड़ा कि न्यायालय ने विस्थापन का आदेश जारी किया है, और इसलिए, वन महानिरीक्षक ने सभी अधिकारियों को राज्य और जिला स्तर पर एक समिति गठित कर 30 सितम्बर, 2002 तक अतिक्रमकों को बेदखल करने के लिए कहा। इसका तीव्र विरोध हुआ। मुद्दा था कि अतिक्रमणकारी है कौन? इस मुद्दे को उछाला गया, कारण तीन मिलियन लोगों का जीवन और परम्परागत स्वदेश खतरे में था।

इसलिए अतिक्रमणकारी कौन है और अतिक्रमण क्या है?

इसके लिए हमें थोड़ा अतीत में जाने की जरूरत है जब अंग्रेजी शासन के दौरान राज्य ने वनों को अधिगृहित करना शुरू किया था। वन क्षेत्रों को संरक्षित वन घोषित करने की प्रक्रिया ने राज्य द्वारा व्यवस्थापन अधिकारियों की नियुक्ति को अनिवार्य कर दिया जो वन क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों के अधिकारों और दावों पर अपना निर्णय दे सकें। व्यवस्थापन अधिकारियों के निर्णय के आधार पर लोगों के अधिकारों को दर्ज किया गया। कुछ-कुछ नगण्य निस्तार अधिकार (जिसे बाद में थोड़ा ईंधन, खाद्य सामग्री, फल आदि इक्ठ्ण करने के रियायत में बदल दिया गया) भी दर्ज हुआ है। परन्तु, भूमि पर अधिकार जिसपर लोग खेती कर रहे थे, कई बार दर्ज नहीं किया गया। थाने जिला को लिया जाय, जहाँ के अभिलिखित लगभग बिल्कुल साफ हैं। राजविवरणिका कहता है कि 1818 ई. में थाने जिला अंग्रेजों को दे दिया गया था। यहाँ की भूमि समुदायों के द्वारा प्रबंधित और अधिकृत की जाती थी इसलिए परम्परागत रूप से भूमि पर कोई व्यक्तिगत या व्यक्तिगत अधिकार नहीं था। इसलिए अंग्रेज दावा करते थे कि कोई अभिलिखित अधिकारी नहीं थे इसलिए कहा जा सकता है कि इस रूप में कोई अधिकार नहीं था, कि वे लोग समझ सकें और इसलिए, उन्होंने इसे अभिलिखित नहीं किया था। सिर्फ एक थाने जिला में चार लाख से अधिक सामुदायिक भूमि अंग्रेजों के द्वारा जंगल में विलय कर दिया गया था। इसलिए यह महसूस किया जा सकता है कि जंगल को संरक्षित वन घोषित करने की प्रक्रिया में यह राज्य ही था, जो अतिक्रमणकारी था। इसने सामुदायिक भूमि का अतिक्रमण किया था, क्योंकि सामुदायिक भूमि मालिकाना धारणा के अन्तर्गत नहीं थी। उनके लिए मालिक का मतलब होता था, या तो व्यक्तिगत अधिकारी या राज्य का अधिकार।

औपनिवेशिक सिद्धान्त के अनुसार "जो कुछ किसी व्यक्ति के अधिकार में नहीं है, वह राज्य के अधिकार में है" और यही एक महत्वपूर्ण वैधनिक हथियार अंग्रेजों के पास था, जिससे भूमि के बहुत बड़े हिस्से पर आधिपत्य कायम किया जा सके। अधिकारों को संगठित जंगल की प्रक्रिया से आलेखित नहीं किया गया था। 1950 से पहले जंगलों के बहुत बड़े क्षेत्र को संरक्षित जंगल में भी विलय कर दिया गया था। इस प्रक्रिया के दौरान, स्थानीय लोगों के अधिकारों, विशेषकर जंगली बंजारों का पुनः कोई आलेख नहीं था, इसलिए जो लोग निवास करते थे, ठहरते थे और पीढ़ी-दर पीढ़ी खेती करते थे, अचानक कानून की नजरों में अतिक्रमणकारी बन गये।

विभिन्न जंगल अधिकारों एवं आदिवासी आन्दोलनों द्वारा इसकी क्या प्रतिक्रिया थी?

इस सन्दर्भ में उत्तरजीवन एवं गरिमा के लिए अभियान चलाया गया था, साथ ही बहुत बड़ी संख्या में संगठन कायम किये गये थे। एक में पाया गया था कि उच्चतम न्यायालय के द्वारा किसी तरह का कोई आदेश या दिशा-निर्देश इन लोगों को निर्वासित करने के लिए नहीं दिया गया था, जिसकी घोषणा महानिरीक्षक ने की थी इसलिए हम लोगों ने निर्णय लिया कि महानिरीक्षक के सम्मुख होकर कहें कि यह न्यायालय के आदेश का भोथड़ा कुप्रतिनिधित्व था और इसलिए, यह कानून सम्मत न्यायालय की अवमानना थी। परिणाम स्वरूप 30, अक्टूबर 2004 को महानिरीक्षक ने दूसरा पत्र निर्गत किया, उसके अनुसार 1990 के दिशानिर्देश से अतिक्रमणकारियों के विस्थापन को हटाया नहीं जा सकता। अब 1990 के दिशा निर्देश क्या है? जहाँ तक बहुत सारी समितियाँ हैं, जो भूमि, जंगल, सामुदायिक आधिपत्य आदि मुद्दों की देखभाल करता है। अंग्रेजों की धारणा के अनुसार, जिसे भारत ने स्वीकार किया है, सामुदायिक आधिपत्य के लिए कोई विचारधारा नहीं है। डॉ. बी.डी. शर्मा ने 29वें रिपोर्ट में इस मुद्दों की विस्तृत व्याख्या की है। भारत के राष्ट्रपति को लिखे एक पत्र में उन्होंने जनजाति अधिकारों की सामूहिक या व्यक्तिगत रूप में अमान्यता के कारण होनेवाली व्यथा और असंतुष्टि के मामले को उठाया। डॉ. शर्मा ने इस रिपोर्ट में दूसरे मुद्दों को भी उजागर किया है, साथ ही, बृहत् रूप से मध्य भारत की जन जातियों का भी व्यापक वर्णन किया है। लोगों को निश्चित पट्टे और ठेके पर दिये जाते थे, जिन्हें 1980 तक नियमित नहीं किया गया था। ये लोग असुरक्षित थे, चूँकि उन्हें निर्वासन का भय था।

हजारों की संख्या में जंगली गाँव अंग्रेजों द्वारा जंगलों में निर्मित किये गये थे और उन्हें राजस्व ग्राम के रूप में बदला नहीं गया था। सच्चाई है कि वैसे गाँव जो राजस्व ग्राम नहीं थे, उन्हें कानूनी रूप और मौलिक सेवा तथा विकास योजनाएँ नहीं प्राप्त थीं। लोग जंगली भूमि पर उत्तर-व्यवस्थापन काल में खेती करते थे, उन्हें भी अतिक्रमणकारियों की श्रेणी में रखा गया था। उन्होंने स्थानान्तरी कृषि के मुद्दों को नहीं उठाया, जो कि एक निराश करने वाली चीज थी और इस गम्भीर समस्या की तरफ वास्तविक ध्यान नहीं दिया गया था। मई, 1990 के डॉ शर्मा के रिपोर्ट के अनुसार सचिवों की एक अर्न्तमन्त्रीय समिति का गठन भारत सरकार के द्वारा किया गया, जिसका काम था उठे हुए मुद्दों की जाँच करना।

साथ ही, 18 सितम्बर, 1990 को चार दिशा निर्देश जारी किये गये थे :-

1. अतिक्रमणों को नियमित करना।
2. दोषपूर्ण वन्य व्यवस्था को दुरुस्त करना।
3. ठेके और पट्टों को नियमित करना।
4. जंगली गाँवों को राजस्व गाँवों के रूप में परिवर्तित करना।

क्या 1990 के बाद के काल में सरकार ने जंगल के अधिकारी को परिवर्तित करने का कार्य शुरू किया?

नहीं यह वैसा नहीं है। 1990 से 2004 तक उच्चतम न्यायालय हस्तक्षेप कर रहा था, लेकिन वास्तव में अधिनियम का अर्थ नहीं बता रहा था, जितना कि जंगल अधिनियम को पुनः बनाया जा रहा था। स्मरणीय है कि 1981 में वन विभाग ने कोशिश किया था जंगल के अधिनियम का सूत्रापात करने के लिए, जिसके विरोध में सारे जनजाति क्षेत्रों में किसी खास तत्वावधन के कारण कड़ा विरोध हुआ। यह प्रवाधान कि यदि किसी बन अधिकारी द्वारा कोई व्यक्ति वन में घूमना पाया जाता है तथा यदि अधिकारी को उसके द्वारा वन को क्षति पहुँचाए जाने की शंका हो, तब अधिकारी को उस व्यक्ति पर कानूनी कारवाई करने की शक्ति है, इसका एक उदाहरण है। इसलिए कोई भी जनजाति जो जंगल में घूमता रहे, उसपर जुर्माना लगाया जायेगा। इसलिए पूरे देश में इसका विरोध हुआ। प्रारंभ में तीन संगठनों ने संसद को खुला पत्रा लिखा। यह मुद्दा संसद भवन में उठाया गया और तब यह

विस्तृत विवाद का एक विषय बन गया और अन्ततः इस विधेयक को वापस लेना पड़ा। इसलिए वन विभाग बिना किसी उत्तर-स्वाधीनता बिल के, 1927 में अधिनियमित बिल का अनुसरण कर रही है।

इस विकास का पालन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कुछ कदम बढ़ाये। सबसे पहले, व्यवस्थापन प्रक्रिया के होने न होने पर बिना ध्यान दिए संरक्षित वनों को पूर्ण 'संरक्षित बना दिया गया।' उदाहरणार्थ चौदह हजार बेमेल क्षेत्र थे, जो मध्य प्रदेश में संरक्षित जंगल के तहत आते थे। इनमें से एक हजार एक सौ छब्बीस क्षेत्रों को प्रबन्धन किया गया। परिणामस्वरूप तेरह हजार जंगली क्षेत्रों का प्रबन्धन अब तक नहीं हो पाया है। वन विभाग ने एक विज्ञप्ति जारी करते हुए कहा कि यदि इन क्षेत्रों को वैद्य करार दिया जाये, तो इस प्रक्रिया को पूरा करने में अन्य सैंकड़ों वर्ष लगेंगे।

बहुत सारे राज्यों के जंगल कानूनों को संशोधित किया गया था और एक नया खण्ड-20ए-को लागू किया गया था। खण्ड-20 संरक्षित वनों की अंतिम घोषणा को विश्लेषित करता है। खण्ड 20 'ए' संरक्षित वनों का निर्णय करता है। इसलिए वे संरक्षित करने पर विचार करते हैं, यद्यपि खण्ड-4 से 20 तक के प्रावधानों का अनुकरण नहीं किया गया है। अब उच्चतम न्यायालय कहता है कि ये सभी संरक्षित वन विभाग के संरक्षण में है, और व्यक्ति का वनों के उपर किसी प्रकार के अधिकार के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया। अदालत नियम बनाता है कि कोई भूमि जंगल के रूप में परिवर्तन किसी भी तरीके से कार्यालय रिकार्ड दर्ज किया जा सकता है।

इस कार्यान्वयन की क्या सार्थकता है?

महाराष्ट्र के थाने जिले में चौदह हजार हेक्टेयर भूमि को जंगल के रूप में घेराबन्दी की गई, जो भू-स्वामी के हाथ में थी, जिसके काश्तकार थे और इसे खण्ड-35 के तहत व्यक्तिगत जंगल घोषित कर रखा था। साथ ही, वह भूमि काश्तकारी अधिनियम के तहत काश्तकारों के हाथ में बेच दी गई थी। उसके बाद महाराष्ट्र में खण्ड 35 के तहत इन सभी क्षेत्रों को वन में तब्दील कर दिया गया और इन लोगों के पास इस भूमि का कोई अधिकार नहीं बचा था, जो उच्चतम न्यायालय के उस आदेश का अनुकरण था कि कार्यालयी रिकार्ड में दर्ज

भूमि को भी अधिगृहीत किया जा सकता है। मध्य प्रदेश और उत्तरी महाराष्ट्र के उन सारे क्षेत्र को 'औरेंज क्षेत्र' राजस्व विभाग के द्वारा कहा जाता था और कुछ भूमि पर लोग कृषि करते थे। लेकिन रिकार्ड में इसे छोटे झाड़, मोटे झाड़, का जंगल कहा जाता था। इसलिए वन विभाग ने इस भूमि को अधिगृहीत करना शुरू किया। न्यायालय ने शब्दकोष में जंगल का अर्थ के आधार पर एक नयी परिभाषा दी। इसके आधार पर यदि एक एकड़ में दो सौ या उससे अधिक खड़े वृक्ष हों, तो नई परिभाषा के रूप में उसे जंगल के रूप में तब्दील कर दिया। कहाँ से पर्यावरण सन्तुलन के लिए आवश्यक 33 प्रतिशत जंगल आवरण की धारण आई कोई नहीं जनता। सभी तरह की प्रदूषण समस्या, ओजन परत की समस्या, उत्सर्जन की समस्या का वास्तव में जंगल इन्हें उपभोग कर समाधान करता है। अब एक नया अन्तर्राष्ट्रीय दबाव विकसित हुआ है, खासकर विकसित राष्ट्रों के द्वारा अधिकाधिक हरे-भरे क्षेत्र रखने का दबाव है। यूरोप में प्राकृतिक जंगल नहीं है। अधिकांश वृक्षारोपण वाले पेड़ हैं। ग्रेट ब्रिटेन के अधिकांश जंगल भारत पर उपनिवेश के समय ही समाप्त हो गया था। आज जंगल लगाना वास्तव में एक वाणिज्यिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न दबाव है। वे इसे कार्बन पुनर्संग्रहण ईकाई कहते हैं।

एक दूसरा आलोच्य मुद्दा है कि गत पंद्रह वर्षों में खासकर 1980 के बाद जाने-माने पर्यावरणविदों की एक जमायत विकसित हुई है जिसने जंगल की एक नई धारणा रची है। पारम्परिक धारण के अनुसार वन अरण्यक था जिसमें मनुष्य भी एक हिस्सा ये नई धारणा ने मनुष्यों को वनों से निकाल बेधर किया है, और इसी आधार पर उच्चतम न्यायालय भी चल रहा है। उनके लिए जंगल पूरी तरह जंगली जानवर युक्त हो, मनुष्य युक्त नहीं। अब होगा ये कि जो जंगल गरीबों की आजीविका के स्रोत थे अब अमीरों के मनोरंजन के स्रोत बनते जा रहे हैं।

इसलिए आपके पास धन है और आप एक प्राकृतिक यात्री के रूप में जंगल में जा सकते हैं और जंगल में खुशियाँ मना सकते हैं। उच्चतम न्यायालय के आदेश की समीक्षा के द्वारा हम पाते हैं कि तीन मिलियन निर्वासन कठिन लोगों को सामना करना पड़ रहा है। उदाहरणस्वरूप यदि उच्चतम न्यायालय के आदेश की त्रिपुरा पर लागू करते हैं तो पाएंगी कि पूरा क्षेत्र वन के वर्गीकरण की परिधी के अन्दर आती है। त्रिपुरा में राज्य की सभी

जनजातीय जनसंख्या का पुनर्वासन करवाया गया है परन्तु जो लोग स्थानांतरित खेती करवाने में सक्षम हैं, उन्हें ही उस क्षेत्र के किनारे बसाया गया है और बाकी भूमि को वन विभाग के नियंत्रण में रखा गया है।

वनों के बारे में आपकी समझ क्या है और यह कैसे बदली है?

ब्रिटिश शासन के दौरान वन दो प्रकार से वाणिज्यिक संसाधन बन गया था। प्रथम इमारती लकड़ियों की बिक्री और कृषि हेतु जंगल भूमि से लगान वसूल करते थे।

आजादी के बाद किसी ने जंगल के बारे में गम्भीर विवेचना नहीं की। 1950 की राष्ट्रीय कृषि नीति के तहत जंगल एक लगान का स्रोत था। इसलिए उत्पादन में वृद्धि के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की पूरी प्रक्रिया उत्पादन के ईर्द-गिर्द बनाया गया। इस तरह, बांध सिंचाई और उद्योग के माध्यम से कृषि में वृद्धि आई। जंगल को, उसके द्वारा दिए जानेवाले उद्योग और खनन की संभावना के सामने गैण माना गया। 1975-78 के आसपास जंगल के बारे में अवधारणा बदल गई। श्रीमती गाँधी ने इन समस्याओं को जब्त कर लिया और जंगल जो उस समय तक राज्य का विषय था, एक संशोधन के तहत इसे समवर्ती सूची में डाल दी। इसके तत्काल बाद संरक्षण अधिनियम पारित किया गया, जो मुख्यतः एक पंक्ति का कानून था।

राज्य सरकार वन भूमि को अवन प्रयोग के लिए नहीं देगी; श्रीमती गाँधी का आकस्मिक परिवर्तन कई कारणों से प्रभावित था। वन धनी और प्रसिद्ध लोगों का क्रीड़ा-स्थल और वन संरक्षण संभ्रान्त व्यक्तियों का उद्यम था।

सामान्य लोगों और जनजातियों के लिए जंगल जीवन-जीविका का स्रोत है। चेन्चस, शिकारी एवं खाद्य-संग्राहक होते हैं, जिनके पास कृषि का कोई ज्ञान नहीं है, जो मनिमला के जंगलों में सदियों से निवास करते हैं। अचानक आप महसूस करते हैं कि मनिमला जंगल में अच्छी जैव विविधता है और आप उसे एक राष्ट्रीय उद्यान या अभ्यारण्य घोषित करते हैं। चेन्चस को उनके घरों से बलपूर्वक निकाल दिया गया है। उन्हें जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा दे दिया गया है। वे खेती करना नहीं जानते। बाहरी लोग आते हैं और उनकी जमीन

जबरन हड़प ले लेते हैं। वे फल, मधु संग्रह करते हैं और पक्षियों को पकड़ते हैं, उनके साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाता है। एक प्रतिवेदन के आधार पर चेन्नस जंगल से बाहर आकर हाई वे पर भीख माँगते हैं। उनमें से बहुत सारे भूख और भूखमरी से दम तोड़ रहे हैं। गोठू कोहियास भी इसी तरह की स्थिति से गुजर रहे हैं। कोल भी जो कि स्थानान्तरिक कृषक का ही एक समुदाय हैं। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र की सीमा पर निवास करते हैं। उनके गाँव को जला दिया गया था। वे भाग खड़े, हुए, खाने के लिए कुछ भी नहीं था और भूख से मर गये। ठीक उसी प्रकार की स्थिति सहरिया और बोंडो के साथ भी है। स्थानान्तरिक खेती इन्हें नहीं आती/2004 की जनजातीय नीति में एक कटाक्ष किया गया था कि स्थानान्तरिक कृषकों को अपनी भूमि के प्रति ममता नहीं है। यह केवल उस प्रकार है, जब आपके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति हो, तब आपका उस भूमि के प्रति स्वाभाविक लगाव बढ़ जाता है। जो लोग प्राकृतिक अवस्था में रह रहे हैं, वे विदेशी मसौदा के तहत प्राकृतिक वस्तुओं के साथ सौतेला व्यवहार करें। कोई भी निष्कर्षात्मक प्रमाण नहीं है कि स्थानान्तरिक कृषि जंगल के लिए बुरी है, लेकिन इसके बहुत सारे सबूत हैं कि वह जंगल के लिए बहुत अच्छी है, क्योंकि वे कमजोर पेड़ों को काटकर मजबूत पेड़ों को बढ़ने में मदद देते हैं। परन्तु आज स्थानान्तरिक कृषि करने वाले अपने अस्तित्व के बचाव का अधिकार नहीं रखते। इसलिए उनका भी पुनर्स्थापन होना बाकी है।

वन अधिकार के मुद्दे पर 2004 से क्या स्थिति रही है।

जैसा कि बहुत सारी कम्पनियों के माध्यम से अत्यधिक दबाव आ रहा था, एन.डी.ए. सरकारी ने 3 फरवरी, 2004 और 5 फरवरी, 2004 को एक आदेश पारित की, जिसमें उन लोगों ने 1990 के दिशा निर्देशों को लागू करने की बात की। यद्यपि कि तब से राज्य सरकारों ने ना तो अपने कर्तव्यों का पालन किया और ना ही कोई प्रस्ताव भेजा। दूसरा ध्येय उनके क्षेत्रों को व्यापक बनाना था। इसके लिए उन लोगों ने अनुमानित तिथि भी रखा फिर भी अतिक्रमण का मुद्दा 1980 से आजतक ज्यों का त्यों है। बीच में उन लोगों ने 31 दिसम्बर, 1993 की तिथि रखी। इसके विरुद्ध कुछ पर्यावरणविद् ने उच्चतम न्यायालय में गोदावर्मन मुकदमें के सन्दर्भ में हस्तक्षेप प्रतिवेदन भेजा।

उन लोगों ने पाया कि गोदावर्मन मुकदमें के अन्तर्गत अभी तक 1140 अभ्यर्थियों ने इसके खिलाफ याचिका दायर किया, जिसको कानूनी भाषा में 'षड्यंत्राकारी सूट' कहा जाता है। इसलिए वन विभाग किसी को हस्तक्षेप प्रतिवेदन के लिए नामजद करता है और तब सरकार यह कहते हुए जबाब देगी कि जो कुछ हस्तक्षेप प्रतिवेदन के सन्दर्भ में कहा गया है, वह कानूनी रूप से न्यायालय के द्वारा निर्गत आदेश के अनुरूप आवश्यक रूप से वैध है या नहीं। इसलिए 2004 में पूर्व सरकार के द्वारा पास किये गये आदेश पर हस्तक्षेप प्रतिवेदन 1126 दायर किया गया और अदालत ने इस पर रोक लगायी।

जब यह सारा मामला उच्चतम न्यायालय में चल रहा था, तब सरकार पर सूझ-बूझ के साथ जबाब देने के लिए जबर्दस्त दबाव डाला जा रहा था। इसलिए इन सारे दबावों में आकर 21 जुलाई, 2004 को एम.ओ.ई.एफ. के वन महानिरीक्षक मि बाजपेयी ने उच्चतम न्यायालय में शपथ पत्र दायर किया, जहाँ अनुच्छेद संख्या 8 के अन्तर्गत भारतीय इतिहास में पहली बार उसने कहा कि आजादी से पूर्व वनों के सुदृढीकरण की प्रक्रिया में ब्रिटिश सरकार आदिवासी समुदायों के अधिकारों का लेखा-जोखा नहीं रखती, क्यों कि वे लोग इसके लायक नहीं थे। ठीक इसी प्रकार राजशाही राज्यों में वनों के सुदृढीकरण के सन्दर्भ में सन् 1950 के बाद भारतीय वन में एक बार फिर उनके अधिकारों का लेखा-जोखा नहीं रखा गया। इसने एक परिस्थिति उत्पन्न की, जिसे वे लोग आदिवासी समुदायों के साथ ऐतिहासिक अन्याय कहते हैं कि उनके अधिकारों का कोई आलेखन नहीं है और इसलिए इस ऐतिहासिक अन्याय को ठीक करना है और उनके अधिकारों को आलेख बद्ध किया जाना है।

यह एक अव्यावहारिक वैधानिक स्थिति थी। राज्य ने अपने अपने दायित्व का निर्वाह नहीं किया। जिससे कि उसने अपने कानून से प्राप्त किया था और इसलिए राज्य के दायित्व-निर्वाह की विफलता के कारण सैंकड़ों-हजारों लोग मुजरिम हैं। तकनीकी रूप से जहाँ तक अंदाजा लगाया जाता है, लोगों के अधिकारों की कोई वास्तविक पहचान नहीं थी, इसलिए उन लोगों को अधिकार देना अब गैर कानूनी है।

वनों की बरबादी के लिए कौन उत्तरदायी है?

भारतीय संघ का सबसे बड़नाम विभाग वन विभाग है और वे लोग इस बरबादी के लिए उत्तरदायी हैं। लेकिन एकाएक उन लोगों को वनों का सबसे बड़ा संरक्षक घोषित किया गया। सच्चाई यह है कि हम लोगों के पास वनों के लिए घोषित क्षेत्र का मात्र 40 प्रतिशत ही वनाच्छादित है। बाकी 60 प्रतिशत व्यर्थ की भूमि है। 187 आदिवासी जिलों में इस 40 प्रतिशत के मात्र 60 प्रतिशत पर ही वन है जो संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 20 प्रतिशत है। इसका अर्थ यह हुआ, जहाँ आपके पास वन है, वहीं पर आदिवासी लोग भी हैं, जिनके लिए संरक्षण बनाया जाता है। वन उन लोगों की सांस्कृतिक अखण्डता है और उनके भोज्य-प्रबन्धन से भी सम्बन्ध रखता है। एक वाद-विवाद में एक वरिष्ठ पदाधिकारी को कहते हुए सुना गया कि "राष्ट्रीय उद्यान और वन्य जीव अभ्यारण्य के घोषणा की प्रक्रिया जंगल को लोगों से बचाना नहीं है, बल्कि वन को वन-विभाग से बचाना है। जिस क्षण आप किसी राष्ट्रीय उद्यान या वन्य जीव अभ्यारण्य की घोषणा करते हैं, आप वहाँ वन को कुछ नहीं कर सकते और अब उच्चतम न्यायालय ने भी आदेश पारित कर दिया है कि उन लोगों को उद्यान और वन्य अभ्यारण्य से बेकार लकड़ी ले जाने की भी अनुमति नहीं होनी चाहिए।

इस समुदायों में समृद्धि के कई आयाम हैं, जो उत्तरदायित्व के बँटवारे पर निर्भर है। इसी में जीविका का वृत्त भी है, जो परिवार से ग्राम-निवास की ओर बढ़ता है और उनके धर्म के एक हिस्से के रूप में वन के भीतर चारों ओर फैला है। ये सभी परिवृत्तें मानव जीविका के आधारभूत संरचना है और अन्तिम वृत्त प्रकृति का अस्तित्व है। मुझे इन सभी आदिवासी समुदायों का तर्क याद है, जो अब निस्सन्देह रूप से बदल रहा है। बहुत लम्बे समय तक विश्वव्यापी दृष्टि यह थी कि आप धरती को कैसे अपनाते हैं और एक बच्चा अपनी माँ को कैसे पहचानता है। माँ बच्चे के लालन-पालन, खाना-खिलाने एवं उसके स्वास्थ्य की देख-रेख के लिए उत्तरदायी होती है और बच्चा माँ के संरक्षण, एवं पोषण के लिए उत्तरदायी होता है।



कर्नाटक के जंगलों में विस्थापन एवं पुनर्वास

इक्वेशन्स

कर्नाटक के पश्चिमी घाट के चारों तरफ के क्षेत्र में अनेकों स्थानीय समुदायिक संस्थाओं के द्वारा इस राज्य में विस्थापन का विरोध किया गया है दीन-हीन पुनर्वास और बेदखली में मुख्य रूप से वन्य भूमि में पारदर्शिता होनी चाहिए। यह उच्चतम न्यायालय के अध्यादेश (डब्ल्यू पी. 202/95) से सुर्खिया में आया, जिसके याचिकाकर्त्ता गोदावारमन जो कि नीलाम्बुर कोबिल्कम के थिरूमूल पैड जो अब केरल में मालापुरम् के पास है, के थे। गोदावारमन द्वारा उच्चतम न्यायालय में दायर याचिका तमिलनाडु सरकार के खिलाफ पास किया जो लगभग 80 हेक्टेयर गुदालुर के 80 हजार हेक्टेयर जंगली जमीन को सुरक्षा प्रदान नहीं कर सका, जो राज्य सरकार के अधीन जनमान भूमि अधिनियम, 1969 के तहत था।

न्यायालय ने इस मुकदमें को अपने अधीन लिया और देश के चारों तरफ सैकड़ों जंगलों से संबंधित मुकदमों का एक साथ निपटारा किया। अनेकों फैसलों में जो लकड़ी और बाँस को सुरक्षित क्षेत्र से, जो कि राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव अभ्यारण्य के 25 कि.मी. की परिधि में आते हैं, ढुलाई पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस खास याचिका में मुख्य रूप से अदालत ने सात राज्यों से जवाब तलब किया, जिनमें उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक,

छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश अंडमान और निकोबार द्वीप समुह शामिल थे। अदालत ने यह पूछा कि आप ने जंगल की भूमि को बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने के लिए कौन-कौन से कदम उठाये? अदालत ने तब केन्द्रीय सशक्तिकरण समिति (सी.ई.सी.) के अधीन इस मामले को सुपुर्द कर दिया। अदालत के आदेशानुसार खाली पड़ी हुई जंगली जमीन, जो सरकारी विभागों या निजी हाथों में थी, उसे वन विभागों को सौंप दिया गया। वे व्यक्तिगत भूखंड, जो कि वन संरक्षण अधिनियम के दायरे में आते थे, 1980 ई. में संशोधित कर दिये गये, जिसमें प्रत्येक परिवार को अधिकतम तीन एकड़ भूमि वास हेतु रखने की इजाजत दी गई। केन्द्रीय सशक्तिकरण समिति के आदेश कारगर थे। सम्बद्ध राज्यों के मुख्य सचिव ने उन्हें लागू किया और पुलिस तथा वन विभाग के आला अधिकारियों ने स्वयं सेवी संस्थाओं की भागीदारी से उसे अमलीजामा पहनाया।

दक्षिण कन्नड़ जिले के बेल्थानगाड़ी ताल्लुक में, उडापर जिले में कारकाला, श्रृंगेरी, कोप्पा और चिकमंगलूर जिले में मुद्गेर सभी कर्नाटक में पश्चिमी घाट श्रृंखलाओं से घिरे हैं, इनमें सही राजस्व पट्टेदारों जो कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अत्यंत पिछड़ा वर्गों के लघुकालिक कृषक हैं उनकी जमीनों को अब 'वन्य भूमि' के रूप में उच्चतम न्यायालय के आदेश के आलोक में तब्दील कर दिया गया है और उन्हें खाली करने की सूचनाएँ निर्गत कर दी गई हैं।

बेल्थानगैडी ताल्लुक (दक्षिण कन्नड़) में 2002 ई. में वन्य मामलों के आदेशों के आने के पूर्व स्थिति उत्तेजक थी।

कृषि श्रमिक, अधिकांशतः दलित और छोटे कृषक इस ताल्लुक में या तो 1950 से 1990 के दरम्यान भू-राजस्व की छोटी राशि का अतिक्रमण कर लिए थे या फिर उन जमीनों के लिए उन्हें जारी कर दिये गये थे। बेल्थानगैडी में 497 परिवार 1001 एकड़ भूमि से बेदखली का दंश झेल रहे हैं। लगभग 100 पट्टे जारी किये गये हैं। 1978 ई० के पूर्व इन परिवारों में से लगभग 80 परिवारों को अपनी जमीनों पर बसाया गया है। उप्पीनानगैडी में 1690 एकड़ भूखंड धारण करने वाले 772 परिवारों को 110 पट्टे जारी किये गये हैं, 1978 ई. तक लगभग 90 परिवार वहाँ काबिज थे। वेनुरु में 65 एक एकड़ भू-खंड धारण

करने वाले 89 परिवार बेदखली का सामना करते हैं। बेलथानगैडी में 2756 एकड़ जमीन पर आधिपत्य वाले 1358 परिवार बेदखली के शिकार हैं जो कि 2 एकड़ प्रति परिवार औसत का अपूर्ण गणना पेश करता है। दक्षिण कन्नड़ में कुल 6000 परिवार इन बेदखली सूचनाओं से प्रभावित हैं।

1978 के पहले अधिकांशतः भूमि का अतिक्रमण हो चुका और 1994 में राज्य की अक्रम-सक्रम नीति के तहत नियमित किया गया। एक गैर सरकारी संगठन नागरिक सेवा ट्रस्ट, जो एक जनता का संगठन है और जिसके बीस हजार से अधिक सदस्यगण हैं, उसका कहना है कि 1978 के पहले की बस्ती के लिए पट्टा के रूप में जमीन की मालकियत का पर्याप्त सबूत है, जिसको वन-विभाग के द्वारा अभिलेख बद्ध नहीं किया गया। ये बस्तियाँ भी विनाश के कगार पर हैं। वन विभाग के प्रमुख संरक्षक के व्यक्तिगत पत्र से यह ज्ञात हुआ है कि बार-बार माँगे जाने पर भी उन लोगों ने 1978 पूर्व की विस्तृत जानकारी नहीं जुटा सके। कर्नाटक कैसेव विकास निगम के अन्तर्गत बीस हजार हेक्टेयर जमीन है दक्षिण कन्नड़ और उडीपी जिलों में है जिसमें पाँच हजार एकड़ पर रबर प्लांट है और चार हजार हेक्टेयर वन विभाग के द्वारा कुद्रेमुख लौह-अयस्क कम्पनी लिमिटेड को पट्टा पर लिया जा चुका है एन. एस. टी. के सोमनाथ नायक का कहना है कि "इन सब जमीनों को प्रत्यक्ष रूप से वन विभाग के अधीन लाने के बजाय वे लोग कृषि योग्य उपजाऊ जमीन पर अतिक्रमण करके गरीबों को उनके जीवन-जीविका के एक मात्र स्रोत से वंचित किया जा रहा है।"

बेलथानगैडी के नाडा गाँव में अधिकतम एक एकड़ के 1/10 भाग जमीन रखने वाले 78 परिवारों को जमीन खाली करने की सूचनाएँ तहसीलदार शिवरुद्र स्वामी के द्वारा भेजी जा चुकी है, जो कि अब भ्रष्टाचार के आरोप में निलम्बित हो चुका है। सूचनाएँ वहाँ के निवासियों पर आरोप लगा रही है कि उन्होंने जमीनों को राजस्वार्जन करने हेतु गलत ढंग से पेश किया है। उक्त मामले में राजस्वविभाग की राजस्व चोरी का आरोप मढ़ा गया है। राजस्व विभाग की अक्षमता एवं उपेक्षा जो इस बात से जाहिर होती थी कि पट्टा जारी करने के वक्त उन्हें यह बात पता नहीं थी कि वह वन्य भूमि हैं, को छिपा दिया गया।

बैलथानगैडी तालुक के कादीरुदियावारा गाँव में जुलाई, 2002 ई. में वन दफ्तर कर्मचारियों ने चार किसानों की जमीन पर छोटे पौधों को लगाने का प्रयास किया, जिनके पट्टे राजस्व विभाग के तहसीलदार के द्वारा जारी किये गये थे। एन. एस. टी. स्थानीय लोगों की समितियों एवं अन्य विभिन्न संगठनों के हुजूम द्वारा इस बात का सख्त प्रतिकार किया गया। मामला ने तब राजनीतिक रंग ले लिया, जब सत्ताधारी दल के स्थानीय पूर्व मन्त्री ने भी उक्त कार्य का विरोध किया। अभी वन-विभाग के विरुद्ध व्यवहार न्यायालयों में अनेक कानूनी वाद दर्ज हैं।

बैलथानगैडी के कुद्रेमुख राष्ट्रीय उद्यान से सटे कादीरुदियावारा गाँव के पचास वर्षीया पुष्पासलेन, जो बिल्लाभा समुदाय की है, कहती है कि उसके ससुर को बल्लुबेल में तीन एकड़ जमीन पट्टे पर मिली। वह कहती है उसकी शादी आज से 20 वर्ष पहले हुई और बल्लुबेल में वह एक दुल्हन बनकर आयी थी। उसके परिवार स्थानीय बाजार के लिए काजू, आम, अदरक और सब्जियाँ उपजाते हैं। एक पेड़ से 75 से 100 किलोग्राम तक काजू पैदा होता है, जिसे 30 रुपये प्रति किलो ग्रा. खुले रूप से बेचते हैं। यद्यपि जून, 2003 में एक निर्वासन सूचना मिला कि पारिवारिक जमीन वन विभाग द्वारा अधिगृहीत कर लिया गया और मौसमी कृषि योग्य भूमि पर वृक्षारोपण कर दिया गया है। पूरे भूखंड पर कँटीला बाड़ लगा दिया गया और किसी के भी प्रवेश पर रोक लगा दी गयी। पुष्पा कहती है कि एन. एस. टी. के विरोध के पश्चात् कँटीले बाड़ तो हटा दिए गये थे, "लेकिन पेड़ अब भी मौजूद हैं"।

कादीरुदियावारा गाँव के एन. पी. के बफर जोन में पड़ता है, छोटे गाँवों से युक्त जंगल सा दिखाई देता है। यह क्षेत्र हरा भरा है और वन की वह भूमि जो खदान, बाँध एवं अन्य उद्योगों से संबंधित हैं, उससे बिल्कुल अलग दिखाई देता है। यहाँ पर 25 परिवार पीढ़ियों से बिल्कुल शान्ति से रहते हैं। उनमें से सात परिवारों के पास पट्टा है, जिनमें से तीन को निर्वासन सूचना जारी कर दिया गया है।

राजस्व एवं वनविभाग दोनों की निष्क्रियता के कारण दण्ड का सामना करना पड़ रहा है। अब वे पुराने नक्शे को देख रहे हैं कि जंगली भूमि कहाँ पर है और जो कम समय से जंगली भूमि को आजीविका बनाये हुए थे, उसी समुदाय को निर्वासित किया जा रहा है। छोटे

किसानों और गरीबों को बहुत आसानी से निर्वासित किया जा सकता है, जबकि अमीर और राजनीतिक दृष्टि से सबल लोगों को सी. ई. सी. के द्वारा सूचना जारी की गई थी, अपनी भूमि को व्यवस्थित रूप से काबिज रखने की। कर्नाटक सरकार ने दिसम्बर, 2003 में आपत्ति जतायी थी कि 96,021.594 हेक्टेयर जमीन की पहचान की गई थी, जिसमें पुनारापत्ति जतायी गई कि 36,702 हेक्टेयर जमीन 35,815 परिवारों के द्वारा अतिक्रमित है।

यहाँ तक कि संयुक्त परिवार आवासों को खाली कराने के लिए सूचना भी जारी किये जा रहे हैं। इसका सम्भावित कारण यह है कि जंगल की सीमा-रेखा उनके आवासों से होकर गुजर रही है। कादीरुदियावारा में, 1.5 एकड़ भूमि पर संयुक्त रूप से काम करनेवाले मोनप्पा सालियन और उसका भाई इसी भूमि पर पैदा हुए। उनके पिता दक्षिण कन्नड़ के बंटवाल से पचास साल पहले आए थे। फिर भी, मोनप्पा ना कि उसके भाई को बेदखली का फरमान जारी किया गया। उसकी पत्नी वनिता उदास होकर एक कागज का टुकड़ा जिसमें राजस्वविभाग का मुहर लगा हुआ है, पकड़ी हुई है और वह आँखों में आँसू भर कर बोलती है कि "अब हमलोग क्या करेंगे?"

गाँव का एक 60 वर्षीय वृद्ध गोपाल पुजारी कहता है कि कुछ परिवार जो यहाँ 50 वर्षों से रह रहे हैं, कुछ भूमि पर अतिक्रमित कर रखा है, "परन्तु अतिक्रमण बहुत छोटा है, सम्भवतः आधे एकड़ वह भी सभी परिवारों के द्वारा नहीं।" हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड द्वारा मंगलोर से बंगलोर तक पाइपलाइन बिछाने के लिए अतिक्रमण एक अलग समस्या है उच्चतम न्यायालय के सूचना के बावजूद स्थानीय लोगों का विस्थापन तथा स्थानीय संगठनों द्वारा विरोध जारी है।

दूसरी समस्या, जिसका सामना लोग कर रहे हैं, वह है बन्धुआ मजदूर की समस्या। उदाहरणार्थ नेरिया में मैलेकुदिया लोग हेब्बर परिवार के दास हैं, जो गैरकानूनी तरीके से जमीन पर खेती कर रहे हैं। नेरिया की पहाड़ियाँ मैलेमुडिया जनजाति, जो कि भद्र और साधारण लोग होते हैं के वास स्थल हैं। वे लोग वहाँ सदियों से रह रहे हैं, जैसा कि उनके नाम "मैलेकुदिया" से जाहिर होता है। इसका अर्थ होता है- "पहाड़ों के बच्चे"। मैलेकुदिया परिवार से जुड़ी मुख्य जमीन को जब्त कर लिया गया है। हैब्बरों ने इनमें से

कुछ जंगलों को उपहार के तौर पर प्राप्त किया है, जो आजादी से पहले अंग्रेजों की सेवा के बदले में मिले थे। लेकिन इसका कोई पुख्ता प्रमाण नहीं है कि यह भूमि उन्हें कैसे मिली थी। फिलहाल परिवार के चार भाइयों के पास नेरिया की लगभग 11,000 एकड़ भूमि है, जिसमें रबर और इलायची के पौधे हैं। परन्तु इस सुन्दर जंगलो के बीच से एक दिन की यात्रा यह दिखाती है कि ये मूल वन रबड़, इलायची और काली मिर्च के पौधों से युक्त कितने धने हैं। कर्नाटक भूमि सुधार नियम 1961 के तहत सरकार द्वारा उनकी भूमि जब्ती से बचपे के लिए इन भाइयों ने कम्पनी एक्ट 1956 के तहत नेरिया ऐस्टेट रूरल इंडस्ट्रीज़ नामक कम्पनी खोला और इस कम्पनी को अपनी भूमि इलायची काली मिर्च, कॉफी और कोको के पौधे लगाने के लिए पट्टे पर दे दिया।

भूमि सुधार अधिनियम में सूराख हैं, जिसके तहत कम्पनी को अधिकार प्राप्त होता है कि कम्पनी एक अभिधारी की तरह काम कर किसी व्यक्ति-विशेष भूस्वामी को कृषि योग्य पौधे लगाने हेतु भूमि दे पर इसे 1974 में संशोधित किया गया। लेकिन इस संशोधन के बाद लगभग 10 वर्षों तक सरकार चुप रही। अन्ततोगत्वा 1984 में न्यायालय के हस्तक्षेप से शान्त पड़े नेरिया इन्टरप्राजेज की 2750 एकड़ धने जंगलों वाली भूमि को अधिगृहीत कर लिया। सरकार का तर्क था कि 11000 एकड़ भूमि, जो कम्पनी ने व्यक्ति विशेष को कृषि के लिए दे दिया है, भूमि सुधार अधिनियम के तहत यह गैरकानूनी है। हैब्स अचानक इस मुकदमे को हार गया। फिर 1996 में उच्चतम न्यायालय में एक अपील दायर किया, लेकिन मुकदमा का पक्ष कमजोर होने के कारण मुकदमा वापस ले लिया। इसलिए तकनीकी तौर पर कहा जा सकता है कि हैब्स भाइयों ने दशकों से नेरिया के 11000 एकड़ जंगली भूमि पर कब्जा कर रखा है।

लेकिन उच्चतम न्यायालय में अपील खो देने पर भी नेरिया उद्योग के प्रबन्ध निदेशक राघव हैब्स ज़मीन पर किसी कानूनी अधिकार से इनकार करते हैं। 'मेरा मुकदमा वापस नहीं हुआ है और मेरे पास इसके अलावा कुछ कहने को शेष नहीं है' उन्होंने अंततः प्रश्नों से बचन की कोशिश से असफल होकर ऐसा कहा।

परिवार ने मालोकुरिया जनजाति को दास बनाया और उन्हें 1976 तक बन्धुआ मज़दूर के रूप में रखा जब तक की बन्धुआ मज़दूर का उन्मूलन अधिनियम ने इसे गैरकानूनी माना,

तथा स्थानीय मीडिया द्वारा मालेकुरिया स्थिति की उछाला गया। 1984 में सरकार ने नेरिया के मालेकुरिया परिवारों का 21 पट्टे दे दिए।

दूसरा संकट नेरिया के जंगलों से मंगलोर से बंगलोर तक पाइप लाइन बिछाने का था। 2001 में 16 हाथी, जिनमें दो दाँत वाले हाथी, तथा तीन बच्चे भी थे, पुष्पगिरि अभ्यारण तक जानेवाले प्राकृतिक प्रवासी मार्ग को ढुँढ़ने में असफल होकर नेरिया जंगल में अकेले पड़ गए। अपने ढँग की यह पहली घटना थी। और मेलिकुरिया कहते हैं कि व्यक्ति विशेष एवं तेल पाइप लाइन कम्पनी द्वारा जंगल की कटाई इसका कारण है। हाथियों के परम्परागत मार्ग, जो मादरा और पुष्पगिरि वन्यजीव अभ्यारण्य को जोड़ती है, पाइप लाइन के द्वारा प्रभावित हुई है। सर्वेक्षण करने वाले दल का मन्तव्य है कि पाइप लाइन को बिछाये जाने से मनुष्य के लिए जंगलों की कटाई और हाथिया के बीच संघर्ष बढ़ जायेगा। स्थानीय संगठनों जैसे ऐंटी एच.पी.सी.एल. पाइपलाइन कमीटी, दक्षिण कन्नड़ परिसरासकता ओक्कूटा एन.एस.टी. और महिला वेविके द्वारा विरोध के बावजूद पाइपलाइन बिछाए गए। स्थानीय ग्रामीण और मेलिकुदिया ने भी इंगित किया कि ग्राम पंचायत से काम करवाने का आदेश नहीं प्राप्त किया गया था और इसके विरुद्ध एक याचिका यह कहते हुए दायर की गई कि यह पंचायती अधिकार की सहमति के विरुद्ध है।

एक ताजा सूचना के आधार पर जो स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं एवं सी. ओ. आर. डी. के अध्ययन पर आधारित है, 3650 से भी अधिक निर्वासित परिवारों को अभी तक पुनर्वास की कोई सुविधा प्राप्त नहीं करायी गयी है। प्राकृतिक पर्यटक परियोजना और राष्ट्रीय उद्यान, कुद्रेमुख की घोषणा के बाद लगभग 3000 जनजातियों को विस्थापित किया गया है, अपने जीविकोपार्जन के लिए अधिकांश आदिवासी न्यूनतम मजदूरी पर पड़ोस के कॉफी बगानों में कूली का काम कर रहे हैं। अधिकांश जनजातियों ने पिछले दशक में अपने बच्चों को घरेलू नौकरों के रूप में शहरी अमीरों के हाथों बेच दिया है। कुद्रेमुख राष्ट्रीय उद्यानवासी संरक्षण समिति के प्रमुख प्रवक्ता वासन्ती, एन. एस. टी. और के. एन. पी. की सहायता से आदिवासी परिवारों के अधिकारों की लड़ाई जारी रखे हुए है। के. एन. पी. के अन्तर्गत कोथलर के 54 परिवारों को आधा एकड़ से लेकर पाँच एकड़ तक भूमि उपलब्ध कराई गई है, जिसमें एक एकड़ वालों की बहुलता है। वासन्ती कहते हैं कि "प्रारम्भ से" ही वे

लोग धान और नारियल की खेती करते रहे हैं। वन-प्राधिकार के गैर इमारती और अन्य वन्य-उत्पादों पर प्रतिबन्ध के बाद इन परिवारों द्वारा पिछले बीस वर्षों से सुपारी की खेती भी की जा रही हैं।

उनका विस्थापन के विरोध या बेहतर पुनर्वास के लिए लगभग एक दशक से संघर्ष जारी है। लेकिन समुदाय सरकार के अच्छे पुनर्वास के वायदे पर विश्वास नहीं कर रहा है, जैसा कि राजीव गाँधी राष्ट्रीय उद्यान में आदिवासियों के अपर्याप्त पुनर्वास को देखा गया। बासन्ती कहती हैं "हम लोग सीमेन्ट के बक्सों में कैसे रह सकते हैं? जहाँ तक मुझे स्मरण है हम लोग शान्तिपूर्वक प्रकृति के बिल्कुल करीब रहते आये हैं।"

एक प्रस्ताव के तहत कोडागू हिस्से में 27 टोलियों के 883 परिवारों तथा मैसूर हिस्से के 24 टोलियों के 506 परिवारों को 3050 एकड़ में पुनर्वास की योजना है। अधिसंख्यक लोग विस्थापन के मामले में काफी अनुभवी हैं, क्योंकि एकबार से अधिक उन्हें विस्थापित होना पड़ा है, जैसे-जब क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया था और कावेरी, थाराका और नुगू नदियों पर बाँध बनाये गये थे।



टोड्स अग्नि की राह पर

इक्वेशन्स

नीलगिरि संरक्षित जैवमण्डल के अन्तर्गत वायनाड, नागारहोल, बंदीपुर, मुदुमलई, नीलाम्बूर के जंगल और पहाड़ के दलान, नीलगिरि के ऊपरी पठार, शान्त घाटी (साइलेंट वैली) और सिरुवानी पहाड़ सभी संरक्षित जंगल हैं। भिन्न-भिन्न तरह के जीव उस क्षेत्र में निवास करते हैं। साफ-सुथरी प्राकृतिक वनस्पतियाँ, सूखे और नमीदार पतझड़ वाले वन, अर्ध चिरहरित जंगल, चिरहरित जंगल के समतुल्य घास के मैदान एवं दलदल इस क्षेत्र में सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत दो तरह के काफी खतरनाक और वृहत् पैमाने पर जंगली जीव-जन्तु जिनके नाम हैं नीलगिरि ताहर, शेर की पूँछ वाला माकाक, दक्षिण भारतीय हाथी, बाघ, गौर, साँभर, चीतल तथा इनके अलावा अनेक खतरनाक पौधे पाये जाते हैं। ऊटकमंड और गुडालूर एन.बी.आर. के द्वारा चिन्हित किये गये हैं, जिसके अन्तर्गत एन.बी.आर के वनस्पति, जंतु समुह तथा प्राकृतिक जैव विविधता इसकी विशेषता है।

परम्परागत ग्रामीण समुदाय विशेषकर जनजाति समुदाय, जैसे-टोड्स, इरुला, पलियार, कोनार, और 'अम्बलाचेरी' नामक पशु प्रजाति के पशुचारक का एन.बी.आर. के सामने उनकी जीविका और प्राकृतिक विरासत को बचाने का प्रश्न है। विशेष अध्ययन टोडा समुदाय पर प्रकाश डालता है जो प्रारम्भिक स्तर पर भूमि के हस्तान्तरण समस्या से ग्रसित

था, क्योंकि प्रारम्भ में उनकी भूमि कर्नाटक के प्रवासी सजातिविषयक समुदाय वाडागास के पास था और इसके बाद अंग्रेजों के पास, अंत में आजादी के बाद स्थानीय सरकार ने वन भूमि के रूप में स्वीकार किया।

एक समय नीलगिरि की पहाड़ियों में टोडा लोग मूल निवासी और भूमि के मालिक थे तथा नीलगिरि की छः अति पिछड़ी जनजातियों में सबसे सुप्रसिद्ध एक जनजाति थी। उनका विश्वास था कि उनके पूर्वज मानव जाति की उत्पत्ति के समय से नीलगिरि की पहाड़ियों में निवास करते थे। टोडा समूह में घूमने वाले पशुचारक हैं और टोडा चारागाड़ी पशुचारक लोग हैं तथा दक्षिणी तमिल नाडु के ईरोड़ में थलवड़ी के इरुला जनजाति के साथ उनकी जीवन शैली, संस्कृति और जीविका, इन पहाड़ियों में पाई जानेवाली विशेष प्रजातिवाली भैंस के ईर्द-गिर्ग घूमती है। उनकी भाषा द्रविडियन स्रोत की होने पर भी उसकी अपनी कोई लिपी नहीं है। इस समुदाय के बीच एक लोकप्रिय धारणा के अनुसार देवी तेकरशी और उनके भाई ने जादुई छड़ी चलाकर पहले भैंस को उत्पन्न किया और फिर टोडा मानव की। प्रथम टोडा महिला मनुष्य की दायी पसली से बनाई गई थी। टोडा महिलाएँ कढ़ाई के काम में बहुत निपुण होती हैं। इनके कसीदाकारी वस्त्रों की विदेशी तथा भारत के दूसरे भागों से आए हुए पर्यटकों में भारी मांग है। टोडा के परिवार में सामाजिक और सांस्कृतिक औजार के रूप में टोडा भैंसों का उपयोग होता है। इसे शादी-विवाह, जन्म मृत्यु या अन्य समारोहों के मौके पर बहुमूल्य उपहार के रूप में भेंट किया जाता है। इसे सोने से भी ज्यादा मूल्यवान माना जाता है, तथा एक परिवार की सम्पत्ति का मूल्यांकन पैसा, शिक्षा, पेशा और सामाजिक महत्व से नहीं मापा जाता बल्कि भैंसों के सिसे की संख्या के अनुसार मापा जाता है जो प्रारंभिक काल से उनकी निजी संपत्ति है। टोडा लोग शताब्दियों से इस जानवर की पूजा करते चले आ रहे हैं क्योंकि यह समुदाय के लिए बहुत ही पवित्र और बहुमूल्य सम्पत्ति है।

मुख्य चारागाह भूमि घास का एक बहुत बड़ा मैदान घेरती है, जिसे अब 'वेनलॉक डाऊन्स' के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से लगभग एक हजार एकड़ में था, जो पहाड़ियों की कई परतों से विभाजित थी जिसमें 2400 मीटर से ऊँची आकर्षक चोटियाँ मुख्य हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने सन् 1800 ई. में टोडा भूमि के बहुत बड़े क्षेत्र की घेराबन्दी कर दी थी, उसी में 1000 एकड़ का प्रसिद्ध 'वेनलॉक डाऊन्स' भी था।

घेराबन्दी किये गये क्षेत्रों में से कुछ पर चाय और कॉफी उपजाये जाते थे, कुछ यूकिलिप्टस के जंगल के लिए संरक्षित थे, जिनसे राजस्व की प्राप्ति होती थी। इनमें से कुछ भूमि का हिस्सा टोडा को पट्टा पर दे दिया गया था, जिनपर टोडा को आंशिक रूप से निवास करने, जानवरों को चराने और कृषि का अधिकार था।

यद्यपि इस आंशिक अधिकार ने ना तो नीलगिरि के सम्पन्न परिस्थिति का संरक्षण किया और ना ही टोडाओं की समस्याओं का अन्त किया। परम्परागत रूप से टोडा भैंस चराने की धूर्णी प्रणाली का अनुकरण करते थे, जो इन्हें स्थानीय चारागाहों को फिर से अच्छे उत्पादन के लिए तैयार करने में तथा जंगल की आग को रोकने में मदद करता था। इसके अतिरिक्त, पारम्परिक छिछले वनों की भूमि पर उगनेवाले देशी फूल और झाड़ी भैंस के स्वास्थ्य और औषधि की जरूरतों को पूरा करती है। चारागाह भूमि के ह्रास ने भैंसों की उत्तरजीविता पर संकट पैदा कर दिया।

इन प्रजातियों के पोषण एवं परीक्षण की प्रक्रिया ने जनजातियों की सारी सामाजिक संस्था एवं संस्कृति इस तरीके को मजबूत बनाने में लगी हुई है, जिसके अन्तर्गत वे जानवरों को रखते हैं और चारा उपलब्ध कराते हैं। घुमन्तु समाज के लिए जानवरों का महत्व उतना ही है जितना कि किसानों के लिए भूमि / मादा पशु पूँजी के प्रतीक होते हैं, जिन्हें जनजाति समुदाय के बाहर किसी व्यक्ति के हाथों नहीं बेचा जाता जो बहुत कुछ भारतीय समाज एवं संस्कृति की प्रथाओं में विविधता प्रदर्शित करते हैं। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक गुजरते हैं और संभव है कि गरीब संबंधियों को भोगाधिकार ऋण के रूप में दे दिया जाता है और इसी तरह से यह समुदाय के बीच होते चला जाता है तथा यह प्रथा पीढ़ियों को जोड़ने का काम करती है इस संस्कृति के टूटने के साथ ही भारत में आनुवंशिक विविधता का एक बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जाता है। जनजाति लोग आपात कालीन आर्थिक संकट में ही जानवरों को बेचते हैं और बहुत जल्द ही उस कमी को पूरा करने की कोशिश करते हैं। ऐसा सदियों से होते चला आ रहा है और विभिन्न सजातीय समुदायों के अंधाधुंध आदान-प्रदान से आनुवंशिक समाजातियाँ बढ़ जाती है।

कहा जा सकता है कि टोडा आबादी धुमन्तू तरीके से अपनी जीविका के लिए पतनोन्मुख है और उनकी जीविका भैंस की तरफ ही खींची चली जा रही है। समाजिक अन्तर्क्रिया और परम्पराओं का भी पतन हो रहा है। फिर भी इस समुदाय के युवक इसके विपरीत, चारागाही पद्धति से जीवन यापन करनेवाले टोडा आबादी, भैंस से चलानेवाली जीविका ह्रासोन्मुख है जिस कारण उनके सामाजिक अन्तःक्रिया और परम्पराएँ भी ह्रासोन्मुख ही रही है। यह इसके बावजूद कि समुदाय के युवा वर्ग अपने भैंसों के साथ पर्वतीय गाँव में रहना चाहते हैं जो शहरी गंतव्य की ओर पलायन करनेवाली झुकाव के विरुद्ध है। समुदाय के चार में से प्रथम महिला स्नातक के वासामल्ली का कहना है कि "भैंस के बिना टोडा का कोई अस्तित्व नहीं है।

रोपण की संख्या में बढ़ोत्तरी के कारण जंगली जानवरों से बढ़ते संघर्ष, पानी के स्रोतों में बढ़ते ज़हरीली स्राव के कारण पीने के पानी की समस्या, प्लास्टिक उपभोग और मानव प्रत्यूजता समस्याओं के कारण भैंसों की संख्या में भारी गिरावट नज़र आ रही है। इनके अलावा, ऊटी नगर पालिका कचरे को टोडाओं के चारागाहों पर डाल देती है।

कृषि में रूचि खो देने का कारण बहतों ने पड़ोसी कर्नाटक से आनेवाले किसानों को अपनी बची हुई भूमि को बहुत कम दामों पर पट्टे पर दे दिया है जिस कारण वे और अधिक गरीब हो गए हैं, आज राज्य सरकार एवं समुदाय के सामने यह चुनौती है कि किस तरह उच्च शिक्षा जैसे आधुनिक लाभ पहाड़ी जीवन शैली में शामिल करें।

एक टोडा परिवार खेतिहर किसान से प्रति एकड़ दस हजार से पंद्रह हजार पाते हैं जबकि इससे दस गुणा अधिक पट्टाधारी उपजाऊ भूमि से कमा लेता है, उनकी अमीरी इस बात से ही झलकती है कि उनमें अधिकतरों के पास, एक से अधिक गाड़ी, अच्छा घर, कपड़े, अच्छा स्वास्थ्य और बच्चे पढ़े लिखे हैं।

स्थानीय समुदाय के प्रति बदलाते विचार के परिणामस्वरूप, सरकार ने टोडाओं को यूकिलिप्टस युक्त 1200 एकड़ भूमि वापस कर दी।

वन विभाग शाला पुनःउत्पादन अपने तरीके से करना चाहती है। टोडा कहते हैं कि प्राकृतिक पुनःउत्पादन तभी संभव है जब यूकिलिप्टस पूरी तरह उखाड़ लिया जाए।

यद्यपि सरकारी आदेश 2004 में पारित हुआ था, स्वामित्व और भूमि पर अधिकार केवल कागज पर ही रह गया है। अपने भैंसों को चराने के लिए भूमि के अलावा समुदाय की अन्य जरूरतें हैं जैसे स्वास्थ्य सेवा और पशु चिकित्सा, पर्यटन के विस्तार और प्लास्टिक के जमघट से सुरक्षा, नये खरपतवारों के उखाड़े जाने से सुरक्षा, विषैली स्राव का छोड़े जाने से पहले उपचार, आदि।



पेसा अधिनियम 1996 का प्रावधान

छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में उल्लंघन¹

रमेश चंद्र शर्मा

भारतीय संसद ने 'मध्य प्रदेश रिऑरेगेनाइजेशन एक्ट 2000' पारित कर अविभाजित मध्य प्रदेश के 16 2' दक्षिण-पूर्वी जिलों² को पृथक छत्तीसगढ़ राज्य का दर्जा दिया। छत्तीसगढ़ राज्य के निर्माण के लिए इस क्षेत्र के लोगों ने 1925 से ही मांग करनी शुरू कर दी थी।

अलग राज्य के निर्माण के बाद पहली नीति-दस्तावेज सरकार की ओर से वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय ने औद्योगिक नीति (2004-2009) के रूप में प्रस्तुत किया। छत्तीसगढ़ की 2004-09 के अवधि की औद्योगिक नीति के अनुसार, "छत्तीसगढ़ एक बीसवीं शताब्दी का राज्य है जिसके पास प्रचुर प्राकृतिक संसाधन है। तेजी से विकास हो, इसे सुनिश्चित करने के लिए छत्तीसगढ़ सरकार उन क्षेत्रों के समुचित उपयोग को बढ़ावा देगी, जहाँ की प्रचुर संसाधनों का अभी तक दोहन नहीं हुआ है। राज्य के सभी क्षेत्रों में उद्योग स्थापित हैं, इसलिए इन्हें प्राप्त संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग कर औद्योगिक विकास के दर को बढ़ावा देना चाहिए।"

राज्य में जनजातियों की आबादी काफी अधिक है (34 प्रतिशत) और पूरे क्षेत्र का एक तिहाई हिस्सा पंचायत एक्सटेंशन इन टू शेड्यूल एरियाज (पेसा) एक्ट के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। विकास संबंधी राज्य के भविष्य-निरूपण को 2001 में राष्ट्रीय विकास परिषद के सदस्यों के सामने प्रस्तुत करते हुए छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री शायद यह तथ्य नजर अंदाज कर गए थे। यह भविष्य-निरूपण आदिवासियों, भूमिहीनों एवं गरीब लोगों की आकांक्षाओं की अनदेखी करता है और उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि छत्तीसगढ़ का आधार सिर्फ औद्योगिकीकरण ही है। फिर, आदिवासी बहुल दांतेवाड़ा जैशपुर, कोरिया, सरगुणा एवं कर्वधा जिलों का राज्य औद्योगिक नीति के तहत विशिष्ट औद्योगिक जोन के रूप में घोषणा ने इस आशय को और भी स्पष्ट कर दिया। तब से आदिवासियों की भूमि का औद्योगिक उद्देश्यों के लिए स्थानांतरण राज्य में काफी तेज गति से हुआ है। इस दौरान पेसा का स्पष्ट एवं लगातार उल्लंघन होता रहा है, क्योंकि यह एक्ट बिना संबंधित ग्राम सभा एवं आदिवासी स्व-शासन के अन्य संस्थाओं की सहमति से सभी कार्यों पर रोक लगाता है।

पेसा के क्रियान्वयन के पिछले एक दशक के दौरान, जमीनी स्तर पर समस्याएं एवं उलझनें रही हैं। इसके प्रावधानों का उल्लंघन विशेषकर उन राज्यों, में काफी तेजी से बढ़ा है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है एवं आदिवासियों की बहुलता है। ये प्राकृतिक संसाधन राज्य के आर्थिक विकास की रीढ़ हैं और इन्हें आदिवासी समुदायों के जीवन एवं जीविका को खतरे में डालकर ही प्राप्त किया जाता है।

यह हमें इस तथ्य पर विचार करने को मजबूर कर देता है कि ऐसी स्थितियों में जब सरकार एवं स्थानीय समुदायों के बीच संघर्ष चल रहा हो, ग्राम सभा को हस्तक्षेप करने का अधिकार है या नहीं एवं एक्ट के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार एवं शक्तियां कितने दूरगामी हैं। यह तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब केन्द्र एवं राज्य में राजस्व एवं वन विभाग में प्रदत्त अधिकारों को लेकर लगातार संघर्ष की स्थिति बनी हुई हो। आज आदिवासी समुदाय एवं सरकारी तंत्र दोनों ही संघर्ष की स्थितियों एवं समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

इस पृष्ठभूमि में रायगढ़ जिले के कुछ चुने हुए गाँवों में 26 से 28 जुलाई 2006 तक एक अध्ययन किया गया। इसके उद्देश्य थे:

- पेसा के उल्लंघनों पर दस्तावेज तैयार करना
- उल्लंघन की स्थितियों पर सुझाव देना

इस अन्वेषण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में शामिल था विवादित विषय पर एक जनसंवाद करना और फिर गाँवों का भ्रमण। रायगढ़ में आयोजित जन संवाद में स्थानीय गैर सरकारी संस्थानों, मीडिया, नागरिक समूहों के प्रतिनिधियों समेत 150 से अधिक लोगों ने भाग लिया। उन्होंने अन्वेषण दल के समक्ष अपने विचार, अनुभवों एवं समस्याओं को रखा।

पेसा एक्ट 24 दिसंबर 1996 से लागू हुआ। इस एक्ट ने नौ राज्यों - आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान के आदिवासी इलाकों में पंचायत के प्रावधानों का विस्तार किया एवं आदिवासी समाजों के प्राकृतिक संसाधनों पर पारंपरिक अधिकारों को बहाल किया। सभी राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों को अपनी भौगोलिक सीमा के अंदर विद्यमान पंचायती राज्य एक्टों में संशोधन का अधिकार दे दिया गया ताकि वे एक वर्ष के अंदर यानी 24 दिसंबर 1997 तक इसमें पेसा के प्रावधानों को शामिल कर सकें। इसी अनुसार छत्तीसगढ़ सरकार ने पेसा एक्ट के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए पंचायती राज्य एक्ट 1996 में कुछ नए प्रावधानों को भी शामिल किया। पेसा के प्रावधानों में शामिल थे:

- पारा, मजरा एवं तोला स्तर पर ग्राम सभा की स्थापना।
- ग्राम सभा आदिवासी समुदायों की परंपराओं, मान्यताओं एवं संस्कृति की रक्षा करेगी।
- ग्राम सभा प्रबंधन एवं सुरक्षा के उनके पारंपरिक तरीकों के द्वारा सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रबंधन एवं सुरक्षा करेगी।
- स्थानीय विवादों का निपटारा ग्राम सभा के द्वारा होगा।
- जमीन अधिग्रहण की स्थितियों में प्रशासन ग्राम सभा की अनुमति लेगा।

- ग्रामसभा को थोड़ी मात्रा में उत्पन्न जंगल-उत्पादों पर अधिकार रहेगा। उन्हें आदिवासियों को भूमि वापस दिलाने का अधिकार होगा। उनका आदिवासियों को कर्ज देने की स्थितियों पर, सामाजिक संस्थाओं के द्वारा चलाई जाने वाली जनजातीय-कल्याणो के कार्यक्रमों एवं आदिवासी क्षेत्रों एवं समुदायों के विकास की स्थानीय एवं उपयोजनाओं पर नियंत्रण रहेगा।
- स्थानीय बाजारों एवं मेलों पर ग्राम सभा का नियंत्रण रहेगा।
- ग्राम सभा को शराब के आसवन, निषेध एवं निर्माण पर नियंत्रण का अधिकार होगा।
- जिला पंचायतों को छठे अनुसूची के अंतर्गत आने वाले जिला पंचायतों के समान अधिकार एवं शक्तियां होंगी।



रायगढ़ जिले में जमीन अधिग्रहण की घटनाएं

रायगढ़ जिले में आदिवासियों की संख्या कुल आबादी का 38 प्रतिशत है, जबकि इसके आधे से ज्यादा इलाके पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आते हैं।^१ यह जिला अपने प्रचुर जंगल-आवरण एवं नदियों, जैसे-केलो, कुरकुट, महानदी एवं मांडा के कारण जाना जाता है।

केलो नदी पर साठवीं के दशक में बांध के निर्माण ने विकास की कुछ आशा की किरण जगाई थी, पर 1995-96 में एक षड्यंत्र के तहत औद्योगिक उपयोग के लिए नदी को बेच कर विकास के कार्यों पर अंकुश लगा दिया गया। जिला में कोयला एवं खनिज का प्रचुर भंडार है जो कि औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ सरकार भी जिलों में अधिक औद्योगिक प्रसार पर ध्यान दे रही है। धारघोडा जिले में कोयले का खनन पूरे जिले में हो रहे खनन की मात्रा की ओर संकेत करता है।

पट्टा धारी का नाम	खनिज	ग्राम	क्षेत्र (हे.)	अवधि
साउथ इस्टर्न कोल फील्ड लि., रायगढ़	कोयला	बारोद	72.043	01.05.73 से 30.04.2003
मेसर्स जिन्दल स्टील एण्ड पावर लि., रायगढ़	कोयला	डोगामौहा एवं 8 अन्य	705.556	10.12.1997 से 18.12.2027
मेसर्स मोनेट इस्पात लि., रायपुर	कोयला	मीलूपारा एवं अन्य	830.000	07.06.02 से 06.06.2032
मेसर्स जिन्दल पावर लि., रायगढ़	कोयला	डोगामौहा एवं अन्य	964.650	07.10.05 से 06.10.2035
मेसर्स रायपुर अलोएज एण्ड स्टील लि.	कोयला	करवाही एवं अन्य	335.736	25.10.05 से 24.10.2035
मेसर्स जयसवाल निको लि., नागपुर	कोयला	कोडकेल एवं अन्य	884.846	10.04.06 से 12.04.2026

स्रोत: जिला समाहर्तालय, रायगढ़, छत्तीसगढ़

जैसा कि उपरोक्त सारणी में दिया गया है, इन कोयला के खदानों में से एक को छोड़कर बाकी सभी 1996 में पेसा एक्ट के लागू होने के बाद शुरू हुए हैं। जिले में विभिन्न स्थानों पर ग्राम सभा सदस्यों के साथ विचार-विमर्श एवं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त तथ्य इस बात का खुलासा करते हैं कि इन सौदों में पेसा एक्ट का कई बार उल्लंघन हुआ है।

उदाहरण के लिए हम खरसीमा तहसील के सिंधनपुर गांव को ले सकते हैं जहां प्रशासनिक एवं ग्राम सभा के विरोध के बावजूद प्रशासनिक एवं चराई की भूमि का औद्योगिक उद्देश्यों के लिए अधिग्रहण किया गया है। स्टेट इन्वेस्टमेंट इन्हांसमेंट बोर्ड (एस. ई. आई. बी.) ने 21 मार्च 2003 को ग्राम सभा को यह निर्देश दिया कि वह 31 हेक्टेयर कृषि एवं चराई

योग्य भूमि के अधिग्रहण के लिए दो महीने के अंदर अपनी सहमति प्रस्तुत करे। ग्राम सभा ने इसी दौरान एक सभा में प्रस्तावित अधिग्रहण के विरोध का प्रस्ताव पारित कर दिया। किन्तु, सब-डिवीजनल अधिकारी ने यह अधिसूचना जारी की कि ग्राम सभा ने अपने 23 अप्रैल 2004 के पत्र द्वारा जमीन पर एक फैक्ट्री के निर्माण के लिए अपनी सहमति दे दी है। ग्राम सभा के अध्यक्ष श्री आशाराम मांझी के अनुसार, ग्राम सभा ने फैक्ट्री के निर्माण के लिए जमीन के अधिग्रहण के विरोध का पुनः प्रस्ताव पारित कर दिया। जिला प्रशासन ने ग्राम सभा के इस निर्णय की अनदेखी करते हुए खरसिआ के सब डिविजनल ऑफीसर को यह निर्देश दिया कि वह मोनेट कम्पनी के द्वारा प्रशासनिक एवं निजी जमीन पर किए जाने वाले सर्वे की अनुमति दे दें। तदनुपरान्त, रायगढ़ समाहरणालय ने भूमि अधिग्रहण एक्ट की धारा 6 के अंतर्गत सिंघनपुर क्षेत्र के 19.816 हे. भूमि अधिग्रहण की आज्ञा दे दी।

सिंघनपुर की ग्राम सभा ने यह बात छत्तीसगढ़ के मुख्य न्यायाधीश के नोटिस में भी लाने की कोशिश की। आधार यह था कि गांव 'विश्व विरासत स्थल' के अंतर्गत आता है एवं ऐसे गतिविधि की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो गांव की भित्तियों को प्रभावित करते हों। ये भित्तियां मोनेट संयंत्र से सिर्फ 500 मी. की दूरी पर स्थित हैं। तमाम आवेदनों एवं विरोधों के बावजूद प्रशासन ने सिंघनपुर की ही 1.453 हे. चराई की भूमि का मोनेट कंपनी के लिए अधिग्रहण कर लिया। प्रशासन ने इस बात की सूचना जनघोषणा या अधिसूचना के द्वारा नहीं दी। डिस्ट्रिक्ट ट्रेड एंड इण्डस्ट्रीज सेंटर, रायगढ़ का मानना है कि 11.11.2005 को सिंघनपुर में 19.186 हे. भूमि का अधिग्रहण किया गया। इसका साफ अर्थ है कि चराई की भूमि का अधिग्रहण प्रशासन द्वारा किया गया। विडंबना यह है कि पीड़ित किसानों को इस विषय में न ही कोई लिखित सूचना मिली है और न ही उन्होंने अधिग्रहण के लिए अपनी सहमति दी है। लोगों की सहमति इस मामले में आवश्यक है क्योंकि यह क्षेत्र पेसा एक्ट के अधिकार क्षेत्र में आता है जहाँ ग्राम सभा को भूमि के उपयोग के प्रतिरूप के निर्धारण के बारे में निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार है। कानून की अनदेखी कर हुई इस अधिग्रहण के बावजूद, पीड़ित लोगों को अभी तक मुआवजा नहीं मिला है।

ग्राम सभा के तमाम विरोधों के बावजूद, पेसा एक्ट के उल्लंघन का एक मामला घरघोडा तहसील के कुछ गांवों में भी प्रकाश में आया है। उदाहरण के लिए 6 मार्च 2006 को जिला योजना समिति, रायगढ़ के समाहर्तालय कार्यालय के द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार घरघोडा तहसील के तमनार, सालिहायारा, गोढ़ी, उत्तरी एवं दक्षिणी रीगोन, कुंजेमुए, पारा तथा अन्य क्षेत्रों में जिंदल स्टील एवं पावर लि. के लिए इन गांवों की 29.595 हे. भूमि के अधिग्रहण की जन उद्घोषणा के बाद जबर्दस्त विरोध प्रदर्शन हुए। अधिग्रहण के लिए चिन्हित भूमि में गांव की ओर जाने वाला मुख्य सड़क, धार्मिक स्थान, एक तालाब एवं निस्तार भूमि जैसे कब्रगाह, शमशान एवं गोशाला शामिल हैं। थाना प्रमुख के कार्यालय में दायर एक लिखित शिकायत के अनुसार, गांववालों ने इस दावे को गलत बताया कि जिंदल स्टील एवं पावर कम्पनी ने 'नो ऑब्जेक्शन' पत्र ग्राम सभा से प्राप्त किया था।

उनके अनुसार यह पत्र ग्राम पंचायत द्वारा जारी किया गया था और 'पंचायत' शब्द को सफेद स्याही से मिटा कर उस जगह 'सभा' शब्द लिख दिया गया था। इस असंवैधानिक एवं झूठे कार्यवाही के खिलाफ गांववालों की कार्यवाही के मांग के बावजूद कम्पनी के विरुद्ध किसी भी प्रकार की कार्रवाई नहीं की गई है।

अधिग्रहण के पहले भूमि अधिग्रहण एक्ट, 1894 की धारा 4 (1) के अंतर्गत की प्रक्रिया के अनुसार जारी अधिसूचना के बाद गांववालों ने अनेकों लिखित शिकायत की एवं कई बार विरोध दर्ज किया। लेकिन भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने लोगों की लिखित शिकायत के संदर्भ में किसी भी कार्यवाही की कोई सूचना दर्ज नहीं की है। बदले में, अधिग्रहण प्रक्रिया के दूसरे चरण पर कार्य शुरू कर दिया गया। ग्राम सभा एवं गांव वालों के विरोध पर रायगढ़ के समाहर्ता का कहना था नो ऑब्जेक्शन प्रमाणपत्र ग्राम सभा से लेने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि ग्राम सभा से प्रक्रिया के अंतर्गत सिर्फ विचार-विमर्श किया जाता है। उन्होंने आगे कहा कि 'जहाँ तक पीड़ित किसानों के पुनर्स्थापन एवं रोजगार का प्रश्न है, इसे 'अवार्ड नोटिस' में जगह मिलना चाहिए। भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया पर कार्यवाही सरकारी आदेश के आलोक में की जा रही है एवं यह अनिवार्य है। एक्ट एवं कानून के अनुसार गांव वालों एवं ग्राम सभा के विरोध को नहीं स्वीकारा जा सकता'।

जाँच दल के सामने ऐसे कई मामले आए जहाँ अधिग्रहण की प्रक्रिया एवं कार्यवाही स्पष्ट नहीं है। धारघोडा तहसील के राबो, कलामी, आमापली, डोकरामुडा, विलासखर, हट्टाडीह, गडगांव, चरतंगर, डेहराडीह, बारभोना पखाद्रह, पूंजीपात्रा एवं सराईपाली गांवों में ऐसे कई मामले देखने को मिले जहाँ प्रशासनिक तंत्र ने जनजातीय स्व-शासन के प्रावधानों की अनदेखी कर निजी खदान कम्पनियों को भूमि अधिग्रहण करने में मदद की। पेसा एक्ट का उल्लंघन सिर्फ खदान क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें पांचवीं अनुसूचित क्षेत्र में जारी विकास प्रक्रिया के अंतर्गत लोगों के भूमि, जंगल और जमीन संबंधी अधिकारों के उल्लंघन भी शामिल हैं।

भूमि अधिग्रहण एवं पेसा एक्ट के विभिन्न कानूनों एवं प्रावधानों, केन्द्रीय जल आयोग के नियमों एवं पर्यावरण के कानूनों के उल्लंघन का एक विशिष्ट मामला कुरकुट नदी पर बने बांध में देखने को मिला है। जैसा कि पूर्व में भी चर्चा की जा चुकी है कि गांव वालों ने जिंदल स्टील एवं पावर लि. द्वारा धारघोडा तहसील में प्रस्तावित बांध के निर्माण का विरोध किया था। जब बांध के विस्तार का विषय आया तो जी.एस.पी.एल. के विस्तार पर एक जन-सुनवाई 30 जनवरी 2005 को आयोजित की गई। इस सुनवाई में, 1922 आवेदनों एवं 42000 हस्ताक्षरों के माध्यम से राज्य एवं केन्द्र सरकार से आदिवासियों एवं किसानों के हित में बांध के विस्तार पर कार्य को स्थगित करने की मांग की गई। लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए कार्यरत दो संस्थाएं-एकता परिषद एवं लोकशक्ति ने नेशनल इन्वायरनमेन्टल अपीलैट अथॉरिटी में इस बाबत दो अपील भी दायर की। हालांकि अथॉरिटी का इस विषय पर निर्णय आना अभी बाकी है, जे.एस.पी.एल. के विस्तार के द्वितीय चरण पर कार्य अब पूरा होने के करीब है।

तमनापुर गांव के अधिसूचित क्षेत्र में ऊर्जा संयंत्र के निर्माण के लिए भूमि का अंधाधुंध हस्तांतरण इस बात का उदाहरण है कि सूचना का किस प्रकार गलत विनियोजन हो सकता है। तमनार के आदिवासियों की बहुत सी जमीनें बेनामी तौर पर बेच दी गईं, जबकि 52 पंचायतों के लोगों ने एकजुट होकर यह निर्णय लिया था कि ऊर्जा-संयंत्र के निर्माण के लिए कोई जमीन नहीं देंगे। आज 2000 एकड़ की सार्वजनिक संपत्ति-भूमि जे.एस.पी.एल. के नियंत्रण में है। 100 एकड़ की निजी एवं सार्वजनिक संपत्ति-भूमि पर पानी का जमावड़ा है। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर गलत कार्यवाही की गई जिसमें ग्राम सभा के रिकार्ड से

छेड़-छाड़ भी शामिल है। उदाहरण के लिए ग्राम सभा के प्रस्ताव नं. 14 के अनुसार नो ओब्जेक्शन प्रमाण पत्र 2003 में जारी किया गया था, जबकि ग्राम सभा के पंजिका में 14 नं. अंत्योदय योजना के बारे में है। अकेले रायगढ़ जिले में 1740 हे. कृषि भूमि का औद्योगिक वजहों से उपयोग हो रहा है। भूमि अधिग्रहण के अधिकतर मामलों में पेसा का न केवल उल्लंघन हुआ है, बल्कि अनेकों पर्यावरणीय कानूनों को नजरअंदाज किया गया है।

सरिपाल में अपने विस्तार के दौरान, जे. एस. पी. एल. ने कुछ महत्वपूर्ण पर्यावरणीय नियमों का पालन नहीं किया। उदाहरण के लिए आवश्यक पर्यावरणीय समर्थन-पत्र एवं उचित एनवायरुमेन्ट इम्पैक्ट असेसमेन्ट (इ.आइ.ए.) नहीं प्राप्त किया। इससे पहले कि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा उन्हें हरी झंडी मिलती, प्रस्तावित जगह पर कार्य शुरू कर दिया गया था। संस्थाओं एवं संबंधित पत्रों के दवाब में आकर कम्पनी ने ई. आई. ए. पर कार्य तो शुरू किया, परन्तु यह सब एक दिखावा मात्र था एवं रिपोर्ट में अस्पष्टता थी। पारिस्थितिकी संवेदनशील प्राकृतिक आवासों जैसे राष्ट्रीय उद्यानों, जानवरों की शरणस्थलियां, स्वास्थ्य सैरगाहों, पुरातत्वीय स्मारकों एवं सुरक्षा प्रतिष्ठानों की 25 कि. मी. के अन्दर की उपस्थिति संबंधी सूचना पर्यावरण मंत्रालय से योजना को पास कराने के दौरान नहीं दी गई थी। कम्पनी द्वारा तैयार ई. आई. ए. रिपोर्ट ने भी क्षेत्र के लोगों पर स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के स्तर पर होने वाले प्रभावों की अनदेखी की।

अब जब जी. एस. पी. एल. जिले में अपने कार्य-क्षेत्र के विस्तार की योजना बना रहा है, कुछ बिन्दुओं पर अविलंब ध्यान देने की आवश्यकता है। यह मालूम नहीं हो सका है कि कितनी भूमि, जंगल और राजस्व का अधिग्रहण जिंदल स्टील इंडस्ट्री को रायगढ़ जिले में स्थापित करने में हुआ है। साथ ही तमनार, राबों एवं अन्य अनुसूचित-क्षेत्र, जहाँ भूमि अधिग्रहण हुआ है, के ग्राम सभाओं एवं जनता के विरोध एवं शिकायतों पर हुई कार्यवाही का कोई ब्यौरा नहीं प्राप्त हो सका है। प्रभावित लोगों का पुनर्स्थापन कैसे हो, यह भी अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। जब तक कम्पनी के विरुद्ध लम्बित मामले सुलझा नहीं लिये जाते, कम्पनी को विस्तार की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि सरकार उद्योगों का उपयोग के लिए दिए गए विभिन्न श्रेणियों की जमीन का खुलासा नहीं करना चाहती। दस्तावेजों को अव्यवस्थित ढंग से रहना इस बात को और भी स्पष्ट करता है कि वह निजी कंपनियों से मिली हुई है। सरकार को यह मालूम है कि सही सूचना के लीक हो जाने पर लोग अपने उचित अधिकारों, जिनसे उन्हें वंचित रखा गया है, की मांग करेंगे और उनकी चालबाजी का विरोध करेंगे। प्रभावित लोगों को प्रदत्त संवैधानिक अधिकारों से वंचित रखने का चलन आ गया है। एकता परिषद द्वारा 2004⁴ में की गई सर्वे के अनुसार 40 हजार एकड़ जमीन, जिसमें 60 प्रतिशत खेती-योग्य भूमि थी, का आबंटन राज्य के निर्माण के बाद कंपनियों को किया जा चुका है। और यह सत्य है कि राज्य में हुए सभी भूमि अधिग्रहण लोगों को गलत जानकारीयां एवं झूठे वायदों के सहारे मूर्ख बनाकर किया गया है।

पिछले तीन वर्षों में पूरे राज्य में औद्योगिक विकास के विरुद्ध जबर्दस्त प्रदर्शन हुए हैं। जनता एवं जन-संस्थानों की ओर से भी उद्योगों के नाम पर जमीन पर कब्जा करने से संबंधित विवादों का निपटारा करने का दवाब है। आरोपों से घिरी सरकार ने 2004 में विवादों का निपटारा के लिए लैंड डीस्प्यूट बोर्ड की स्थापना की घोषणा कर दी। लेकिन इस पर काम होना अभी तक बाकी है।

बिना उचित मुआवजा दिए सरकार के द्वारा लोगों की छोटी सी छोटी जीविका के स्रोतों को छीन लेने से लोगों की स्थिति दयनीय हो गई है। इससे पूरे राज्य में भूखमरी की स्थिति आ गई है एवं राज्य के विकास की रूपरेखा अब चिंतन का विषय बन चुका है। चौरंगा, नागटनर, रायगढ़ एवं सिपट में हो रही पुलिस फायरिंग एक कानून-व्यवस्था की समस्या नहीं है, बल्कि यह क्षेत्र में अत्यधिक गरीबी से संबंधित मामला है।

8,500 करोड़ की आर्थिक छूट के साथ 'निर्देशित प्रेरक', 'रियायत', 'प्रेरक', 'विशेष पैकेज' एवं 'उपहारें' - यह सब क्षेत्र को निवेश के अनुकूल बनाता है। वैश्वीकरण के इस युग में सरकार के लिए उद्योगों के लिए मोटी आर्थिक सहायता प्रदान करना कृषि के लिए छोटी आर्थिक सहायता देने की तुलना में ज्यादा आसान है। इसके अलावा न्यायालयों के निर्णयों एवं निदेशकों की अनदेखी कर मंत्रालयों से अनुमति एवं लाइसेंस लेने के बाद उद्योगों के लिए जमीन को लेना और जंगलों का जमीनों की खुदाई के लिए उपयोग करना

इस बात का सबूत है कि संविधान द्वारा लोगों को प्रदत्त गारंटी एवं रक्षोपयों का उपहास उड़ाया जा रहा है। बांधों की उंचाई उद्योगों को डूबने से बचाने के लिए, कम की जा रही है।

सरकार की इन कोशिशों का लोगों के आंदोलनों द्वारा पुरजोर विरोध किया गया है, किन्तु परिणाम अच्छा नहीं रहा। इसका एक कारण कानून को लागू करने वाले तंत्र का मजबूत पक्ष की ओर झुकाव भी है। जन संस्थाओं की क्षेत्र में हो रही गतिविधियों का सरकार अनदेखी कर रही है, जबकि औद्योगिक प्रतिष्ठानों का बहुत तेजी से विकास हो रहा है। कानूनी प्रक्रिया के दौरान भी जन-संस्थाओं को कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि ऐसे मामलों का निबटारा अध्यादेश के आलोक में, एक सीमित अवधि में नहीं हो पा रहा है। यहाँ तक की संबंधित प्राधिकरण ने अभी तक ठीक ढंग से कार्य करना शुरू भी नहीं किया है। इनसे उत्पन्न स्थिति बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि औद्योगिक घराने अपेक्षित न्यूनतम नियमों का पालन किए बगैर विस्तार में लग गए हैं।



सुझाव

पेसा एक्ट के उल्लंघन की जांच के दौरान ऐसे सबूत मिले हैं जो साबित करते हैं कि इनसे आदिवासियों के जीवन और जीविका दोनों को खतरा उत्पन्न हुआ है। स्थिति को प्रभावी रूप से संभालने के लिए विभिन्न स्तरों पर योजनाओं के निर्माण की आवश्यकता है। ऐसे कुछ सुझाव जिन पर त्वरित कार्यवाही की जरूरत है की रूपरेखा नीचे दी गई है -

- भारतीय संविधान का परिशिष्ट 13 पारंपरिक एवं मान्यताओं आधारित अधिकारों से संबंधित है। इन प्रावधानों का उपयोग विभिन्न जगहों पर हो रहे संघर्षों के समाधान में किया जा सकता है।

- लैंड रेवेन्यू कोड, 1959 की धारा 237 (2) की प्रावधानों के संबंध में कई निर्णय आ चुके हैं (परिशिष्ट 3)। विभिन्न प्रशासनिक गतिविधियों पर इनके आलोक में विचार किया जाना चाहिए।
- ऐसे गांवों में जहाँ निस्तार भूमि का औद्योगिक उपयोग के लिए अधिग्रहण किया गया है, निस्तार पत्रक के आधार पर समाधान ढूंढा जाना चाहिए।
- ऐसे क्षेत्रों में जहां जमीन का हस्तांतरण लैंड रेवेन्यू कोड की धारा 237 (2) के प्रावधानों के अनुकूल नहीं हुआ है, भूमि-रिकार्डों में संशोधन किया जाना चाहिए एवं भूमि आबंटन की पूरी प्रक्रिया को निरस्त कर देना चाहिए।
- ग्राम सभा एवं ग्राम सभा के दस्तावेज सरकारी हैं। इनसे किसी प्रकार की छेड़छाड़ गंभीर अपराध हैं। अतः ऐसी घटनाओं के साथ भारत के क्रिमीनल प्रोसिजर
- कोड के तहत निबटना चाहिए।
- ऐसी सभी जमीनें जिनका गांव के निस्तार उपयोग के लिए पंजीकरण हुआ था, 1958 में सुरक्षित वन के रूप में घोषित कर दिए गए थे। वन विभाग अभी तक इन जमीनों के संबंध में कोई रिपोर्ट या रिकार्ड प्रस्तुत नहीं कर सका है। अतः यह कर्नलेशन ऑफ फॉरेस्ट एक्ट 1980 का उल्लंघन है। 202/95 के तहत इस संबंध में एक अपील भारत के सुप्रीम कोर्ट में लम्बित है।
- वैकल्पिक वृक्ष-रोपण के लिए रियायती शुल्क रु. आठ लाख प्रति हेक्टेयर निर्धारित की गई है। यह शुल्क औद्योगिक उपयोग के लिए आबंटित किए गए जमीन के संबंध में भी लागू होना चाहिए।
- लैंड रेवेन्यू कोड के अध्याय 18 के अनुसार गाँव की निस्तार भूमि 'दखल रहित भूमि' मानी जाती है। 'दखल रहित भूमि' को भी इंडियन फॉरेस्ट एक्ट 1927 की धारा 29 के अनुसार सुरक्षित वन का दर्जा प्राप्त है। 'दखल रहित भूमि' की स्थिति के संबंध में अस्पष्टता पिछले 50 वर्ष से बनी हुई है। इस दोष को अतिशीघ्र दूर कर देना चाहिए।

टिप्पणियाँ

1. यह लेख श्री पी.वी. राजगोपाल, श्री सुभाष लोमटे, श्री बालाजी पांडे एवं श्री रमेश चन्द्र शर्मा द्वारा जुलाई 2006 में की गई क्षेत्र-अन्वेषण पर आधारित है।
2. 16 जिलों में दांतेवाड़ा, बस्तर, महासमुद, कर्वधा, बिलासपुर, कंकेर, राजनंदनगांव, दुर्ग, धमतरी, रायपुर, जंजगीरचंपा, कोरबा, रायगढ़, जलपुर, सरगुणा एवं कोरिया सम्मिलित हैं।
3. धारघोडा, लायलूंगा एवं धर्मजा रायगढ़ जिले का इगढ़ तहसील अनुसूचित क्षेत्रों की सूची में आता है, जबकि रायगढ़ एवं खरसिया आंशिक रूप से अनुसूचित क्षेत्रों में आते हैं।
4. अनसुनी आवाज (एकता परिषद की अप्रकाशित रिपोर्ट)



पेसा तथा आदिवासी स्वशासन का भ्रम

प्रदीप प्रभु

भारत की अधिसंख्यक जनसंख्या गाँवों में ही रहती है, परन्तु यह एक विद्रुप ही है कि स्वतंत्र भारत को 'गाँवों' को संविधान का अंग बनाने में 42 वर्ष लग गये। संविधान का 73वें संशोधन, जो कि राष्ट्र के लोकतांत्रिक इतिहास में एक मील का पत्थर है, अनुच्छेद 243 के द्वारा विकास तथा स्वशासन के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिये नई पहल लाया है। यह ऐसा आधुनिक शासनकला को इतिहास के आईने में देखने तथा आधुनिक प्रशासन के आचरण को परम्पराओं के जरिये में मृदु बनाने के लिये प्रतिमान स्थापित करता है। आधुनिक भारत के इतिहास का नया अध्याय लिखे जाने या पुनर्लेखन¹ की प्रतीक्षा कर रहा था जिस नये इतिहास के लेखक भारत के जनजातिगण होंगे।

पंचायती राज के राज्यवर्ती विषय होने के कारण अनुच्छेद 243 (जी) राज्य सरकारों से अपेक्षा करती है कि वे पंचायतों को स्वशासन संस्थानों के रूप में कार्य करने हेतु आवश्यक अधिकार और शक्तियाँ कानून बनाकर प्रदान करे। ये कानून पंचायतों को आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय हेतु योजनाओं को बनाने और उनके कार्यान्वयन हेतु सत्ता हस्तांतरित करने के उद्देश्य से बनाये गये थे। 73वें संशोधन के द्वारा एक प्रायोगिक व्यवस्था की गई थी परन्तु राज्य सरकारों पर ग्रामीणों को सत्ता तथा अधिकार सौंपने का दायित्व होने के

कारण यह अपने वास्तविक सशक्तिकरण के लक्ष्य से पीछे ही रह गई। कालानुक्रम में घटित घटनायें दर्शाती हैं कि सत्ता को निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ से लोगों तक हस्तांतरित करने पर राज्यों के विशिष्ट राजनैतिक हस्तियों का रुख अनिच्छा से लेकर विरोध तक का रहा। कई राज्यों को इन परिवर्तनों को लागू करने हेतु बाध्य करने के लिये केन्द्रीय विकास अनुदानों को रोकना भी पड़ा। परन्तु इन परिवर्तनों द्वारा भी ग्राम स्वशासन को लागू नहीं किया सका।



जनजातीय स्वशासन

अनुच्छेद 243 (एम) के द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में 73वें संशोधन के स्वतः विस्तार को बाधित ही किया गया है। अनुच्छेद 243 (एम) का विरोध दो वास्तविकताओं पर आधारित था। पहली वास्तविकता आदिवासियों के स्वशासन संबंधित अधिकारों के प्रति कटिबद्धता का इतिहास है जो कि औपनिवेशिक शासन काल में लम्बे संघर्ष के रूप में परिलक्षित होता है। इसका एक शास्त्रीय उदाहरण विल्किन्सन रूल है जिसने झारखण्ड के कोल्हान क्षेत्र में मुण्डा मानकी आधारित स्वशासन प्रणाली को मान्यता प्रदान की।¹² दूसरी वास्तविकता इस बात की मान्यता है कि जनजातीय क्षेत्रों में जो परम्परागत जनजाति स्वशासन संस्थान अभी भी मौजूद हैं उनके परिप्रेक्ष्य में 73वें संशोधन को जमीनी सच्चाई से जोड़ने की आवश्यकता है। अनुच्छेद 243 (एम) इस प्रकार परम्परागत जनजाति स्वशासी समुदायों को संविधानिक गुजाईश उपलब्ध कराता है और आदिवासियों के विकास के लिये स्वशासन को मजबूत बनाने हेतु कानूनी उपलब्ध करता है।

आश्चर्य नहीं कि राज्य सरकारें ने अनुच्छेद 243 (एम) के जरूरतों की अनदेखी कर पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में संविधान के प्रतिकूल रूप से पंचायती राज नियम को अपना रही है। संविधान का यह उल्लंघन न तो केन्द्र सरकार और न ही राज्यपाल तथा आदिवासी विधायकों के लिये कोई महत्वपूर्ण मुद्दा था। यह अरुचिकर स्थिति आदिलाबाद के

गोंडवाना संघर्ष समिति द्वारा आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के समक्ष मंडल चुनावों की वैधता को लेकर चुनौती दायर किये गये जाने तक बनी रही। इसने अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज कानून की व्यवहारिकता पर ही प्रहार किया। काश्टकारी संगठन द्वारा मुम्बई उच्च न्यायालय में लाया गया चुनौती वाद, पटना उच्च न्यायालय में खूटकट्टी रैयत संघ द्वारा दायर याचिका तथा सर्वोच्च न्यायालय के अन्तरिम आदेश सभी में एक ही निष्कर्ष था जिसमें अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज कानून का प्रयोग असंवैधानिक माना गया। इन निर्णयों से एक संवैधानिक शून्यता का वातावरण व्याप्त हो गया। "यह एक अभूतपूर्व स्थिति थी जहाँ औपचारिक संस्थापन असंवैधानिक थे और परम्परागत प्रथाओं को अभी तक कानूनी मान्यता नहीं मिली थी।"

संविधान के पाँचवीं, छठी, ग्यारहवीं तथा बारहवीं अनुसूचियाँ पंचायती राज संस्थाओं से सीधे टकराती हैं। अतः उनमें समरसता लाने तथा इन क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के लिये अन्य कानूनों में संशोधन हेतु सुझाव देने के लिये दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में विभिन्न राज्यों तथा राजनैतिक दलों से सम्बद्ध आदिवासी सांसदों की एक विशेष समिति का गठन किया गया।

भूरिया समिति ने परम्पराओं को तोड़ते हुए अपनी अनुशंसा दी, जिन्हें यदि नये कानून में समाविष्ट कर दिया जाता (जैसा कि बाद में हुआ भी) तो यह स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् के अन्य सभी कानूनों से मूल रूप में अलग होता। समिति ने अपनी मूलभूत सिफारिशों जो बाद में पेसा में समाविष्ट की गईं) में विकेन्द्रीकरण के व्यवहार को पुनः स्थापित करते हुए स्पष्ट किया कि विकेन्द्रीकरण लोकतंत्र की सबसे निचली सीढ़ी ग्राम पंचायत तक सत्ता का हस्तांतरण मात्र नहीं है। अपितु लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिये नागरिकों के सशक्तीकरण की आवश्यकता है ताकि वे सहभागी लोकतांत्रिक ढाँचे के अन्दर स्वशासन चला पायें।

समिति ने जनजाति स्वशासन की परिधि में सभी जनजातियों को समाहित करने के लिये सभी आदिवासी प्रमुख गाँवों की अनुसूची बनाने का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त समिति ने अनुसूचित क्षेत्रों की अखण्डता बरकरार रखने के लिये प्रशासनिक फेर-बदल का भी

सुझाव दिया तथा बाँटो और राज करो की औपनिवेशिक पद्धति को सुधारने पर बल दिया जो भौगोलिक रूप से निकटवर्ती आदिवासी मातृभूमियों की एकता को अब तक तोड़ने में सफल रही है।

निश्कर्ष में समिति ने आसपास के जनजातीय क्षेत्रों को मिला कर स्वायत्त जिलों अथवा उपजिलों के गठन का सुझाव दिया जहाँ कि परिशिष्ट को छठी अनुसूची के अनुसार विधीक, कार्यकारी तथा न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हों और आदिवासी स्वशासन को इसके युक्तिसंगत बनाया जा सके।

समिति के अध्यक्ष ने प्रधानमंत्री को भेजे गये अपने पत्र में रिपोर्ट की प्रस्तुति के साथ मुखर रूप से अनुशंसाओं के पीछे की भावना का संक्षेपन करते हुए कहा कि "इस प्रस्तावित कानून की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आदिवासियों के परम्परागत स्वशासन तथा आधुनिक औपचारिक संस्थानों के बीच व्याप्त विसंगतियों को दूर करेगा जो कि बढ़ते असंतोष तथा विरल संघर्ष का कारण रहा है। हम आश्वस्त हैं कि यह जनजातीय लोगों के इतिहास में एक नया युग लायेगा। नये संस्थागत ढाँचे के क्रियाशील होने के बाद लोग राजकीय व्यवस्था को अपनी प्रक्रिया का जनसेवा के लिये विस्तार समझेंगे और वह भी परम्पराओं के संगत विकसित आधुनिकीकरण के इसे महत्वपूर्ण दौर में।"³ राष्ट्र स्तर जनजाति समुदाय के आंदोलन भूरिया समिति की अनुशंसाओं पर आधारित पेसा के लागू होने का मार्ग प्रशस्त किया।



पेसा

पेसा 73वें संशोधन की गुणवत्ता की दिशा में एक छल्लांग थी। ग्राम सभा संविधान का अंग बन गई। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण सहभागी लोकतंत्र के द्वारा नागरिकों को सशक्त करने के अपने तार्किक निष्कर्ष पर पहुँच गया।

पेसा विकास प्रदान करने की अपेक्षा सशक्तीकरण, कार्यान्वयन की अपेक्षा नियोजन, तथा सीमाबद्ध भागीदारी से सचेत भागीदारी की ओर निर्दिष्ट है। पेसा के अन्तर्गत जनजाति स्वशासन का निर्माण छह धुरियों पर किया गया है। धारा 4 (बी) पर आधारित पहली धुरी औपनिवेशिक आचरण से मौलिक रूप से हटकर इस बात की पुष्टि करता है कि स्वशासन की मूलभूत इकाई एक गाँव जैसी प्रशासनिक इकाई न होकर सुव्यस्थित, स्वशासित समुदाय है। दूसरे शब्दों में गाँव का स्वरूप ग्रामीण तय करेंगे, नौकरशाह नहीं।

पेसा बस्ती को समुदाय की प्राकृतिक इकाई के रूप में मान्यता देती है। यह परम्परागत व्यवस्था बिना किसी औपचारिक तंत्र के प्रत्यक्ष, सहभागी तथा सचेत लोकतंत्र के रूप में काम करेगी। दूसरी धुरी पुनः औपनिवेशिक विचारों से हटकर इस बात की स्वीकृति है कि राज्य नहीं बल्कि लोग ही जीवन से संबंधित मामलों पर निर्णय लेने में सक्षम हैं। धारा 4 (डी) तथा (एम) (ii) में समुदाय को अपनी संस्कृति तथा परम्पराओं की रक्षा तथा संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण, लघु वनोपज पर मालिकाना हक तथा अपने विवादों के निपटारे हेतु सक्षम घोषित किया गया है। तीसरी धुरी धारा 4 (ई. और एफ.) में सन्निहित है जो कि प्रबुद्ध शासकीय विचार से हटकर है और आम जनजातियों को समुदाय के द्वारा अपने विकास का समुचित रास्ता चुनने, ग्राम पंचायत में ग्राम सभा की सहमति से विकास की योजनाओं को बनाने और कार्यान्वयन में भागीदारी को स्वीकृति देती है तथा पंचायतों को तत्संबंधित कोष के प्रबंधन हेतु उत्तरदायी घोषित करती है। धारा 4(एम) (vi) में ग्राम सभा अपने क्षेत्राधिकार में राज्य के सभी संस्थानों जैसे विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र आदि की निगरानी के लिये सक्षम बनाती है तथा इनके कार्यकारी को ग्राम सभा के नियंत्रण में लाती है।

चौथी धुरी धारा 4 (आई), (जे), (के) और (एल) में है जहाँ भूमि अधिग्रहण अधिनियम तथा खनन अधिनियम जैसे औपनिवेशिक कानूनों से अलग हटकर भूमि तथा भूमि आधारित संसाधनों के अधिग्रहण में समुदाय की सहमति लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है। पाँचवीं महत्वपूर्ण धुरी धारा (एम) में अन्तर्निहित है जो कि "सर्वशक्तिमान तथा सर्वसम्पन्न राज्य" की धारणा को सिरे से नकारती है और जनजाति समुदाय को अपनी बुद्धिमत्ता के आधार पर सभी तरह के शोषण जैसे भूमि बेदखली, महाजनी, बाजार संबंध तथा मद्यपान आदि के अन्त हेतु निर्णय लेने में सक्षम मानती है। छठी धुरी धारा 4 (ओ)

सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूप में औपनिवेशिक राज्य की सर्वोच्च सत्ता को नकारती है, जो सभी प्रकार की सत्ता पर अपनी मजबूत पकड़ बनाकर अपने नागरिकों को शक्तिहीन बना देती है। इसके अन्तर्गत ग्राम सभा की सर्वोच्चता को स्थापित किया गया है जिसके अधिकारों को उच्च निकायों द्वारा हड़पा नहीं जा सकता है। राज्य द्वारा जनता के हड़पे गये अधिकार को पुनः जनता को वापस दिया गया। पेसा लोकतंत्र को तृणमूल स्तर पर जीवित रखते हुए एक लोक संविधान को पुनः लिख रहा था।



राज्यों की पेसा को अनुसमर्थन देने की अनिच्छा

पेसा के संवैधानिक स्थिति तथा अनिवार्य स्वीकृति अपेक्षित होने के बावजूद पाँचवीं अनुसूची के पाँच राज्य पंचायती राज कानून में संशोधन के अनिच्छुक थे। 73वें संशोधन ने पहले ही प्रबुद्ध शासकों के सरपंच तथा पंचायत सदस्यों पर नियंत्रण एवं संरक्षण को सीमित कर दिया था और पेसा से तो इस के समाप्त होने का ही खतरा उत्पन्न हो गया। अंततः बढ़ते दबाव के कारण कुछ उपरी संशोधन कर इसके अनुपालन का आडम्बर किया गया।

विभिन्न राज्यों में पेसा के अनुपालन का स्तर अलग-अलग है परन्तु सामान्यतः यह पेसा को निष्प्रभावी बनाता है। मध्य प्रदेश, जहाँ पेसा के पूरे राज्य में विस्तार के लिये पहल की गई थी, राज्य सरकार की सर्वशक्तिम बनाये रखकर इस पहल से हुई साख को धो डाला गया। केन्द्रीकृत नियोजन के संरक्षण के द्वारा ग्राम सभा की भूमिका को गौण कर दिया गया है। अन्य राज्यों संविधान की उपेक्षा करते हुए राज्य सरकारों ने "राज्य द्वारा यथा अनुमोदित" शर्त डाल कर में ग्राम सभा के अधिकारों में कतर ब्योंत की है। सभी राज्यों के पंचायती राज कानून केन्द्रीय कानून के सम्मत नहीं हैं तथा उनके प्रयोग में बहुत अन्तर है और कहीं कहीं तो यह पेसा के बिल्कुल ही उलट है।

यह कहना उचित नहीं होगा कि राज्य अपने पंचायती राज कानून को पेसा के सम्मत बनाने के लिये आवश्यक संशोधन लाने के इच्छुक नहीं थे। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा झारखण्ड जैसे राज्यों में पारित कई कानूनों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न कानूनी ढाँचों से पेसा को ध्वस्त किया जा रहा है और इसे निष्प्रभावी बना दिया गया है।

पेसा "स्वशासित ग्राम समुदाय" को अंगीभूत करता है अतः यह सर्वोपरि है कि स्वशासन की इकाई वस्तुतः स्वशासित ग्राम समुदाय स्वयं हो न कि कतिपय सरकारी सेवकों द्वारा संचालित हो। सहभागी लोकतंत्र एक दूसरा घटक है जो कि नजदीकी समुदाय में स्वशासित समुदायों के प्रचलन पर आधारित है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

परन्तु, बिना किसी अपवाद के सभी राज्यों में परन्तु सभी राज्यों ने गाँव की पुरानी राजस्व आधारित परिभाषा को बरकरार रखा है। इस प्रकार गाँव न केवल 10 से 12 बिखरी हुई बस्तियों का समुच्चय बल्कि कई राजस्व ग्रामों को जोड़कर ग्राम पंचायत बनाया जाता है। यह केन्द्रीय अधिनियम में उल्लिखित सम्मुख समुदाय के विपरीत है तथा ग्राम सभा को, जो कि स्वशासन की इकाई का दायित्व ले सकती थी, निष्प्रभावी बनाता है। कानून परिभाषाओं में हेरफेर के कारण मृत हो गया है।

उदाहरण के तौर पर उड़ीसा के कालाहाण्डी जिले में ग्राम सभा (जिसे की पल्ली सभा भी कहा जाता है) की पेसा के अनुरूप परिभाषा को वहाँ के अधिकारियों ने राज्य सरकार के समर्थन से एक परियोजना का मार्ग प्रशस्त करने के लिये उलट दिया चाहे जिसका प्रतिकूल प्रभाव जनजातियों के हितों पर पड़ेगा। राज्यों द्वारा इस कानून में किये गये संशोधन ने इसके प्रावधानों को दुर्बल बना दिया है।

पेसा जनजाति समुदायों के गाँव के साझा सम्पदा तथा वनों पर निर्भरता को मान्यता देता है जिसे वे अपनी सामुदायिक सम्पत्ति संसाधन मानते हैं। इन सामुदायिक सम्पत्ति संसाधनों तक पहुँच जनजातियों की उत्तरजीविता और आजीविका से जुड़ी हुई है तथा यह उनके भोजन, आवास तथा स्वास्थ्य, एवं आय, फसल बर्बादी, तथा पानी की कमी की दशा में सुरक्षा प्रदान करती है। जनजाति क्षेत्रों में इन आम सम्पत्तियों पर समुदाय का साझा हक होता था तथा इनकी पहुँच और उपयोग अलिखित परम्परागत कानून के द्वारा होती

थी जिसकी ब्रिटिश कानून में कोई जगह नहीं है। परन्तु स्वतंत्रता के बाद के पिछले 60 वर्षों में भी इन औपनिवेशिक कानूनों को बदलने के लिये कोई प्रयास नहीं हुए हैं। वहीं दूसरी ओर कानून में सामुदायिक सम्पत्ति संसाधनों की धारणा को मजबूत किया जा रहा है। भारत सरकार के सर्वे रिपोर्ट सामुदायिक सम्पत्ति संसाधनों की परिभाषा इस प्रकार है - "ऐसे संसाधन जिन तक एक अभिज्ञेय समुदाय की पहुँच हो तथा उसपर उनका सामूहिक स्वामित्व प्रबंध हो तथा जिनपर किसी व्यक्ति विशेष का एकान्तिक सम्पत्ति अधिकार न हो"। परन्तु यह परिभाषा स्वयं ही कानूनी ढाँचे के प्रतिकूल है क्योंकि सामुदायिक सम्पत्ति संसाधन सरकारी भूमि के रूप में दर्ज हैं तथा उसपर समुदाय का किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं है। परिणामस्वरूप सामुदायिक सम्पत्ति संसाधन विशेषतः गाँव की सामुदायिक जमीन, जंगल तथा पानी पर अधिकार, हक तथा पहुँच सरकार तथा लोगों के बीच संघर्ष का मुख्य बिन्दू है और इन सम्पत्तियों के विनाश का कारण बनता जा रहा है।

राष्ट्रीय जल नीति, 2002 के प्रबंधन की आड़ में जल को उपभोक्ता वस्तु बना रही है तथा इनपर निजी हक को मजबूत करती हैं कई राज्यों में समानान्तर निकाय बने हैं जैसे वन सुरक्षा समिति,⁴ जन उपभोक्ता संघ आदि जो कि ग्राम सभा को गौण करते हैं। अतः पेसा जहाँ सरकार को "श्रेष्ठ अधिकारिता" से बाहर निकल कर रचनात्मक न्यास स्थापित करने का अवसर देती है वहीं दूसरी ओर राज्य सरकार औपनिवेशिक कानूनी ढाँचे का लाभ उठा रही है।

समुदाय के सदस्यों में होने वाले विवाद का निपटारा शासन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अलग थलग रहने की परम्परा में जीते जनजाति समुदायों ने परस्पर विवाद के निपटारों के लिये एक परिष्कृत प्रणाली विकसित की है। जहाँ संबंध आन्तरिक भाईचारे तथा समुदाय के एकजुटता पर आधारित हैं। विवाद निपटाने से संबंधित मूलभूत प्रक्रिया इमानदारी, अपराध स्वीकृति, समरसता तथा आन्तरिक बन्धुता के आधार पर विवाद के पक्षों को समुदाय की मुख्यधारा में लेकर चलती है न कि उन्हें सिर्फ दण्ड देने पर आधारित है।

ये परम्परागत प्रथाएँ न्याय सिद्धान्त के आक्रामक, विरोधी तंत्र के निशाने पर हैं जिन्हें उपनिवेशवादी प्रशासन व्यवस्था के अन्तर्गत स्थापित किया गया है। यद्यपि पेसा परम्पराओं तथा प्रथाओं को प्राथमिकता देता है किसी भी राज्य में पेसा अपनाया नहीं गया है। वहीं

दूसरी ओर सभी राज्य बिना किसी अपवाद के परम्परागत विधिक परम्पराओं को सम्मान देने में विफल रहे हैं। राज्यों द्वारा परम्परागत पद्धति को उचित सम्मान देने का अभाव रहा है और मौजूदा प्रतिमुखी न्याय पद्धति से असंगतता तथा प्रभावशील श्रेष्ठजनों द्वारा जड़ों के काटे जाने के प्रयास के कारण जनजातीय न्याय व्यवस्था खतरे में है।

पेसा की धारा 4 (ई) तथा (एफ) और धारा 4(एम) (vii) समुदाय को विकास का दायित्व लेने के लिये सशक्त करती है और प्रगति को उनके संस्कृतिक तथा धरोहर के साथ जोड़ती है। ये प्रावधान यह भी सुनिश्चित करते हैं कि योजनायें नितांत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बनें और ये वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचें तथा प्रक्रिया पारदर्शी तथा उत्तरदायी हो।

वास्तविकता इससे काफी परे है क्योंकि अधिकांश सशक्तीकरण कागजों तक ही सीमित है। ग्राम सभाओं के पास निभाने के लिये कोई भूमिका नहीं है और न ही उन्हें कार्यशील बनाने के लिये किसी प्रकार का कोई दिशानिर्देश अथवा सिद्धान्त दिया गया है।

न तो सरकारी कर्मचारियों और ना ही लोगों को सामाजिक अंकक्षण की कोई जानकारी है, जो कि ग्राम सभा में लोगों के दावे को मजबूत कर सके। सामाजिक अंकक्षण की मजबूती लोक भागीदारी तथा सूचनाओं के खुले प्रकटकीकरण पर निर्भर करती है, दुर्भाग्यवश दोनों का ही अभाव है। लोक भागीदारी तथा पारदर्शिता को मिलाकर यह आशा की गई थी कि इससे भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, तथा ठेकेदारी आधारित विकास की समाप्ति होगी। परन्तु राज्य सरकार द्वारा नियमों को दुरुस्त नहीं करने के कारण ये सारी आशायें छिन्न भिन्न हो गई हैं। इसका कारण भी बिल्कुल स्पष्ट है। ऐसी व्यवस्था में जहाँ कि विकास की प्राथमिकताएँ संरक्षणवाद, राजनैतिक एजेंडा तथा ठेकेदारों के हित पर तय होती हैं, वहाँ पेसा के लिये कोई जगह नहीं है।

राज्य द्वारा खनन, बाँध तथा उद्योगों के लिये प्रायोजित जनजातीय लोगों को भूमि से बेदखल करने के कार्यक्रमों के चलते अब तक करीब एक करोड़ जनजाति विस्थापित हो चुके हैं। "लोक हित" ने "लोक उत्तरजीविता" को आमूल नष्ट कर दिया है। ऐसे में पेसा की धारा 4 (i) जनजाति समुदायों के लिये विस्थापन के पूर्व उनकी सहमति के अधिकार संबंधित एक अवसर प्रदान करती है। परन्तु यहाँ भी वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है।

सहमति संबंधित अनिवार्य सरकारी आदेश क्षेत्रीय कार्यालय तक नहीं पहुँचते हैं, पंचायती राज विभाग इन प्रावधानों के अनुपालन करवाने में गौण भूमिका में है तथा पेसा में इससे संबंधित प्रावधान होने के बावजूद ग्रामीणों के हकों के उल्लंघन को संरक्षण प्राप्त है।

राज्य सरकारों की नितान्त असफलता ने भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय को भूमि अधिग्रहण हेतु सलाह लेने की प्रक्रिया पर कार्यकारी आदेश निकालने के लिये प्रेरित किया। इसके अन्तर्गत भूमि अधिग्रहण के उद्देश्य से सलाह लेने की प्रक्रिया, ग्राम सभा के प्रस्ताव के रूप में सहमति पत्र की आवश्यकता तथा जब सहमति नहीं दी गई हो तब समाहर्ता द्वारा इसके समाधान हेतु त्रिपक्षीय बैठक बुलाने संबंधित आवश्यक दिशानिर्देश दिये गये हैं। परन्तु ये दिशानिर्देश प्रभावहीन ही सिद्ध हुए क्योंकि ग्रामीणों की सलाह प्रक्रिया पर असहमति के बाद भी विरोध को रद्द करने का अंतिम अधिकार उपायुक्त के पास ही होता है। यह ऐसा अधिकार है जो कि उपनिवेशवादी विचारधारा के आधिकारिक श्रेष्ठता का प्रमाण है।

इससे अधिकारियों तथा ग्रामीणों के परस्पर विरोधी संबंधों का ही पता चलता है जहाँ राज्य ग्रामीणों के इन माँगों तथा विरोधों को उपद्रवी और असामाजिक मानती है। यह चिन्ताजनक है कि इस संवेदनशील मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय पर भी विचार तक नहीं किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'समता बनाम आंध्र प्रदेश सरकार'⁵ वाद में ऐतिहासिक निर्णय द्वारा जनजातियों के प्रति सोच में मौलिक अन्तर लाने पर जोर देते हुए कहा गया था कि जनजातियों को पण्यधारी की अपेक्षा साझेदार समझना चाहिये। यह इस समस्या के समाधान का आधार हो सकता था।

दुर्भाग्यवश अधिकांश सरकारें समता निर्णय से अनभिज्ञ हैं अथवा इसका उपयोग अपनी सुविधा के अनुकूल करती हैं। पेसा लघु वनोपजों पर धारा 4 (एम) (iii) के अन्तर्गत सीधा हक ग्राम सभा को देती है परन्तु राष्ट्रीय आय में वनोत्पदों के महत्व को देखते हुए राज्य अपने राजस्व को बढ़ाने के फेर में इनका राष्ट्रीयकरण तथा व्यवसायिक संचालन कर रहे हैं। तथा राज्य प्रशासन ने पेसा प्रदत्त अधिकारों को सुविधाजनक रूप से दरकिनार करने के लिये पर्याप्त प्रयास भी किया है। अधिकारी तथा कार्यकारी ग्राम सभा के लघु वनोपजों पर अधिकार के बारे में अनभिज्ञ हैं। उनका कहना है कि इस संबंध में उन्हें कोई आदेश

जारी नहीं किया गया है और जहाँ ये परिपत्र समाहर्ताओं को जारी भी किये गये हैं उदाहरणस्वरूप मध्य प्रदेश में गत पाँच वर्षों से ये कागजात मेज पर धूल चाट रहे हैं।

संदिग्ध संशोधनों के द्वारा राज्यों ने बाँस, तेंदू अथवा मूसली जैसे मूल्यवान उपजों पर अपना एकाधिकार बनाये रखा है। लघु वनोपजों के बाजार में एकाधिकार होने के कारण यह गरीब जनजातियों तथा वन्य समुदायों की अपेक्षाकृत निजि व्यापार घरानों, व्यक्तिगत व्यापारियों तथा उद्योग घरानों के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। अधिकांश राज्यों ने राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य तथा सुरक्षित वन क्षेत्रों को ग्राम्य सीमाओं के साथ होने तथा परम्परागत रूप से इनके सामुदायिक सम्पत्ति साधन के रूप में उपयोग के बावजूद भी इन प्रावधानों से मुक्त रखा है। ग्राम सभा का मालिकाना हक वास्तविक आकलन पर आधारित नहीं होकर प्रशासकीय वर्गीकरण पर आधारित है। इन मुद्दों का वन प्रबंधन से सीधा संबंध होने के कारण वर्तमान वन कानून तथा नियमों में संशोधन की आवश्यकता है जहाँ ग्राम सभा की लघु वनोपजों की भागीदारी नाममात्र की है।

वहीं दूसरी ओर साधारणतयः देखा गया है कि ऐसे सभी क्षेत्रों में वन प्रशासन लघु वनोत्पाद संग्राहकों से कोई सहयोग नहीं करते और प्रायः उन्हें परेशान करते हैं। जनजातियों को वैतनिक मजदूर बना दिया गया है जहाँ मालिक तथा नौकर का व्यवहार चलता है। आश्चर्य नहीं कि इसी कारण से 10वीं पंचवर्षीय योजना के पारा 4.2.84 में वन विभाग के कर्मचारियों को जनजातियों के हितों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिये विशेष प्रशिक्षण की बात कही गई है।⁶

जनजाति समुदाय के लिये भूमि ही जीवन है। यह उनकी पहचान और जमीन से जुड़े होने की मान्यता का प्रतीक है। ऐसी स्थिति में उनको जमीन से बेदखल करना मात्र सम्पत्ति की हानि का मामला नहीं है। इसका प्रभाव कहीं अधिक व्यापक है तथा उनके लिये जमीन खोने का मतलब अपनी पहचान को खोना है। जनजातीय समुदायों को भूमि विस्थापन से संरक्षण देने के क्षेत्र में भारत का इतिहास बड़ा ही दुखद रहा है।

जनजातीय क्षेत्रों में गैर आदिवासियों के धावा बोलने से आदिवासियों को भूमि हस्तांतरण से बचाने में क्षेत्रीय कानून विफल रहे हैं। अनुमानित है कि अनुसूचित जिलों में लगभग 48

प्रतिशत भूमि गैर जनजातियों के अधिकार में है वहीं दूसरी ओर हजारों मामले निर्णय की अपेक्षा में दशकों से लम्बित पड़े हुए हैं। यह अनुभव करते हुए कि जनजातियाँ किसी भी कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से या कचहरियों के प्रशासन से अपनी भूमि तथा निवास स्थान की सुरक्षा का भरोसा नहीं कर सकती हैं, जिसका एक लम्बा अरुचिकर इतिहास रहा है, तथा यह मानकर कि दस्तावेजों के साक्ष्य तथा विमुखी सिद्धान्तों पर आधारित न्यायप्रक्रिया में जनजातियाँ कभी भी अपना अधिकार प्राप्त नहीं कर पायेंगी, पेसा ने मौलिक कदम उठाते हुए जनजातियों को उनसे संबंधित बेदखली वाले क्षेत्रों और संबंधित पक्ष को चिन्हित कर विवादित भूमि पर ही न्यायसंगत उपचार का अधिकार दिया है।

हालाँकि मध्य प्रदेश को छोड़कर किसी भी अन्य राज्य ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया है, मध्य प्रदेश में भूमि राजस्व संहिता पेसा के प्रावधानों को सन्निहित करती है। यदि अनुसूचित क्षेत्र में कोई ग्राम सभा यह पाती है कि किसी मूल जनजातियों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति किसी जनजाति के सदस्य भूस्वामी की जमीन पर बिना किसी विधिक अधिकार के काबिज है, तो वह उस जमीन को उक्त मूल स्वामी को वापस कर सकेगी तथा उसके मृत होने की दशा में उसके वैध उत्तराधिकारियों को वापस करेगी। यदि ग्राम सभा जमीन का दखल वापस लेने में असफल हो तो मामले को अनुमंडल पदाधिकारी को सुपुर्द करेगी जो कि उक्त तिथि से तीन माह के अन्दर उस भूमि पर वापस कब्जा दिलायेंगे।⁷



कागज पर कानून

पेसा के महत्वपूर्ण प्रावधानों को संगत विधान परित कर लागू करने के प्रति राज्य विधायिका का अवहेलना स्पष्ट है। यदि पेसा तथा पंचायती राज कानूनों में गंभीर विसंगतियाँ खराब

हैं तो उससे भी अधिक खराब है अधिकांश राज्यों में नियमों तथा दिशानिर्देश के अभाव में कानूनों का कागज तक ही सीमित रहा। यह सब उस कानूनी प्रक्रिया का फल है जिसमें ग्राम सभा अथवा पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर शक्तियाँ प्रदान करने की हेतु तत्संबंधित राज्य के नियम बनाने की बात की गई है। मध्य प्रदेश में अपवाद स्वरूप कुछ नियम लागू हैं अन्यथा किसी भी संबंधित राज्य में इस कानून को जमीन पर लाने के लिये न तो किसी तरह का कोई नियम बनाया गया है न ही कोई आदेश अथवा दिशानिर्देश जारी किये गये हैं।

आवश्यक नियम तथा प्रावधान बनाने में राज्यों का यह मौन इन्कार राज्यों द्वारा चलाये जा रहे कानून को यथावत रखने की छूट देता है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस ओर अभी तक केन्द्र, राज्यों के राज्यपाल, जनजाति सलाहकार समितियों और आदिवासी विधायकों का ध्यान नहीं गया है। चूंकि इन राज्यों में जनजाति संगठनों ने समय-समय पर इन मुद्दों को उठाया इसलिए यह कहना गलत होगा कि संवैधानिक दायित्वों की जानकारी का अभाव अनदेखा किया गया है। परन्तु नियमों को बनाने में जानबूझकर किये जा रहे विलम्ब के कारण ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत सभा को निष्क्रिय करना एक आपराधिक कृत्य जैसा है।



राज्यों की अनभिज्ञता का स्वांग

विभिन्न जनजाति क्षेत्रों में हमारी पूछताछ से पता चला कि ग्राम सभा तथा पंचायती राज निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधियों में से 99 प्रतिशत और गाँव तथा प्रखण्ड स्तर पर कार्यरत 90 प्रतिशत आधिकारिक कार्यकारी पेसा के बारे में नहीं जानते हैं और न ही इसके संगत राज्य कानून तथा प्रावधानों के बारे में जानते हैं। कई राज्यों में पंचायती राज प्रशिक्षण संस्थान द्वारा विस्तृत प्रशिक्षण दिये जाते हैं परन्तु पेसा पर किसी भी तरह का ध्यान नहीं दिया गया है और स्पष्ट है कि प्रशिक्षक पेसा के प्रावधानों को नहीं समझ पाये हैं। यहाँ तक

कि सरकार के पास भी इसको लागू करने की रणनीति अथवा जागरूकता कार्यक्रम नहीं है।

राज्यों द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में जनजातियों के संरक्षण हेतु अधिनियम के अन्तर्गत प्रदत्त आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों एवं उनकी परम्परा तथा प्रथाओं को पर लोगों को शिक्षित करने के लिये कोई योजना नहीं बनाई गई है जिसके कारण अधिकारीगण अधूरे मन से प्रयास कर रहे हैं और लोग तथा उनके प्रतिनिधि और भी अधिक भ्रमित हो रहे हैं। अंधा होना तथा अंधे होने के स्वांग करने में अंतर यह है कि जहाँ अंधे को सहानुभूति मिलनी चाहिये वहीं दूसरी ओर स्वांग भरने वाला अपराधी के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता।



भविष्य हमारा है

पेसा ऐसा पहला कानून है जो सहभागी लोकतंत्र के सिद्धान्तों पर बनी शासन की मूलभूत इकाई ग्राम सभा पर आधारित है। अतः यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि इसका मुख्य ध्येय ग्राम सभा का सशक्तीकरण है तथा यह ग्राम पंचायत सशक्तीकरण से अलग आधार पर खड़ा है।

राज्य के नीति निर्माता और यहाँ तक कि जनजाति प्रतिनिधि भी यह तर्क करते देखे जाते हैं कि पेसा के मौजूदा ढाँचे में सत्ता का लोगों को वास्तविक हस्तांतरण संभव नहीं है क्योंकि लोग स्वयं शासन चलाने में समर्थ नहीं हैं। पेसा संविधान का सहभागी लोकतंत्र के ढाँचे को विकसित करने की ओर पहला प्रयास है जिसके कारण भय का भी वातावरण हो रहा है, परन्तु यह लोकतंत्र का वास्तविक रूप है।

चाहे यह सरकार, इसकी विधायिका के सदस्यों अथवा कार्यकर्ताओं की प्रजातंत्र के प्रति प्रतिबद्धता में कमी है या फिर जनजातीय गरीबों का वास्तविक सशक्तीकरण है जिससे वे अपनी निवासभूमि, संस्कृति, मान्यताओं और अपने जीवन को संरक्षित करने के लिये कदम

उठा सकें अथवा कुछ और यह तो इतिहास ही बताएगा। परन्तु वर्तमान परिदृश्य एक निर्विवाद तथ्य की ओर ध्यान दिलाता है कि 80 लाख जनजातीय लोगों को मानवीय तथा मानवकृत भाग्य पाने का यह सुनहरा मौका दुबारा शायद ही मिलेगा। पेसा चाहे इस रूप में देखा जाता हो या नहीं, कार्यरूप में यह उपनिवेशवाद को समाप्त करने की ओर महत्वपूर्ण कदम है। सम्भवतः यही कारण है इसे अक्षरशः तथा मूल भावना के अनुरूप लागू करने में प्रबुद्ध शासक वर्ग विरोध कर रहे हैं। यह कोई ऐतिहासिक संयोग नहीं है कि उपनिवेशवाद के खिलाफ यह संघर्ष जनजाति समुदाय से ही शुरू हुआ। सम्भवतः यह उनके घरेलू भूमि के उपर आन्तरिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध बेहतर तथा न्यायसंगत भविष्य के लिये संघर्ष है जिसमें नव-उपनिवेशवाद भी मजबूत होगा। आदिवासी स्वशासन उनका आदर्श भी है और हथियार भी। ये भाईचारे के लिये सभी प्रतिबद्ध नागरिक तक पहुँचते हैं। चुनौती इस ओर अभी कदम उठाने की है।

टिप्पणियाँ

1. शर्मा बी. डी - स्वशासन कानून : मध्य प्रदेश, सहयोग पुस्तक मन्दिर, नई दिल्ली 1998
2. औपनिवेशिक शासन काल में आदिवासी आंदोलनों की श्रृंखला के बाद छोटानागपुर क्षेत्र में औपनिवेशिक शासकों द्वारा किया गया सबसे महत्वपूर्ण समझौता विल्किन्सन्स रूल था जिसके द्वारा प्रशासन ने वहाँ से अपना हस्तक्षेप वापस कर लिया और रोजमर्रा का प्रशासन मुण्डा तथा मानकी के हाथ में छोड़ा गया।
3. श्री दिलीप सिंह भूरिया द्वारा प्रधानमंत्री को लिखा गया पत्र, बी डी शर्मा की पुस्तक "विदर ट्राइबल एरियाज : कन्स्टीट्यूशनल एमेन्डमेंट्स एंड आफ्टर" सहयोग पुस्तक कुटीर, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ सं. 8
4. वन सुरक्षा समिति (टै) का गठन 1992 में संयुक्त वन प्रबंधन परियोजना के अन्तर्गत किया गया था।
5. "समता बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए आइ आर 1997 SC 3297
6. 10वीं पंचवर्षीय योजना (2005-2007), भाग - II, सेक्टरल पॉलिसीज़ एन्ड प्रोग्राम, योजना आयोग, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 468
7. मध्य प्रदेश भूमि राजस्व संहिता - धारा 170 (b) (2)



पेसा - विसंगतियाँ और दुविधायें

रत्नाकर भेंग्रा

पेसा के अन्तर्गत प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 244 (1) के अन्तर्गत निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों को ध्यान में रखकर लागू किये गये थे। इनका निहित उद्देश्य विशेषतः अनुसूचित जनजातियों (जिन्हें प्रायः आदिवासी के नाम से जाना जाता है) के अधिकार, हितों और उनसे संबंधित मामलों को संरक्षित व प्रोत्साहित करना था।

संविधान की पाँचवी अनुसूची के अनुसार राज्यपाल तथा आदिवासी सलाहकार समिति, अनुसूचित जनजातियों के कल्याण एवं विकास हेतु संरक्षण व प्रोत्साहन प्रदान करेंगे।

पेसा के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों से संबंधित निम्नलिखित आवश्यक दिशानिर्देश वर्णित हैं -

1. पंचायतों पर कोई राज्य विधान जो बनाया जाय, रूढ़िजन्य विधि सामाजिक और धार्मिक पद्धतियों और सामुदायिक सम्पदाओं की परम्परागत प्रबंध पद्धतियों के अनुरूप होगा। पेसा धारा 4 (क)
2. ग्राम साधारणतय आवास या आवासियों के समूह अथवा छोटा गाँव या छोटे गाँवों के समूह से मिलकर बनेगा, जिसमें समुदाय समाविष्ट हो, और जो परम्पराओं तथा रूढ़ियों के अनुसार अपने क्रिया कलापों का प्रबन्ध करता हो। पेसा धारा 4 (ख)

3. प्रत्येक ग्राम सभा जनसाधारण की परम्पराओं और रूढ़ियों उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक सम्पदाओं और विवाद निपटान के रूढ़िक ढंग का संरक्षण और परिरक्षण करने में सक्षम होगी। पेसा धारा 4 (घ)

पेसा अधिनियम में धारा 4 के अन्तर्गत वर्णित उपरोक्त प्रावधानों का यदि ध्यान से अध्ययन किया जाय तो निर्विवाद रूप से इसका अर्थ अनुसूचित जनजातियों अथवा पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र के आदिवासियों को मान्यता प्रदान करना तथा इनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक जीवनशैली को सशक्त बनाना तथा प्रोत्साहित करना है। पेसा के शीर्षक तथा कुछ धाराओं में पंचायत का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि यह अधिनियम गाँव, ग्राम सभा एवं स्वशासी निकायों से संबंधित है तथा पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र के उपनगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के राजनैतिक परिदृश्य से सीधा संबंध रखता है। इसका अर्थ यह है कि पेसा की यथार्थ तथा सुव्यवस्थित व्याख्या के अनुसार इसका ध्येय आदिवासियों के परम्परागत स्वशासन संबंधित राजनैतिक संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना है। यह निष्कर्ष इसलिये भी सम्मत है क्योंकि पेसा की व्याख्या अनुसूची पाँच के साथ होती है जो कि पाँचवीं अनुसूची में वर्णित क्षेत्रों के आदिवासियों से संबंधित है। पेसा की पृष्ठभूमि तथा इस अधिनियम के निर्माण में अहम भूरिया समिति के संस्तुतियाँ भी इस बात की पुष्टि करती हैं।

पेसा में कतिपय विचार तथा अवधारणायें ऐसी भी हैं जो कि अनिवार्य रूप से अनुसूचित जनजातियों की प्रथाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी हुई नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर पेसा की धारा 4 ख के अन्तर्गत " प्रत्येक गाँव की एक ग्राम सभा होगी जिसमें वे सभी व्यक्ति शामिल होंगे जिनके नाम गाँव स्तर पर पंचायत निर्वाचन सूची में सम्मिलित हैं।" यहाँ ग्राम सभा का अर्थ गाँव की सभा है, जो कि पूरे भारत में जनजातियों की सर्वव्यापी राजनैतिक विशिष्टता है और संभवतः जनजातीय समुदायों में विभिन्न भाषाई प्रकृतियों को नियंत्रित करती है।

पुनः गाँव स्तर पर पंचायत निर्वाचन सूची, गाँव की सभा आयोजित करने की परम्परागत अथवा प्रथागत मानक नहीं है। अतः यह कल्पना या आरोपण विश्वव्यापी वयस्क मताधिकार की पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित है जो कि आदिवासियों के अपने नेता और सरदार चुनने की प्रथा और प्रक्रिया को हेय की दृष्टि से देखता है अथवा अज्ञात भय से आशंकित है कि

उनकी प्रक्रिया या प्रणाली उतनी साफ और लोकतांत्रिक नहीं है। पंचायत शब्द का प्रयोग ही इसलिये किया गया है क्योंकि कोई अन्य बेहतर अथवा अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिल पाया होगा। यह शब्द ही अधिकांश आदिवासियों की प्रथा अथवा परम्परा में सम्मिलित नहीं है तथा इसका उपयोग व्यवहारिक रूप में ही होना चाहिये न कि निरपेक्ष एवं निर्णायक व्याख्या के रूप में।

ग्राम सभा की इस परिभाषा की उत्पत्ति अथवा मूल संविधान के भाग ix के अनुच्छेद 243 में निहित है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 के अनुसार "ग्राम सभा से ग्राम स्तर पर पंचायत के क्षेत्र के भीतर समाविष्ट किसी ग्राम से संबंधित मतदाता सूची में निबंधित व्यक्तियों से मिलकर बना निकाय अभिप्रेत है।" झारखण्ड पंचायती राज अधिनियम की धारा i (iv) ग्राम सभा की इस निर्वाचन परिभाषा पर आधारित है। यह परिभाषा इस तथ्य की उपेक्षा करती है कि आर्यों की चढ़ाई से भी पहले से आदिवासी समुदायों के अपने निकाय तथा संस्थाएँ मौजूद रही हैं, संविधान का मसौदा तो बहुत बाद की बात है। ऐसे अधिनियम पूर्वाग्रह एवं श्रेष्ठता की ऐसी भावना से ग्रसित हैं जो कि आदिवासी संस्थाओं को अनुपयुक्त मानते हैं अथवा पितृत्ववादी है।

गत पच्चीस वर्षों में आदिवासी स्वशासन के अभ्युदय के साथ आदिवासी समुदाय का अशक्तिकरण खिलाफ संघर्ष तथा अपने अधिकारों पर दावे के लिये देशज मत को एक नया अर्थ मिला है। हालांकि संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य वैश्विक संगठन आदिवासियों अथवा देशज निकायों, संस्थापनाओं को हाशिये पर धकेलने तथा दूसरे निकायों के प्रभुत्व जमाने को वर्गभेद के रूप में देखती हैं। यह वर्गभेद भारत में अधिक गंभीर है तथा यहाँ के 10 करोड़ आदिवासियों को प्रभावित करता है और अत्यधिक भेदभाव को बढ़ावा देता है। आदिवासियों के विरुद्ध वर्गभेद को सामने लाने की आवश्यकता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि पंचायत की इस परिभाषा तथा इस रूप में प्रयोग को संसद कम से कम पाँचवी अनुसूची के क्षेत्रों के लिये तो अवश्य ही परिवर्तन कर इन वर्गभेद आधारित खामियों को दुरुस्त करेगी। ऐसा इसलिये भी लाजिमी है क्योंकि छठी अनुसूची क्षेत्रों में परम्परागत आदिवासी ग्राम सभाओं के अस्तित्व, पहचान तथा संरक्षण का उल्लेख है तो यहाँ क्यों नहीं?

जहाँ एक ओर पेसा इन कमियों को दूर करने के लिये लाई गई है, वहीं दूसरी ओर इसमें विशिष्ट सांवैधानिक पद्धति एवं प्रथा, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक पहचान का एकसाथ उल्लेख अनावश्यक भ्रम उत्पन्न करता है जिससे आधिकारिक दुराग्रह तथा पूर्वाग्रह ग्रसित अफसरशाही को लाभ मिलता है। यह आदिवासियों के प्रति समझ तथा उनके अनुकूल प्रावधानों की व्याख्या को कमजोर बनाता है। सही तरीका तो यह है कि आदिवासियों के प्रथाओं, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक पहचान पर ईमानदारी से जोर दिया जाय तथा उसके आधार पर निर्वाचन सूची, सीटों और पदों में आरक्षण आदि को संगत बनाने के प्रयास हों। इस प्रक्रिया में आदिवासियों के साथ चिरकाल से हो रहे दमन, अत्याचार तथा अपमान एवं पाँचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण एवं विकास को ध्यान में अवश्य रखा जाना चाहिये। आदिवासियों को उनकी अपनी प्रतिभा के आधार पर विकास का अधिकार अवश्य ही मिले। समता निर्णय जो कि पाँचवी अनुसूची क्षेत्र के लिये बहुत ही रक्षात्मक है अवश्य ही अनुसूचित जनजातियों के निर्वाचन सीटों और पदों की रक्षा की बात करता है, परन्तु पेसा के धारा 4 को ध्यान में रखते हुए इन्हें आदिवासियों की परम्पराओं और प्रथाओं के अनुरूप देखा जाना चाहिये।

हाल ही में लागू "अनुसूचित जनजातियाँ एवं अन्य परम्परागत वन्य निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 में ग्राम सभा की एक अलग ही परिभाषा दी गई है। इसकी धारा 2 (छ) के अनुसार "ग्राम सभा का अर्थ गाँव की सभा है जिसमें उस गाँव के सभी वयस्क सदस्य शामिल हैं, और वैसे राज्य जहाँ पंचायत नहीं है इसका अर्थ पाड़ा, टोला अथवा अन्य परम्परागत ग्रामीण संस्थान एवं निर्वाचित ग्राम समितियाँ है जिनमें महिलाओं की पूर्ण तथा अबाधित भागीदारी है।"

यह निर्वाचन सूची से इतर व्यवस्था महिलाओं की भागीदारी का उल्लेख करती है तथा वैसे राज्यों मुख्यतः पूर्वोत्तर राज्यों के संदर्भ में जहाँ कि पंचायत नहीं हैं, स्पष्ट करती है कि परम्परागत ग्रामीण संस्थाएँ गाँव की सभा के रूप में पर्याप्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र में ग्रामीण संस्थाओं का महत्व आजादी के साठ वर्ष बाद ही समझा गया है। इतना समय संभवतः विधिक उपचारों के इतिहास एवं पाँचवी अनुसूची क्षेत्रों के पास रह रहे प्रभावशाली जातीय समुदायों के प्रभाव के कारण लग गया। जातीय हितों की रक्षा के लिये आदिवासियों की प्रथाओं, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक पहचान को मान्यता व बल देने

वाले प्रयासों की निरन्तर उपेक्षा की गई। जातीय संस्थापनों के हितों की रक्षा के लिये आदिवासी संस्थाओं को क्षति पहुँचाना निश्चय ही भेदभाव आधारित है। नये कानून की धारा 2 (छ) में दी गई परिभाषा इस तथ्य को स्थापित करती है कि विभिन्न क्षेत्रों के लिये विभिन्न परिभाषाएँ हमारे देश के वनवासियों के जीवनशैली के विविध परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त की जा सकती हैं।

यह सत्य है कि झारखण्ड पंचायती राज अधिनियम, 2001, एक अधिनियम और अपरिहार्य भूल थी। इसकी पूरी आत्मा संविधान के भाग IX में अनुच्छेद 243 में वर्णित पंचायत से ओत प्रोत है। यह मूलतः एक विशिष्ट त्रिस्तरीय व्यवस्था आधारित पंचायती राज अधिनियम है जो कमोवेश प्रथाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक पहचान को पूर्णतः दरकिनार कर देती है। हिन्दी में लिखे गये इस अधिनियम की धारा 8 (iii) के अनुसार "अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता, ग्राम सभा के अनुसूचित जनजातियों के किसी ऐसे सदस्य द्वारा की जाएगी जो पंचायत का मुखिया, उप-मुखिया या कोई सदस्य नहीं हो, और उस क्षेत्र में परम्परा से प्रचलित रीति-रिवाज के अनुसार मान्यता प्राप्त व्यक्ति जो ग्राम प्रधान यथा माँझी, मुण्डा, पाहन, महतो या किसी अन्य नाम से जाना जाता हो, द्वारा अथवा उनके द्वारा प्रस्तावित अथवा बैठक में उपस्थित सदस्यों की आम सहमति से मनोनीत व्यक्ति द्वारा की जाएगी।" वस्तुतः पूरे झारखण्ड पंचायती राज अधिनियम, 2001 में यह प्रथाओं/परम्पराओं तथा परम्परागत पदों जैसे माँझी, मुण्डा आदि से संबंधित एकमात्र और सबसे व्यापक उल्लेख है। परम्परागत पदों की आधिकारिक मान्यता गैर आदिवासी लोगों और समुदाय तथा भारत के संविधान के आने से बहुत पूर्व से प्रचलन में हैं। इन समुदायों ने आगमन के पश्चात सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर परम्परागत पदों की भूमि को महज औपचारिकता तक सीमित कर दिया है। अगर इस समस्या को वर्गभेद की राजनीति आधारित नहीं माना गया तो इस समस्या का हल निकाल पाने की आशा करना वस्तुतः कठिन होगा। यह उत्तेजक और दुखद होने के साथ समझाने योग्य भी है कि यह सभी कुछ झारखण्ड के कई आदिवासी विधायकों और तीन आदिवासी मुख्यमंत्रियों के समक्ष घटित हो रहा है।

पेसा की ही एक अन्य धारा 4 (घ) पंचायत में निर्वाचन पदों के आरक्षण द्वारा संवैधानिक सशक्तिकरण पर आधारित है "प्रत्येक पंचायत पर अनुसूचित क्षेत्र में स्थानों का आरक्षण

उस पंचायत में उन समुदायों की जनसंख्या के अनुपात में होगा जिनके लिये संविधान के भाग 9 के अधीन आरक्षण देना चाहा गया।

- परन्तु अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षण स्थानों की कुल संख्या के आधे से कम नहीं होगा।
- परन्तु यह और भी कि, अध्यक्षों के सभी स्थान सभी स्तरों पर अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षित होंगे।''

यह वास्तव में एक अबूझ पहेली है कि यह प्रावधान किस प्रकार संवैधानिक परिदृश्य को आदिवासियों के उनके स्वशासन पद्धतियों पर वैसे क्षेत्रों में भी, जहाँ कि वे लागू हैं अथवा पुनर्जीवित की जा सकती हैं जबर्न थोप कर अनुसूचित जनजातियों के रूढ़ियों, परम्पराओं और सांस्कृतिक पहचान (मुख्यतः सामाजिक तथा आर्थिक संदर्भ में) को किस प्रकार सुनिश्चित करता है?

सीट की अवधारणा वस्तुतः एक थोपी गई धारणा है तथा किसी भी रूप में प्रथागत अथवा परम्परागत नहीं है। पुनः इन सीटों की संख्या पंचायत में उन समुदायों की जनसंख्या के संगत होनी चाहिये जिनके लिये संविधान के भाग IX में आरक्षण देने की व्यवस्था की गई है। शासन की यह व्यवस्था न तो प्रथागत है अथवा परम्परागत और न ही यह आदिवासियों के परम्परागत सामाजिक, राजनैतिक तथा संस्थागत पहचान को संरक्षण देता है। सामान्यतः अनुसूचित क्षेत्र में आदिवासी गाँव से तात्पर्य ऐसे गाँव से है जो कि युगों से स्थापित है और अपनी संस्थाओं द्वारा शासित है चाहे वह अवशेष रूप में ही हो। उदाहरण स्वरूप झारखण्ड में यहाँ के आदिवासी सदा से अपनी जीवनशैली को अपने सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं के द्वारा स्वयं निर्धारित करते हैं। यहाँ की जनजातियाँ गाँव अथवा हातू, आतो, पाडा या पोडा स्तर पर अपनी ग्रामीण सभाओं जैसे हातू दुनूब, आतो दुनूब, पाडा सभा अथवा पोडा सभा के द्वारा अथवा उनके माध्यम से संचालित होते हैं।

राजनैतिक रूप से न्यायसंगत और अच्छा तो यह होता कि वैसे गाँवों में जहाँ कि इन जनजातीय नामावलियों का प्रयोग होता है वहाँ के मुण्डा, महतो, माँझी, कर्ताहा या अन्य लोक मान्य पदों को विधिक मान्यता दी जाती। पुरातन जनजातीय व्यवहार तथा मूल भावना

पर आधारित होने के कारण इन पदों को जनजातियों के लिये आरक्षित करने से संबंधित वैध तर्क दिये जा सकते थे जिसपर किसी को कोई आपत्ति नहीं होती और जनजातीय जीवनशैली को भी मान्यता, प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त हो जाता। परन्तु व्यवहार में हुआ यह कि संविधान के अनुच्छेद 243 तथा पेसा के अनुसरण के चक्कर में त्रिस्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत मुखिया, प्रमुख तथा अध्यक्ष पद अनुसूचित जनजातियों के लिये शत प्रतिशत आरक्षित कर दिये गये। परिणामस्वरूप यह मामला उछल कर झारखण्ड उच्च न्यायालय जा पहुँचा और अभी सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित है जहाँ पर कि माननीय न्यायाधीशगण इस मामले को देश में मौजूदा कानूनों के आधार पर निर्णीत करने के लिये बाध्य हैं। वहीं दूसरी ओर यदि यह मामला मात्र आदिवासियों के स्वशासी निकायों और उनके परम्परागत पदों, प्रधान या नेताओं की मान्यता और उनके आरक्षण तक ही सीमित रहता तो इस पर किसी भी प्रकार का कोई मनमुटाव नहीं रहता और न ही रहना चाहिये।

अधिकांश प्रमुख समुदाय आदिवासियों का नेतृत्व करने के लिये इच्छुक नहीं हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में आदिवासी प्रमुख तथा सरदार हैं और इन पदों पर उस क्षेत्र के स्थानीय आदिवासी ही होते हैं। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी ऐसे विधान हैं जो आदिवासियों को औपनिवेशिक संबंधों की मान्यता "शासन से शासन" के आधार पर प्रदान करते हैं। वहाँ उनके लिये आरक्षित क्षेत्रों में देशज लोग अपनी मूल पगड़ियों अथवा सिर के परिधानों को पहनने को प्राथमिकता देते हैं और अंकल सैम टोपियों को पहनने के आकांक्षी नहीं हैं और यह उतना ही बेतुका होता जितना गोरे लोगों की आदिवासी सिरस्त्राणों को पहनने की आकांक्षा। प्रश्न यह उठता है कि इस देश में ही जनजातियों पर पंचायती पगड़ी पहनाने की कवायद क्यों हो रही है जो कि जनजातीय समुदायों की आत्मा को ही मार दे और उनकी सरलता, आत्मनिर्भरता और प्रतिष्ठा को ही समाप्त कर दे?

पेसा के अन्तर्गत आदिवासियों के परम्परागत स्वशासन निकायों को मान्यता उनकी देशज भाषाओं में अथवा उनके द्वारा व्यवहृत स्थानीय भाषाओं में इन निकायों के प्रचलित नाम के आधार पर होनी चाहिये। जनजातीय अथवा आदिवासी भाषाओं का प्रयोग उनकी सांस्कृतिक पहचान को एक महत्वपूर्ण मान्यता देता है। इन समृद्ध देशज सामाजिक - राजनैतिक संस्थाओं को मान्यता नहीं देना और अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये शब्दों का ढोल पीटना निरे पाखण्ड के सिवा कुछ भी नहीं होगा।

जनजातियों के भी अपने ग्राम प्रधान हैं जैसे मुण्डा, महतो, माँझी अथवा कर्ताहा आदि। मुखिया शब्द का उल्लेख ऐतिहासिक रूप से एक पराई परिकल्पना है जो कि अधिकारिक संरक्षण के कारण ही स्वीकार की गई है। आदिवासियों में "जोड़ीदार मुण्डा" पद मौजूद है जो कि समता दिखलाता है और आदिवासी प्रथाओं, परम्परा तथा मूल्यों के भी संगत है हालांकि यह पदानुक्रम में नीचे स्तर पर आता है। यह निश्चित रूप से वर्णव्यवस्था आधारित आर्य पदानुक्रम द्वारा थोपे गये उप-मुखिया पद से बेहतर तथा अधिक उपयुक्त है। इसका विस्तार कर अन्य जनजातियों के लिये भी जोड़ीदार महतो, जोड़ीदार माँझी तथा जोड़ीदार कर्ताहा आदि पदों की व्यवस्था की जा सकती है।

यह अत्यन्त ही दुखद है कि पेसा, जो कि तर्कसंगत रूप से आदिवासियों के लिये मान्य कानून है और जिसका उपयोग निर्णायक रूप से आदिवासी विधायकों एवं सांसदों, गैर सरकारी संगठनों तथा स्वयं आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के स्वशासन संस्थानों को मान्यता दिलाने एवं विकसित करने के लिये किया जा सकता था, इस उद्देश्य से प्रयोग नहीं किया जा रहा है। आंशिक रूप में इसका कारण पाश्चात्य संस्कृति की वयस्क मताधिकार की धारणा का अंधानुसरण है। निर्वाचन सूची तथा सीट इसके मूल में हैं और साथ ही इस अधिनियम में प्रथाओं तथा परम्पराओं का भी विरोधाभासी उल्लेख किया गया है। चूँकि राजनैतिक विचारधारा, संस्कृति और वर्णव्यवस्था आधारित समाज का है प्रभाव प्रबल है अतः इसमें आदिवासी संस्थानों के प्रति समझ एवं परानुभूति का अभाव है और ये परम्परागत आदिवासी व्यवस्थायें अशक्तिकरण पर कर दी गई हैं।

संवैधानिक रूपरेखा और आदिवासियों की प्रथाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक पहचान का सम्मिश्रण उपयोगी हो सकता है और कई क्षेत्रों में इसके ऐसे हैं जहाँ इनका उल्लेख किया जा सकता है। झारखण्ड पंचायती राज अधिनियम के धारा 7 में ग्राम सभा की बैठक के गणपूर्ति (कोरम) का उल्लेख है।

धारा 7 (i) के अनुसार "किसी बैठक की गणपूर्ति ग्राम सभा के सदस्यों की दस प्रतिशत जिसमें कम से कम 33 प्रतिशत भाग महिला होंगी:

परन्तु अनुसूचित क्षेत्र में किसी बैठक की गणपूर्ति ग्राम सभा के सदस्यों की 33 प्रतिशत की, जिसमें कम से कम 33 प्रतिशत महिला होंगी, संख्या से पूरी होगी।"

ऐसी आशा की जाती है कि इतनी न्यूनतम भागीदारी कोई सुस्पष्ट संवैधानिक आदेश नहीं है।

यह न्यूनतम गणपूर्ति का मानक हमारे प्रजातंत्र तथा उन मानदण्डों की एक दुखद गाथा है जिन्हें हम प्राप्त करना चाहते हैं। यहाँ तक कि झारखण्ड में किसी भी राजनैतिक दल से संबंधित अथवा स्वतंत्र राजनेता ने इस मुद्दे को कभी नहीं उठाया। यह हमारी राजनैतिक इच्छाशक्ति और जनतांत्रिक विवेक को दर्शाता है। सामान्य क्षेत्रों के लिये यह हास्यास्पद रूप से कम है और इतनी कम उपस्थिति आसानी से छलयोजित की जा सकती है अथवा बनाई जा सकती है। भारत जैसे देश में जहाँ कि जातीय / समुदाय आधारित हितों का लम्बा इतिहास रहा है इसके परिणामस्वरूप होने वाले प्रभावों की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

अनुसूचित क्षेत्रों में इसे न्यूनतम 33 प्रतिशत तय किया गया है परन्तु यह झारखण्ड के आदिवासी गाँवों के विशिष्ट बैठकों में होने वाले गणपूर्ति के आस पास भी नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से प्रत्येक परिवार से एक सदस्य की उपस्थिति के आधार पर शत प्रतिशत माना जाता है और प्रायः 70 से 85 प्रतिशत उपस्थिति सामान्य मानी जाती है। ऐसे कई द्रष्टव्य हैं जहाँ पर कि किसी विशेष जमीन संबंधित विवाद को सुलझाने के लिये बुलाई गई बैठक 50 प्रतिशत से अधिक उपस्थिति होने के बावजूद न्यूनतम 75 प्रतिशत कोरम पूरा होने तक तीन बार स्थगित कर दी गई हैं। अतएव जब जनजातियों के यहाँ कोरम से संबंधित इतनी उच्च कोटि के मानक पहले से मौजूद हैं इस हास्यास्पद रूप से कम कोरम को जबरन थोपने के गंभीर दुष्परिणाम हो सकते हैं। जनजातियों की इस अच्छी प्रथा को कायम रखना अच्छा होगा ताकि उनका कोरम प्रतिशत ऊँचा बने रहे। यह इस व्यवस्था को उत्तरदायी बनाने के साथ साथ निर्णय के आदर को भी प्रोत्साहित करता है। सामान्य क्षेत्रों में कोरम को बढ़ा कर न्यूनतम 51 प्रतिशत करना चाहिये ताकि ये लोकतांत्रिक रूप से प्रभावी हों।



एकता में संघर्ष जारी रहें.....

हमें पुनः निर्माण करना चाहिए वह परिस्थिति,
जैसे यह था जब हम रहते थे स्वाधीन,
जंगल, भूमि और जानवर,
और हमारा पूर्ण विश्वास उनमें,
था मुख्य आधार हमारे जीने का तब।
हमारे जीवन आश्रित रहे इन पर,
और नहीं था उन चीजों पर, जैसे, विद्युत,
सरकार, विकास, कार्ययोजनाएँ,
रोजगार और अन्य आधुनिकीय।
हम थे तब जन्मे स्वतंत्र
और रहे स्वाधीन अपने नाडु में, मातृभूमि
जंगल, भूमि जानवरों और स्वतंत्र लोग।

ठीक जैसे शिकारी शिकार करते हैं, जानवरों का,
हम स्वतंत्र लोग - शिकार किए गए, राज्य द्वारा।
राज्य ने ले लिया और लगातार ले रहा है,
हमारा नाडु, देने के लिए दूसरों को,
जो जानते नहीं कुछ भी हमारे नाडु के बारे में,
और इसकी प्रकृति के।

यह हमारी मातृभूमि,
हमारी मातृभूमि है हमारे लोगों की,
यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी कोई,
कानूनी अधिकार के साथ स्वामित्व का भूमि के।
और तब इसे नहीं दी गई चुनौती,
कि यह हमारी मातृभूमि है,
स्वीकृति थी दी गई।

लेकिन यह थी सरकार, आग्रह किया जिसने,
पाने के लिये अधिकार, स्वामित्व का भूमि के,
और वह भी नाम में व्यक्तियों के।
सरकार ने ले लिया उनके लिए,
वृहदतम हिस्सा हमारे नाडु का,
यह था प्रस्ताव निजी सम्पत्ति का,
जो कि विनष्ट कर रहा है हमें,
और कुछ नहीं।

पूछो किन्ही दूसरों को ठहरने को जंगल में और रहने को
आओ देखें क्या वे रह सकते हैं।
वे नहीं रह सकते क्योंकि वे लोग हैं, अज्ञानी
वे नहीं जानते कुछ भी विषय में हमारे नाडु के।
बल्कि ये वैज्ञानिक भी हैं अज्ञानी,
कहाँ वे सीखते हैं जंगल के विषय में,
और जीवों के हैं जो अंदर इसके?
केवल हमसे। तथापि ये वैज्ञानिक
अब भी नहीं जानते, जितना कि हम।

जब हम नाचते हैं और प्रार्थना करते हैं देव से अपने
लाने की बरसात, और वह आती है
आप नहीं कर सकते यह।

बोद्दन - एक जनजाति भू अधिकार आन्दोलनकारी। थुवई पट्टी,
जिला - कोयम्बटूर, तमिलनाडु निवासी।

Backcover matter

इक्वेशन्स एक शोध, अभियान तथा पैरवी संगठन है जो कि समता, न्याय व स्थायित्व को थामे रखकर पर्यटन को लोकतांत्रिक बनाने की दृष्टि से प्रेरित है। इसकी स्थापना 1985 में भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में पर्यटन तथा अन्य आधुनिक विकास के रूपों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए की गई थी। हमारा विश्वास है कि वर्तमान पर्यटन मॉडलों के विकल्प व्यवहारिक हैं और हमने इसे अभिनव साझेदारियों से साबित किया है, जो कि स्थानीय आवश्यकताओं तथा उनके अधिकारों को निर्णय प्रक्रिया एवं पर्यटन विकास के हितों को केन्द्र में रखते हैं। हम समुदायों तथा छोटे समूहों को अनियंत्रित तथा गैरजिम्मेवार पर्यटन विकास प्रतिमानों को बदलने के प्रयास में सक्रिय सहयोग देते हैं।